इकाई 1 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अर्थव्यवस्था*

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 विषय प्रवेश

1.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था

1.2.1 कृषि

1.2.2 उद्योग

1.2.3 मुद्रा और वित्तीय क्षेत्र

1.3 अवसंरचना की स्थिति

1.3.1 सामाजिक अवसंरचना

1.3.2 आर्थिक अवसंरचना

1.3.3 प्रशासनिक अवसंरचना

1.4 समष्टि-अर्थशास्त्रीय समुच्चय

1.5 सार-संक्षेप

1.6 शब्दावली

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय कृषि की दशा का वर्णन कर सकें;
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय कृषि क्षेत्र के समक्ष समस्याएँ बता सकें;
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय उद्योग की दशा का ख़ाका खींच सकें;
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय 'मुद्रा एवं वित्तीय क्षेत्र' की दशा इंगित कर सकें;
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में 'अवसंरचना' की दशा स्पष्ट कर सकें; तथा
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय 'समष्टि समुच्चयों' का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर सकें।

1.1 विषय प्रवेश

ब्रिटिश शासन काल से पूर्व, भारत एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था था। उसका बड़े पैमाने पर निर्यात होता था और वह बदले में सोना व रत्न-मणियाँ प्राप्त करता था। आयात पर उसकी निर्भरता नाममात्रिक थी। अर्थव्यवस्था प्रमुखतः ग्रामीण थी परंतु स्वतंत्र और आत्मनिर्भर थी। राजा कलाकारों, शिल्पकारों और बुनकरों को संरक्षण दिया करते थे। परिवहन के साधन सीमित थे। अतः, व्यापार भी सीमित था, परंतु हर क्षेत्र अपने आप में विशेषज्ञता प्राप्त होता था।

---

* सुश्री विशाखा गोयल, सहायक आचार्य, शारदा विश्वविद्यालय

ब्रिटिश शासनकाल में, भारत से धन-दौलत का निर्गम देखा गया। भारतीय अर्थव्यवस्था की अधिकांश वर्तमान समस्याओं के मूल में ब्रिटिश शासनकाल की नीतियाँ ही हैं। इस इकाई में, हम वर्ष 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश की अभिभावी (अथवा जैसी वह हो गई) अर्थव्यवस्था के अभिलक्षणों पर सूक्ष्म दृष्टि डालेंगे। यह पुनरावलोकन हमें अपनी अधिकांश वर्तमान समस्याओं, जैसे— दरिद्रता, बेरोज़गारी के निर्मूलन एवं स्वास्थ्य रक्षा आदि के लिए आवश्यक प्रयास के महत्त्व को समझने में मदद करेगा।

1.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था

स्वतंत्रता प्राप्ति की पूर्वसंध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित थी। व्यापक दरिद्रता के पीछे निम्न प्रप्ति व्यक्ति आय और निम्न राष्ट्रीय आय प्रमुख कारण थे। राष्ट्रीय आय का वितरण न्यायोचित नहीं था और इसलिए अमीर व गरीब के बीच खाई काफी गहरी थी। मुट्ठी भर धनी व्यक्ति, जो ब्रिटिश सरकार में सेवारत थे या किसी उद्योग के स्वामी थे, राष्ट्रीय आय का अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा भोग रहे थे जबकि अधिकांश निर्धन वर्ग उसका अपेक्षाकृत छोटा भाग ही पा रहा था। आय वितरण की असमानताएँ अर्थव्यवस्था के ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में देखी जाती थीं। अधिकांश जनसंख्या आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी। बहुत कम उद्योग अस्तित्व में थे, जिनमें मुख्यतः उपभोज्य वस्तुएँ ही बनाती थीं। मूल और मुख्य उद्योग गिनती में बहुत कम थे। यद्यपि प्रथम और द्वितीय विश्व-युद्धों के दौरान भारत ने विभिन्न युद्ध-सामग्री व उपभोज्य वस्तुओं की आपूर्ति की थी, वास्तविक प्रौद्योगिकीय विकास के अभाव और पूँजी की कमी के कारण भारतीय उद्योग विश्वयुद्धोपरांत वर्षों में अधिक विकसित नहीं हो पाया। देश में यंत्र-समूह का उत्पादन नगण्य था। एकमात्र पूँजी उद्योग इस्पात था, लगभग 9 लाख टन उत्पादन कर सकता था। देश के पास प्राकृतिक संसाधनों का प्रचुर भण्डार था परंतु ये संसाधन या तो अल्प प्रयुक्त थे या फिर अप्रयुक्त। यह व्यापक बेरोज़गारी, निर्धनता और भूख में परिणत हुआ। बारंबार अकाल और सूखा आम बात थी जिनकी वजह से खाद्याभाव और भुखमरी होते थे। गरीबी का दुश्चक्र वर्ष दर वर्ष जारी रहा। लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे बसर कर रही थी। इस अति विस्तृत निर्धनता ने निम्न जीवन-स्तर और निम्न मानव विकास की ओर अग्रसर किया। भारतीय अर्थव्यवस्था की संवृद्धि इतनी धीमी थी कि इसे 'निश्चल' कहा जाता था। आम आदमी की सबसे बड़ी लड़ाई भूख और व्यापक रोगों से ही थी। स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्य विकास प्राचल— ये सभी बहुत निचले दर्ज़े पर थे। चलिए, भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक अभिलक्षणों का, क्षेत्रवार, सूक्ष्मतापूर्ण विश्लेषण करते हैं।

1.2.1 कृषि

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख क्षेत्र था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी। लेकिन राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान लगभग 50 प्रतिशत ही था। निवल रोपित क्षेत्र, जो कि लगभग 12.7 करोड़ हेक्टेयर था, देश के कुल दर्ज़ भू-क्षेत्र का लगभग 43.6 प्रतिशत होता था। खाद्य फसलें कुल कृष्य भूमि के तीन-चौथाई पर बोई जाती थीं जबकि एक-चौथाई नकदी फसलों की खेती के लिए प्रयोग की जाती थी। पैदा की जाने वाली महत्त्वपूर्ण खाद्य फसलें थीं— गेहूँ, धान, ज्वार, बाजरा आदि जबकि महत्त्वपूर्ण नकदी फसलें थीं— गन्ना, कपास और पटसन। भारत विश्व के कुल मूँगफली उत्पादन में 32 प्रतिशत, पटसन में 41 प्रतिशत और धान में 27 प्रतिशत का भागीदार होता था। तद्नुसार,

भारत विश्व में मूँगफली और गन्ने का सबसे बड़ा उत्पादक देश था। साथ ही, उसका स्थान कपास में अमेरिका और चीन के बाद तीसरा था। फिर भी उसका उत्पादन, कृषि के प्रति हेक्टेयर पर आकलित किए जाने पर, विश्व में सबसे कम में ही गिना जाता था। ब्रिटिश शासनकाल में, शिल्पकार व दस्तकार जैसे विभिन्न व्यवसायों हेतु समर्थन के अभाव में, सभी को अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर रहना पड़ता था।

अंग्रेज़ भारत के विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न भू-राजस्व प्रणाली की विधियाँ अपनाए हुए थे। किसानों से ऊँचा लगान चुकाने की अपेक्षा की जाती थी, परंतु सरकार भूमि की उर्वरता बनाए रखने या उसे सुधारने के लिए अथवा पैदावार बढ़ाने के लिए सिंचाई सुविधाएँ प्रदान करने के लिए कुछ नहीं करती थी। भू-राजस्व की तीन प्रणालियाँ प्रचलित थीं— ज़मींदारी व्यवस्था (जिसके तहत् कुल भूमि का 58 प्रतिशत आता था), रैयतवाड़ी व्यवस्था (जिसके तहत भूमि का 38 प्रतिशत आता था) और महलवाड़ी व्यवस्था (जो कि मात्र 4 प्रतिशत क्षेत्र में लागू थी)। भू-राजस्व की परवर्ती दो प्रणालियों में, कृषि की उर्वरता सुधारने के लिए कुछ विकास कार्य हुआ, परंतु ज़मींदारी व्यवस्था में, ज़मींदारों को सिर्फ लगान अर्थात् भू-राजस्व वसूलने से ही मतलब होता था। ये ज़मींदार खेतिहरों से यथाशक्ति लगान ज़बरन वसूला करते थे, जिससे उनके पास अधिशेष शून्य ही रहता था। इसके परिणामस्वरूप किसानों के पास अपने खेतों में ताज़ा निवेश करने के लिए प्रोत्साहन शून्य रहता था। यद्यपि सरकार द्वारा कुछ क्षेत्रों में नहरों का जाल बिछाया गया था, यह सिंचाई कृषि के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र का मात्र 17 प्रतिशत तक ही सीमित रहा। पंजाब जैसे कुछ राज्यों में, तो नहर सिंचाई प्रणाली शुरू की गई परंतु अधिकांश अन्य राज्यों/क्षेत्रों में इस दिशा में कोई पहल नहीं की गई। यह उपेक्षा भारतीय कृषि के पिछड़ेपन के लिए एक प्रमुख कारण रही। चूँकि कृषि क्षेत्र का योगदान सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 50 प्रतिशत था, सिंचाई के साधन ध्यान दिया जाना चाहिए था। कृषि का विस्तार भी केवल सिंचाई के बढ़े साधनों से ही प्रोत्साहित किया जा सकता था। परंतु सिंचाई के ये साधन कुछ राज्यों तक ही सीमित थे।

बाज़ार मोर्चे पर, कृषि उपज के लिए औपचारिक/व्यवस्थित बाज़ार मौजूद ही नहीं थे। परिणामतः, कृषि से जुड़े बिचौलिये अधिकांश लाभ ले जाते थे। खेत से बाज़ारों तक सड़क मार्ग का पूर्णतः अभाव था। अपनी ऋण आवश्यकताओं के लिए, किसी संगठित ऋण व्यवस्था के अभाव में, छोटे किसान देशज साहूकार/महाजनों पर निर्भर करते थे। प्रायः, किसानों को ब्याज़ व मूल न चुका पाने के लिए अपनी ज़मीन से हाथ धोना पड़ता था। संयुक्त परिवार प्रणाली का व्यापक प्रचलन था। अतः, जब कभी कोई बेरोज़गार होता था तो वह परिवार की खेतीबाड़ी में ही शामिल हो जाता था। इससे प्रच्छन्न बेरोज़गार ने जन्म लिया। इस प्रकार, स्वतंत्रता प्राप्ति की पूर्वसंध्या पर, भारतीय कृषि निम्नलिखित समस्याओं से ग्रसित थी —

क) **प्रति हेक्टेयर कम उत्पादन** : किसानों की आय कम थी और भू-राजस्व तुलनात्मक रूप से अधिक था। इसलिए किसान अपने खेतों में निवेश करने की स्थिति में नहीं होते थे। सरकार मृदा स्वास्थ्य सुधारने के लिए, सिंचाई के साधन लगाने के लिए और कृषि विधियों में नवप्रवर्तन को प्रोत्साहित करने के लिए वांछित कदम नहीं उठाती थी। यहाँ तक कि काटो-और-जलाओ जैसी पुरातन तकनीकें, जिनसे माना जाता था कि मृदा स्वास्थ्य सुधर जाता है, अब प्रचलन में नहीं रही थी। कृषि आय बढ़ाने के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता

थी। परंतु किसान कुछ माह तक के लिए भी कोई ज़मीन पट्टे पर नहीं ले सकते थे।

ख) **उत्पादन की पुरातन तकनीकें** : कृषि में आदिकालीन काठ के हल व अन्य उपकरणों का स्थान लोहे के औज़ारों ने ले लिया। परंतु ब्रिटिशकालीन शासन के दौरान कृषि में हुई यही एकमात्र प्रौद्योगिकीय उन्नति रही। सिंचाई के लिए कृषि मुख्यतः मानसून पर निर्भर थी, हालाँकि 1940 के दशकारंभ में, कुंओं और नहरों का विस्तार शुरू हो चुका था। सिंचाई के विकास का लाभ उठाकर चार क्षेत्र (पंजाब, मद्रास, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और सिंध) अपनी बंजर भूमि को खेती के काम में लगाने लगे थे। किंतु स्वतंत्रता के समय देश के अधिकांश भागों में सिंचाई की सुविधाएं विद्यमान ही नहीं थी। पंजाब और सिंध के नहर सिंचित क्षेत्र भी पाकिस्तान में चले गए थे।

ग) **कृषि के व्यापारीकरण का अभाव** : ब्रिटिश शासनकाल में, गन्ना, कपास, पटसन, अफ़ीम आदि जैसी व्यापारिक फसलों को उगाने की परंपरा बस शुरू ही हुई। कृषि के वाणिज्यीकरण के इस रुझान ने कृषि को उसके पटसन व सूती वस्त्र जैसे संबद्ध उद्योगों को कुछ सहारा दिया। तथापि, स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, विभाजन के कारण, पटसन की खेती का अधिकांश उर्वर क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान को चला गया।

1.2.2 उद्योग

ब्रिटिश शासन से पूर्व कुछ क्षेत्रों में संकेंद्रित केवल कुछ ही उद्योग थे। उत्पादन में समरूपता का नितांत अभाव था। उदाहरण के लिए, खनन ब्रिटिश शासन से पहले भी होता था परंतु उसमें बहुत-से कर्मचारी नहीं रखे जाते थे। प्रमुख उद्योग कपास वस्त्र था, परंतु इसमें भी उच्च क्षेत्रीय भिन्नता नज़र आती थी। बहरहाल, देश को अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के समय विरासत में मिली उद्योग की ख़राब हालत को देखते हुए भारतीय उद्योगों को सुगठित करने के लिए किंचित् प्रयास किए गए थे। यह मुख्यतः चाय व कॉफी बागानों एवं चीनी मिलों जैसे क्षेत्रों में देखा गया। ब्रिटिश शासन काल से पूर्व, भारत से निर्यात अधिशेष रूप में दिखाई देता था; परंतु इस शासनकाल के दौरान, उन्नीसवीं शती उत्तरार्ध के आरंभ से, उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीनें आ जाने के बावजूद, भारतीय वस्तुओं को अपेक्षाकृत सस्ती मशीन-निर्यात आयातित वस्तुओं से कड़ा मुकाबला करना पड़ता था। यद्यपि प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे, किंतु ब्रिटिश शासन के दौरान खनिज उद्योग की वृद्धि दर निम्न ही नही। यद्यपि रेलों के लिए कोयले की ज़रूरत थी, किंतु शुरू में देश में खनन के स्थान पर उसका आयात किया जा रहा था। हाँ, आगे चलकर उसका देश में खनन आरंभ हो गया।

रेलों के आगमन (वर्ष 1853 में) से भारतीय उद्योग के विस्तार हेतु नए बाज़ार खुल गए। सन् 1947 तक भारत में कुल 42 रेल-तंत्र स्थापित हो चुके थे। फिर भी, औद्योगिक विकास अभी तक निश्चल ही बना हुआ था। उद्योग एक सीमित क्षेत्र तक ही फैले थे और कुछ असमान रूप से वितरित क्षेत्रों में ही संकेंद्रित थे। वर्ष 1905 तक भारत में आधुनिक सूती वस्त्र एवं पटसन उद्योग काफी प्रगति कर चुके थे। आज के महाराष्ट्र और गुजरात प्रांतों के सूती वस्त्र उद्योग के बड़े केंद्र विकसित हो गए थे। बीसवीं सदी में शुरुआती दशकों में रसायन, सीमेंट, उर्वरक, खनिज़ अम्ल, आदि उपभोज्य-वस्तु उद्योगों में भी उछाल देखा गया। तदोपरांत, द्वितीय विश्व युद्ध ने भारत के औद्योगिक इतिहास में एक नए दौर का सूत्रपात कर दिया। बड़े पैमाने के उद्योगों

के औद्योगिक उत्पादन ने कुछ विविधीकरण के साथ विस्तार पाया। परिणामस्वरूप, सभी वृहद्स्तरीय विनिर्माणन के उत्पादन का सामान्य सूचकांक 100 से बढ़कर 161.6 पर जा पहुँचा। कारखानों में रोज़गार का सूचकांक भी 100 से बढ़कर 159 पर पहुँच गया। बहरहाल, औद्योगिक आधार अथवा पूँजी उद्योगों के अभाव से औद्योगीकरण की प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ सकी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक टाटा लौह एवं इस्पात कंपनी (TISCO), जो वर्ष 1905 में स्थापित हुई, भारत का एकमात्र प्रमुख पूँजी उद्योग था। भारत की प्रति व्यक्ति आय इतनी कम थी कि भारतीय अर्थव्यवस्था के पास मूल एवं पूँजी उद्योग लगाने के लिए पर्याप्त बचत/निवेश नहीं था। भारत के प्रौद्योगिकीय पिछड़ेपन में भी इसमें अपनी भूमिका निभाई। उक्त कंपनी (TISCO) स्थापित करने के लिए भी इंजीनियर ब्रिटेन से बुलाने पड़े ताकि उद्योग की नींव रखी जा सके। भारतीय उद्योगों का एक बड़ा आघात विभाजन से लगा। सर्वाधिक मार कपास और पटसन उद्योग पर पड़ी क्योंकि वे अपने कच्चे माल के लिए कृषि पर निर्भर थे। कच्चा पटसन पैदा करने वाले क्षेत्र पाकिस्तान के हिस्से में चले गए थे, परंतु पटसन मिलें भारत में ही अवस्थित थीं। अतः, विभाजन के बाद, ये मिलें कच्चे माल के अभाव के कारण उत्पादन नहीं कर सकीं। विभाजन के समय, भारत में कुल 112 पटसन मिलें कार्यरत थी। कुल पटसन उत्पादन क्षेत्र का 85 प्रतिशत पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) में चला गया था। ऐसा ही कुछ सूती कपड़ा मिलों के साथ हुआ था। सर्वोत्तम कपास पैदा करने वाला क्षेत्र पाकिस्तान (सिंध और पश्चिम पंजाब) का हिस्सा हो गया। इसी कारण, स्वतंत्रता प्राप्ति की पूर्व-संध्या पर, इन मिलों के श्रमिक बेरोज़गार हो गए, जिसने नव-स्वतंत्र भारत में गरीबी को और बढ़ा दिया। वर्ष 1948–49 में, अनुषंगी क्षेत्र का योगदान सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 6.6 प्रतिशत ही रहा। उद्योगों में रोज़गार देश की कुल जनसंख्या का मात्र 1.8 प्रतिशत था (वर्ष 1941 में लगभग 27.4 करोड़, जिनमें 60.2 प्रतिशत 15–59 आयु वर्ग के कर्मचारी थे) ये ही उद्योग में कार्यरत थे और वह भी उपभोज्य-वस्तु उद्योगों में। आयात पर भारत की अत्यधिक निर्भरता, ख़ासकर पूँजीगत माल के लिए, का मुख्य कारण यही था। इन्हीं कारणों से, जब भारत को आज़ादी मिली तो उसका विशालकाय व्यापार घाटा भारत में नई सरकार के समक्ष प्रमुख चुनौतियों में एक था।

1.2.3 मुद्रा और वित्तीय क्षेत्र

ब्रिटिश शासन काल से पूर्व, भारत के विभिन्न प्रांत अपनी-अपनी मुद्राएँ चलाते थे। सर्वमान्य मुद्रा की संकल्पना अंग्रेज़ों द्वारा व्यापार एवं लगान वसूली को सरल बनाने के लिए लाई गई। भारत वर्ष 1835 से 1893 तक एक-धातु रजत मानक (यथा, केवल चाँदी के सिक्के ही प्रचलन में थे) ही अपनाता रहा। इसका अर्थ है कि चाँदी की बेहद माँग थी, जिससे चाँदी आयात की आवश्यकता बढ़ गई और इसने भारत के उच्च भुगतान शेष (BoP) घाटे के मुख्य कारणों में एक बड़ी भूमिका निभाई। फरवरी, 1920 में चाँदी की कीमत में असाधारण उछाल ने मुद्रा-विनिमय स्थैर्य बनाए रखना बेहद कठिन बना दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज़ों ने इस उप-महाद्वीप में कागज़ी मुद्रा की शुरुआत की। वर्ष 1861 में 'पेपर करेंसी एक्ट' ने सरकार को ब्रिटिश इंडिया के समग्र विस्तृत भू-भाग में नोट जारी करने का एकाधिकार दे दिया। उस समय, भारतीय रुपया ब्रिटिश पाउंड से अनुबद्ध था और उसका मूल्य अमेरिकी डॉलर के बराबर था। इससे देश में आंतरिक एवं बाह्य व्यापार को बढ़ावा मिला।

वित्तीय व्यवस्था में आते हैं– (i) वित्तीय संस्थान (गैर-बैंकिंग एवं बैंकिंग), (ii) वित्तीय बाज़ार (शेयर बाज़ार), तथा (iii) साधन एवं सेवाएँ जो बचत को गतिशील बनाने में

और पूँजी निर्माण बढ़ाने में मदद करती हों। बैंकिंग क्षेत्र में कुछ ही बैंक दृष्टिगोचर होते थे। परिणामतः, बैंक जनसाधारण को सरलता से सुलभ नहीं थे। उधार देने वाले प्रमुख स्रोत साहूकार या महाजन ही थे। यद्यपि, वर्ष 1786 में भारत में प्रथम बैंक स्थापित हो चुका था, इस क्षेत्र का विकास बहुत धीमा था। तदोपरांत, तीन प्रांतों – बंगाल, कलकत्ता और मद्रास – में एक-एक बैंक स्थापित किया गया। कंपनी एक्ट (1913) में संयुक्त-पूँजी बैंकों से संबद्ध कुछ अनुच्छेद तो थे परंतु व्यापारिक महाजनी अर्थात् बैंक फर्म के लिए कोई विशेष विधान नहीं था। वर्ष 1936 के संशोधित भारतीय कंपनी अधिनियम में न्यूनतम पूँजी, नकद रिज़र्व वांछनीयताओं एवं अन्य प्रचालन शर्तों से जुड़े कुछ प्रावधान जोड़े गए। फिर भी, वर्ष 1949 तक भारत में वाणिज्यिक बैंकों संबंधी कोई एकीकृत वैधानिक विनियम नहीं था। भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना वर्ष 1935 में एक निजी कंपनी के रूप में हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उक्त बैंक (RBI) का प्राधिकार मौद्रिक नीति तैयार करने तक बढ़ा दिया गया। परंतु उसे युद्ध की वित्तीयन लागत कम रखने के लिए एक सरकारी पहल वाली निम्न ब्याज़ दर नीति अपनाने और स्टर्लिंग संचय (विदेशी मुद्रा-विनिमय) के माध्यम से धनापूर्ति बढ़ाने के लिए बाध्य किया गया। वर्ष 1913 व 1948 के बीच भारत में लगभग 1100 लघु बैंक विद्यमान थे। इस क्षेत्र के तीव्रतर विकास के लिए, सरकार ने बैंकिंग कंपनी अधिनियम, 1949 लागू किया, जिसे आगे चलकर बैंकिंग विनियम अधिनियम, 1949 कहा जाने लगा। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में कुछ सहकारी बैंक बनाए गए और बाद में ये भी बैंकिंग अधिनियम के तहत् विनियमित कर दिए गए। बैंकिंग संस्थाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में नितांत अभाव था। इस अभाव को दूर करने के लिए काफी बाद में, वर्ष 1982 में, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की स्थापना की गई।

देश में पूँजी-निर्माण बढ़ाने के लिए शेयर बाज़ार आवश्यक हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति-पूर्व अवधि में देश में केवल तीन शेयर बाज़ार थे [बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज, 1877; अहमदाबाद स्टॉक एक्सचेंज, 1894; और कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज, 1908], जो सरकार द्वारा नियंत्रित नहीं थे। स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात्, भारत सरकार ने संयुक्त-पूँजी कंपनियों को बढ़ावा देने के लिए अनेक कदम उठाए। जनसामान्य की सेवा हेतु बैंकों की बेहद कमी थी। ऐसी छोटी-सी बैंकिंग व्यवस्था के साथ, बचत की गतिशीलता कठिन थी, जिस पर औद्योगिक क्षेत्र के तीव्रतर विकास हेतु तत्काल ध्यान दिए जाने की आवश्यकता थी।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य अभिलक्षण क्या थे?

....

....

....

....

....

....

....

2) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कृषि पर निर्भरता किस सीमा तक थी और अर्थव्यवस्था को योगदान में इसका कितना अंश था?

....

....

....

....

....

3) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत किन फसलों के उत्पादन में विश्व में अग्रणी था?

....

....

....

....

....

4) वे तीन क्षेत्र बताइए जिनमें कृषि क्षेत्र भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हानि उठा रहा था।

....

....

....

....

....

5) बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में किन घटनाओं ने भारत में उद्योगीकरण को बढ़ाने में योगदान दिया।

....

....

....

....

....

6) वह बड़ा आघात कौन-सा था जिससे सन् 1947 के आस-पास भारतीय उद्योग ने हानि उठाई?

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

7) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था में उद्योग का योगदान किस सीमा तक था? भारतीय अर्थव्यवस्था पर इस दशा का क्या परिणाम रहा?

....

....

....

....

....

8) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय बैंकिंग क्षेत्र की दशा में क्या कमी थी और इसको दूर करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् क्या तत्काल कदम उठाया गया?

....

....

....

....

1.3 अवसंरचना की स्थिति

यद्यपि अंग्रेज़ों ने कुछ आधारिक संरचना का विकास अवश्य किया, उनका मंतव्य इंग्लैंड को होने वाले विदेश व्यापार को सरल बनाना था। संचार सुविधाएँ बेहतर प्रशासनिक कारणों से विकसित की गई थीं। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, जब भारत ब्रिटेन की मदद कर रहा था, वायु परिवहन विकसित किया गया।

घरेलू उद्योगों के विकास हेतु वांछित अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मूल अवसंरचना का अभाव था। उदाहरण के लिए, बिजली किसी भी उद्योग के विकास के लिए वांछित मूल अवसंरचनाओं में एक थी। परंतु भारत में विद्युत उत्पादन क्षमता लगभग नगण्य थी। इसी प्रकार, सड़क एवं पत्तन तक पहुँच मार्ग विकसित तो हुए मगर ये तैयार माल और कच्चा माल अपने मूल स्रोत से पत्तनों और पत्तनों से प्रमुख व्यापार-केंद्रो तक रास्तों तक ही सीमित थे। कुछ अन्य क्षेत्र थे जो सेना के त्वरित आवागमन के लिए रेलमार्ग से जुड़े थे। इससे कच्चे माल के निर्यात और तैयार माल के आयात को प्रोत्साहन मिला। कच्चा माल घरेलू उत्पादन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता था परंतु अवसंरचना का अभाव औद्योगिक विकास मार्ग में एक बड़ा अवरोध था। संक्षेप में, स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अवसंरचना का अभाव स्वातंत्र्योत्तर काल में नीति-निर्माताओं के समक्ष एक प्रमुख चुनौती बन गया। अवसंरचना को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– भौतिक अवसंरचना और मानवीय अवसंरचना। भौतिक अवसंरचना में आते हैं– सड़कें, रेलमार्ग, वायुमार्ग, जलमार्ग, बिजली उत्पादन, बैंकिंग, बीमा, संचार माध्यम, आदि। इसे आर्थिक अवसंरचना भी कहा जाता है क्योंकि यह आय सृजन में सीधे योगदान देती है। अवसंरचना की दूरी श्रेणी, मानवीय अवसंरचना, सामाजिक अवसंरचना भी कहलाती है। इसमें लोगों का प्रशिक्षण एवं कौशल विकास शामिल होता है ताकि वे उत्पादन प्रक्रिया में योगदान दे सकें। यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद पर सामाजिक अवसंरचना के विकास का प्रभाव कालांतर में प्रकट होता है, आर्थिक विकास के लिए यह बहुत ज़रूरी होता है।

1.3.1 सामाजिक अवसंरचना

सामाजिक अवसंरचना में वे परिसंपत्तियाँ आती हैं जो सामाजिक/मानवीय विकास में सहायक होती हैं। इनके उदाहरण हैं– विद्यालय, विश्वविद्यालय, अस्पताल, आवास व अन्य इमारतें। सामाजिक अवसंरचना मानव विकास के लिए वांछित होती है। ब्रिटिश शासन काल में मानव विकास को वरीयता प्राप्त नहीं थी। स्वास्थ्य-रक्षा क्षेत्र की स्थिति बुरी थी, जहाँ अस्पताल बड़े शहरों तक ही सीमित थे। प्राचीन स्वास्थ्य रक्षा व्यवस्था का भी ह्रास हो रहा था। परिणामतः, शिशु मृत्युदर, मातृ मृत्यु दर और मृत्यु दर– सभी बहुत ऊँची थीं। जीवाश मात्र 32 वर्ष थी। शिक्षा-क्षेत्र कुछ बेहतर था, परंतु वह सभी को सुलभ नहीं था। हालांकि, अंग्रेज़ों ने औपचारिक स्कूल शुरू किए, वे कुछ शहरों में ही सीमित रहे। अंग्रेज़ी शिक्षा ब्रिटिश प्रशासन में नौकरी पाने के लिए एक स्रोत बन गई। उच्च शिक्षा के लिए, समस्त जनसंख्या जो कि वर्ष 1941 में 27.4 करोड़ थी, केवल सोलह विश्वविद्यालय ही काम कर रहे थे। इसका अर्थ है कि 1.7+ करोड़ लोगों के लिए मात्र एक विश्वविद्यालय था। इससे प्रकट होता है कि शिक्षा जो कि मानव विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है, सभी के लिए यथेष्ट रूप से सुलभ नहीं थी। परिणामतः, स्वतंत्रता प्राप्ति के समय साक्षरता दर पुरुषों के बीच 16 प्रतिशत और स्त्रियों के बीच 7 प्रतिशत तक ही बनी रही।

1.3.2 आर्थिक अवसंरचना

आर्थिक अवसंरचना उत्पादन प्रक्रिया में सहायक होती है और इसका सीधा प्रभाव सकल घरेलू उत्पाद पर पड़ता है। इसे माँग-प्रेरित सेवा भी कहा जाता है। आर्थिक अवसंरचना के उदाहरणों में आते हैं– सड़कें, वायु मार्ग, रेलमार्ग, संचार संजाल, जलापूर्ति, सिंचाई प्रणालियाँ तथा बिजली।

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक दूरवर्ती नौ भार-परिवहन का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम नौगम्य नदियाँ ही थीं। निकटवर्ती व्यापार एवं यात्रा के लिए, परिवहन के सामान्य साधन बैलगाड़ियाँ और छोटी डिंगियाँ ही थे। दूरवर्ती व्यापार हेतु परिवहन की ऐसी व्यवस्थाओं से श्रम और समय दोनों ही बहुत लगते थे। रेलों के आगमन के साथ ही, लंबी दूरी की यात्रा में लगने वाले कम समय ने लोगों को रेलमार्गों की ओर आकर्षित किया। रेल निर्माण कार्य बड़े पैमाने पर 1850 के दशक में आरंभ हुआ। यह वर्ष 1870 तक लगभग अनन्य रूप से निजी क्षेत्र (इंग्लैंड के उद्यमियों) द्वारा ही किया जाता रहा। वर्ष 1870 में, जब सरकार को लगा कि रेलमार्गों का निर्माण एक लाभदायक व्यापार है तो उसने 'ब्रॉड गेज' प्रणाली द्वारा कलकत्ता, बंबई, मद्रास और दिल्ली को जोड़ने का काम किया। फिर 1920 के दशक तक भारत के सभी रेलमार्ग सरकारी प्रबंधन के तहत आ गए। तब तक भारतीय रेल व्यवस्था विश्व के सबसे बड़े संजालों में गिनी जाने लगी थी। रेल निर्माण कार्य ने भारत में अभियांत्रिकी उद्योग को प्रोत्साहित किया। इससे वित्तीय एवं श्रमिक बाज़ारों को भी बढ़ावा मिला। लोग अब नौकरियों के लिए दूरवर्ती स्थानों तक प्रवास कर सकते थे। ये प्रभाव प्रथम विश्वयुद्ध के समय तक ही क्षीण रहे। रेलमार्गों का प्रयोग दोनों विश्व-युद्धों के दौरान उद्योग विकसित करने के लिए किया गया। सरकार ने मरम्मत और कलपुर्ज़ों के उत्पादन के लिए भारत में रेल कार्यशालाएँ स्थापित कीं, परंतु इनके भरपूर इस्तेमाल का अभाव ही रहा। भारत में कोयला खनन रेलों की आवश्यकता पूर्ति के लिए ही आरंभ हुआ। भारत में आधारभूत धातु उद्योगों के लिए माँग के एक प्रमुख स्रोत स्वरूप रेलों की भूमिका, इस प्रकार महत्त्वपूर्ण रही।

कच्चा माल और तैयार माल लाने-ले जाने के लिए आवश्यक आधारभूत अवसंरचना सड़कें ही उपलब्ध कराती हैं। उचित सड़कों के अभाव में, कुछ भी लाना-ले जाना कठिन होगा। सड़कें औपनिवेशिक राजकीय निवेश का एक निम्न पूर्वता क्षेत्र ही रहीं क्योंकि सेना के आवागमन के लिए घोड़े प्रयोग किए जाते थे। केवल ऐसे ही मार्गों को ही महत्त्व दिया जाता था जो रेलमार्गों व पत्तनों तक कच्चा माल लाने-ले जाने के लिए वांछित थे। सड़कों की लंबाई रेल-पटरियों की लंबाई की अपेक्षा कम गति से बढ़ी। वर्ष 1931 तक, 'पक्की' सड़कों की लंबाई प्रति एक हज़ार व्यक्ति मात्र 0.4 किलोमीटर थी। यह अनुपात अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों (सीलोन एवं मलय) में तो 1.5 किलोमीटर से ऊपर था। सड़क-निर्माण से सरकार को लाभ अपेक्षाकृत कम था। भारत के पास एक लंबी तटरेखा थी जो ब्रिटिश शासनकाल में व्यापार एवं वाणिज्य हेतु प्रयोग की जाती थी। मौसुलीट्टनम और कैम्बे जैसे परंपरागम पत्तनों का ह्रास देखा गया। अधिकांश विदेश व्यापार करने वाले प्रमुख पत्तन अब नए स्थल थे, जहाँ रेलमार्ग और आधुनिक बंदरगाह अभिमुख होते थे (जैसे– बंबई, मद्रास, कलकत्ता, कराची और रंगून)। इनमें से प्रत्येक पत्तन किसी विशाल पृष्ठ प्रदेश के उत्पादों के लिए एक निर्यात ब्रिक्री-केंद्र की भूमिका निभाता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, द्रुत औद्योगिक विकास में अवरोध आर्थिक अवसंरचना के अभाव से ही उत्पन्न हुआ।

डाक सेवाएँ वर्ष 1858 में ब्रिटिश शासन काल में ही आरंभ हुईं परंतु उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में ही ये व्यापक रूप से प्रयुक्त जनोपयोगी सेवाएँ बन सकीं। यह विस्तार माँग-प्रेरित था क्योंकि बैंकों के अभाव में, डाकघर ही धन संबंधी स्वदेशीय प्रेषणों हेतु अभिकरण के रूप में काम करते थे। डाकघर लगभग सभी बसे गाँवों में विद्यमान होते थे। डाकघरों की अवसंरचना तदंतर ग्रामीण भारत में बचत को बढ़ावा देने के लिए प्रथम भारतीय सरकार के लिए उपयोगी साबित हुई।

अवसंरचना विकास की प्रक्रिया में अंतर्निहित असमानताएँ देखी गईं। बड़े हिस्सों में सिंचाई व्यवस्थाएँ पुरातन और अविकसित ही रहीं। रेलमार्गों ने सड़कों को पीछे धकेल दिया और बिजली उत्पादन महत्त्वपूर्ण शहरों तक ही सीमित रहा। संचार और स्थानीय परिवहन में, इस प्रकार, बहुत अधिक क्षेत्रीय भिन्नता देखी जाती थी।

1.3.3 प्रशासनिक अवसंरचना

प्रशासनिक अवसंरचना अन्य कई संस्थाओं को चलाने एवं महत्त्वपूर्ण सेवाएँ देने के लिए वांछित होती है। यह भौतिक एवं मानवीय अवसंरचना का एक संयोजन होती है जो किसी भी सरकार के लिए सकल प्रशासन का चलाने में मददगार होती है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत के हर प्रांत में अपनी ही प्रशासनिक व्यवस्था थी। इतने बड़े क्षेत्र पर शासन करने के लिए प्रशासनिक अवसंरचना विकसित करना एक बाध्यकारी कारण बन गया। भू-राजस्व विभाग प्रत्येक प्रांत में खोला गया था। जनसामान्य की ओर से विप्लव एवं विद्रोह प्रायः देखने में आते थे। इसीलिए, किसी भी विद्रोह को रोकने के लिए स्थानीय पुलिस स्टेशन स्थापित करना ज़रूरी हो गया था। डाक एवं तार विभाग सूचना के तीव्रतर आवागमन के लिए जगह-जगह खोले गए। चुनावों की प्रक्रिया भी ब्रिटिश शासन काल में ही शुरू हुई और इसी कारण चुनाव कराने के लिए आवश्यक अवसंरचना स्थापित की गई। यद्यपि यह अवसंरचना समस्त जनसंख्या तक सेवाएँ पहुँचाने के लिए, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी, पर्याप्त नहीं थी, एक ही प्रशासनिक अवसंरचना को भारत सरकार के विभिन्न प्रशासनिक प्रकार्यों के लिए प्रयोग करना पड़ता था।

1.4 समष्टि-अर्थशास्त्रीय समुच्चय

किसी भी अर्थव्यवस्था का कार्य-निष्पादन किसी वित्त वर्ष में उत्पादित वस्तु एवं सेवाओं की मात्रा के आधार पर आँका जा सकता है। जब हम इस कुल उत्पादन को मौद्रिक पदों में आकलित करते हैं तो इसे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहा जाता है। इस समूहन के अलावा, किसी अर्थव्यवस्था की शक्ति मापने के अन्य समष्टि-अर्थशास्त्रीय संकेतक भी हैं। उदाहरण के लिए, वस्तु एवं सेवाओं के उत्पादन हेतु आवश्यक पूँजी को पूँजी-निर्माण एवं बचत के माध्यम से मापा जाता है। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था के कार्य-निष्पादन को समता के दृष्टिकोण से आँके जाने के लिए, प्रति व्यक्ति आय (PCI) की वृद्धि दर पर विचार किया जाता है। यह दर (PCI) कुल जनसंख्या को राष्ट्रीय आय से विभाजित कर ज्ञात की जाती है।

वर्ष 1900—1947 के दौरान राष्ट्रीय आय मात्र 0.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी। प्रति व्यक्ति आय और भी कम अर्थात् 0.1 प्रतिशत की दर से ही बढ़ी। इसी प्रकार, वर्ष 1900 से 1947 तक लगभग 50 वर्ष की अवधि में प्रति व्यक्ति आय किंचित् सी ही वृद्धि दर्शाती है (तालिका 1.1)। तद्नुसार, राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि बेहद कम रही। भारत के विभिन्न राज्यों में वास्तविक आय में वृद्धि दर असमान रही। राष्ट्रीय आय का अधिकतम भाग कृषि से आता था (तालिका 1.2)। इसके बावजूद, कृषि क्षेत्र की संवृद्धि राष्ट्रीय आय के सभी तीन योगकारी क्षेत्रों में सबसे कम पाई गई।

तालिका 1.1 : राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय (1900—1947) 1948 की कीमतों में

वर्ष	राष्ट्रीय आय (अरब में)	प्रति-व्यक्ति आय (रुपयों में)
1900	43.4	228
1947	51.5	239

स्रोत :तीर्थंकर रॉय, दि इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया : 1857—1947, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस; तीसरा संस्करण।

नोट : 47 वर्ष की अवधि में राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 0.36 प्रतिशत रही और प्रति व्यक्ति आय में यही दर 0.1 प्रतिशत रही। उक्त वृद्धि दरें एक्सल में यह सूत्र प्रयोग कर जाँची जा सकती हैं = (दर, — 43.4, 51.5)*100. प्रति व्यक्ति आय भी इसी प्रकार जाँची जा सकती है।

तालिका 1.2 : राष्ट्रीय आय क्षेत्रीय अंश (%)

वर्ष	प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक	विदेश से निवल आय
1900—1904	6.6	12	23.5	—1.5
1942—1946	53.3	14.5	32.3	—0.2
प्रतिवर्ष वृद्धि दर	0.4	1.4	1.7	

स्रोत : तपन राय चौधरी व अन्य, इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया : भाग 2, कैंब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस।

द्वितीयक क्षेत्र में खनन, बड़े पैमाने के उद्योग व लघु उद्योग आते थे। वृहद् उद्योग 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ा, लेकिन उससे कहीं बड़ा भाग, यथा, लघु उद्योग एक प्रतिशत प्रतिवर्ष से भी कम की दर से बढ़ा। तृतीयक क्षेत्र के भीतर सरकारी उपक्रमों का योगदान 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से जबकि परिवहन और स्थावर संपदा 1.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ा। जैसा कि ऊपर कहा गया, भारतीय अर्थव्यवस्था की समग्र औसत वृद्धि दर वर्ष 1900 से 1947 की अवधि में 0.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के इतिहासकार एंगस मैडसिन द्वारा किए गए एक आकलन के अनुसार, वैश्विक आय में भारत का अंश वर्ष 1700 में 22.6 प्रतिशत (यूरोप के 23.3 प्रतिशत अंश के मुकाबले) से गिरकर वर्ष 1952 में मात्र 3.8 प्रतिशत रह गया। वैश्विक आय में भारत के अंश में यह क्रमिक गिरावट स्पष्ट करती है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में गरीबी क्यों थी।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50—100 शब्दों में लिखें।)

1) इस तथ्य के बावजूद कि भारत सबसे बड़ा रेल संजाल वाला देश था और पटसन जैसे कुछ उत्पादों में विश्व के अग्रणी उत्पादकों में एक था, क्या यह दृष्टिकोण उचित है कि अंग्रेज़ों ने भारत की अवसंरचना को विकसित करने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया?

....

....

....

....

....

2) वर्ष 1947 के आस-पास विद्यमान सामाजिक अवसंरचना के स्तर के लिहाज़ से ब्रिटिश नीति द्वारा घोर उपेक्षा के विषय में सामाजिक संकेतक क्या बताते हैं?

....

....

....

....

....

3) क्या आप इस प्रस्थापन से सहमत हैं कि अंग्रेज़ों द्वारा अवसंरचना विकसित किए जाने के प्रति अपर्याप्त ध्यान दिए जाने से भारत में आर्थिक असमानताओं में इज़ाफा हुआ?

....

....

....

....

....

4) वर्ष 1990 से 1947 तक 47 वर्ष की अवधि में भारत की राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति आय किस दर से बढ़ी? इन वृद्धि दरों के आलोक में भारतीय अर्थव्यवस्था के कार्य-निष्पादन का आप लक्षण-वर्णन कैसे करेंगे?

....

....

....

....

....

1.5 सार-संक्षेप

अपनी आज़ादी के समय भारतीय अर्थव्यवस्था एक सुस्त और पराश्रित अर्थव्यवस्था थी। प्रतिव्यक्ति आय कम थी। विदेश व्यापार इंग्लैंड के उद्योगों की आवश्यकता पूर्ति हेतु ही अभिप्रेरित था। कृषि पर प्रति हेक्टेयर निम्न उत्पादकता का बोझ था। यह क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद में 65 प्रतिशत से अधिक का योगदान देता था परंतु इसकी वृद्धि दर अर्थव्यवस्था के तीनों अग्रणी क्षेत्रों (यथा, प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक) में न्यूनतम, मात्र 0.4 प्रतिशत थी। इस प्रकार, लोगों की निर्भरता कृषि पर थी और वहाँ काफी प्रच्छन्न बेरोज़गारी व्याप्त थी। साक्षरता दर निम्न थी, जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही ऊँची थीं जबकि स्वास्थ्य पैरामीटर बेहद निम्न। साथ ही, महामारियाँ आए दिन फैलती थीं। फलतः, अर्थव्यवस्था में भूख और भुखमरी का बोलबाला था और भारत में बेरोज़गरी व्याप्त थी।

1.6 शब्दावली

प्रछन्न बेरोज़गारी : इसे 'अप्रकट बेकारी' भी कहा जा सकता है। यह उस समय होती है जब श्रमबल के पास या तो काम ही न हो या फिर वह इस तरीके से काम कर रहा हो कि उसमें उसकी सीमांत उत्पादकता शून्य हो।

अल्प-रोज़गार : यह एक ऐसी स्थिति है कि जब श्रमबल का कोई भाग काम करने का इच्छुक तो हो मगर उसे अपने कौशल, शिक्षा एवं क्षमता के अनुसार काम न मिल रहा हो।

वृद्धि दर : वृद्धि दर यह मापती है कि कोई चर कितनी तेज़ी से बढ़ रहा है। यदि यह आर्थिक वृद्धि दर है तो यह बताएगी कि कोई अर्थव्यवस्था कितनी तेज़ी से विकसित हो रही है। ऐसा एक तिमाही में देश के सकल घरेलू उत्पाद की तुलना पिछली तिमाही में उसकी गणना से करके किया जाता है। चारों तिमाहियों का औसत वार्षिक वृद्धि दर दर्शा देता है।

प्रतिव्यक्ति आय : प्रतिव्यक्ति आय राष्ट्रीय आय का वह औसत अंश है जो हर व्यक्ति प्राप्त कर रहा हो। यह राष्ट्रीय आय को कुल जनसंख्या से विभाजित कर ज्ञात की जा सकती है।

भुगतान शेष : इसमें शेष जगत के साथ देश के लोगों एवं सरकार के सभी लेन-देन सारबद्ध किए जाते हैं। इन लेन-देनों में वस्तुओं,

सेवाओं एवं पूँजी के आयात-निर्यात के साथ-साथ विदेशी मदद एवं प्रेषण जैसे हस्तांतरण भुगतान भी शामिल होते हैं।

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Tirthankar Roy, The Economic History of India: 1857-1947, Oxford University Press; 3 Edition.

2) Tapan Raychaudhuri, Dharma Kumar, Meghnad Desai and Irfan Habib, The Cambridge Economic History of India: Volume 2, C.1751-c.1970: Cambridge University Press.

3) Dharma Kumar (ed.) (1982). Cambridge Economic History of India Vol. 11, Orient Longmans, Hyderabad.

4) Kapila, Uma (ed.), 2006-07. Indian Economy Since Independence, 18th Edition, Academic Foundation, Delhi.

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) (i) व्यापक बेरोज़गारी, गरीबी और भूख; (ii) बारंबार अकाल एवं सूखा; (iii) राष्ट्रीय आय का असमान विवरण; (iv) कृषि पर अत्यधिक निर्भरता; (v) उद्योगीकरण का निम्न स्तर; (vi) निम्न स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्य विकास प्राचल, आदि।

2) क्रमशः 85 प्रतिशत जनसंख्या और 50 प्रतिशत।

3) भारत मूँगफली क सबसे बड़ा उत्पादक था (विश्व उत्पादन का 32 प्रतिशत), 41 प्रतिशत पटसन और 27 प्रतिशत धान। यह विश्व में अमेरिका व चीन के बाद तीसरा सबसे बड़ा कपास का उत्पादक था।

4) प्रति हेक्टेयर कम उत्पादन, उत्पादन की पुरानी तकनीकें तथा कृषि के व्यापारीकरण का अभाव।

5) दो विश्व-युद्धों में सूती वस्त्र एवं पटसन, रसायन, सीमेंट, उर्वरक, आदि जैसे उद्योगों के विकास में योगदान दिया।

6) विभाजन से कपास व पटसन उद्योगों को करारा झटका लगा, ख़ासकर पटसन उद्योग को, क्योंकि अनेक पटसन पैदा करने वाले क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान में चले गए थे।

7) जनसंख्या का 1.8 प्रतिशत भाग उद्योग में नियोजित था, जहाँ सकल घरेलू उत्पाद में उसका योगदान 6.6 प्रतिशत था। इस कारण भारत को अपनी आज़ादी के समय काफी व्यापार घाटा उठाना पड़ा।

8) बैंकिंग सेवाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में बेहद अपर्याप्त थी। इसी से उबरने के लिए नाबार्ड की स्थापना की गई।

बोध प्रश्न 2

1) हाँ, यह न्यायोचित है। अपने निजी हित को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं के आवागमन को सरल बनाने के लिए ही अंग्रेज़ों द्वारा चयनात्मक आधार पर रेलमार्ग और सड़कें विकसित की गईं। घरेलू उत्पादन को आसान बनाने के लिए बिजली, सड़कें आदि अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवसंरचना का विकास अपूर्ण ही छोड़ दिया गया था। इसके अलावा, सामाजिक अवसंरचना के विकास अथवा मानव विकास को प्राथमिकता नहीं दी गई, जो कि आर्थिक विकास के लिए अति महत्त्वपूर्ण था।

2) पुरुष साक्षरता मात्र 16 प्रतिशत थी और महिला साक्षरता सिर्फ 7 प्रतिशत। जहाँ शिशु मृत्यु दर, मातृ मृत्यु दर और समग्र मृत्यु दर बहुत अधिक थीं, जीवन-प्रत्याशा मात्र 32 वर्ष थी।

3) हाँ, ऐसा इसलिए है कि रेलमार्गों पर ध्यान दिए जाने से सड़कों पर से ध्यान हट गया और बिजली उत्पादन महत्त्वपूर्ण शहरों तक ही सीमित रहा। संचार और स्थानीय परिवहन में, इस प्रकार, भारी क्षेत्रीय अंतर देखा गया। बड़े हिस्सों में सिंचाई व्यवस्थाएँ भी घिसी-पिटी और अविकसित थीं।

4) क्रमशः 0.4 प्रतिशत और 0.1 प्रतिशत (संयुक्त वार्षिक वृद्धि दरें)। ये वृद्धि दरें दर्शाती हैं कि बीसवीं सदी पूर्वार्ध में भारतीय अर्थव्यवस्था निष्क्रिय प्राय ही थी।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 विकास प्रतिमान*

संरचना

2.0 उद्देश्य
2.1 विषय प्रवेश
2.2 विकास के प्रति दृष्टिकोण
2.2.1 बाज़ार-आधारित दृष्टिकोण
2.2.2 राज्य-निर्देशित दृष्टिकोण
2.2.3 समावेशी संवृद्धि दृष्टिकोण
2.2.4 धारणीय विकास दृष्टिकोण
2.3 आर्थिक व्यवस्थाएँ : पूँजीवाद एवं समाजवाद
2.4 विकास के दो चरण : मिश्रित अर्थव्यवस्था
2.4.1 समादेशन शिखर पर सार्वजनिक क्षेत्र (चरण-I)
2.4.2 बाज़ार की वर्धमान भूमिका (चरण-II)
2.5 विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण
2.5.1 व्यापार-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात
2.5.2 औसत शुल्क दर
2.5.3 निर्यात विविधीकरण
2.5.4 निर्यातों का उत्पाद संयोजन
2.5.5 निर्यातों की दिशा
2.5.6 वित्तीय एकीकरण
2.6 सार-संक्षेप
2.7 शब्दावली
2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप, इस योग्य होंगे कि :

- 'संवृद्धि' एवं 'विकास' के बीच अंतर कर सकें;
- विकास के विभिन्न दृष्टिकोणों पर चर्चा कर सकें;
- पूँजीवाद एवं समाजवाद वाली दो आर्थिक व्यवस्थाओं के बीच भेद कर सकें;
- 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' की संकल्पना को परिभाषित कर सकें;
- भारत में अनुकृत विकास मार्गों के दो प्रमुख चरणों का विश्लेषण कर सकें; तथा
- विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के एकीकरण में रुझानों को स्पष्ट कर सकें।

* प्रो. सेबक जाना, विद्या सागर विश्वविद्यालय

2.1 विषय प्रवेश

आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास मूल रूप से भिन्न हैं। आर्थिक संवृद्धि का सामान्यतः अर्थ होता है – राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि। जबकि आर्थिक विकास में, वृद्धि के अतिरिक्त, स्वास्थ्य, शिक्षा व मानव कल्याण के अन्य पहलुओं के साथ-साथ औद्योगीकरण व शहरीकरण जैसे प्रमुख संरचनात्मक परिवर्तन भी शामिल होते हैं। विकास मापन हेतु विशिष्ट संकेतक (जैसे HDI) अथवा सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य (MDG) प्रयोग किए जाते हैं। मानव विकास सूचकांक (HDI) एक संश्लिष्ट मापदंड है जो एक दीर्घ जीवन, ज्ञानार्जन एवं भौतिक कल्याण की ओर उन्मुख लक्ष्यों को दर्शाता है। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (MDGs) किसी समय विशेष में मानव कल्याण में प्रगति हेतु लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की बहुलता पर निर्भर करते हैं।

2.2 विकास के प्रति दृष्टिकोण

ऐतिहासिक रूप से, विकास के आर्थिक विश्लेषण विषयक अनेक विचार-पद्धतियाँ अथवा विचार विद्यमान रहे हैं [यथा– एडम स्मिथ एंड क्लासिकल पॉलिटिकल इकोनोमी (1776), मार्क्सिस्ट इकनोमिक्स ऑफ़ मार्क्स एंड एंजल्स (1848), निओक्लासिकल इकनोमिक्स ऑफ़ जेवॅन्स, मेंजर एंड मार्शल (1890), केन्ज़ियन मैक्रोइकनोमिक्स (1930), सोलो की निओक्लासिकल ग्रोथ थ्योरी (1950), डिपेंडेंसी थ्योरीज़ (1960), आदि] पारंपरिक या शास्त्रीय एवं नवशास्त्रीय अर्थशास्त्रियों का मानना था कि अल्पविकास का प्रमुख कारण पूँजी व श्रम जैसे उत्पादन उपादानों की कमी अथवा प्रौद्योगिकीय प्रगति का अभाव होता है। केंजीय विचार-पद्धति के अनुसार, अल्पविकास संबंधी समस्याएँ सरकारी क्रियाकलापों के विस्तार से हल की जा सकती हैं। मार्क्स ने अल्पविकास की समस्याओं को उत्पादन की एशियाई रीति एवं वर्ग-संघर्ष के अभाव की दृष्टि से समझाया था। पॉल बैरन एवं आन्द्रे फ्रैंक जैसे नव-मार्क्सवादी लेखकों ने अल्प-विकास की समस्याओं को वैश्विक पूँजीवाद एवं शोषण जैसे बाह्य कारकों की दृष्टि से स्पष्ट किया है।

आर्थिक विकास के लक्ष्य हासिल करने के लिए अनेक दृष्टिकोण विद्यमान हैं। इन्हें उस विशिष्ट संस्थागत आधार की आवश्यकता होती है जिसके भीतर आर्थिक क्रियाकलाप संपन्न किए जाते हैं। स्थूलतः, बाज़ार एवं राज्य ऐसी दो वृहद् संस्थाएँ हैं जिनसे इन आर्थिक क्रियाकलापों को सरल बनाने की अपेक्षा की जाती है।

2.2.1 बाज़ार-आधारित दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण में यह मानकर चला जाता है कि, सुविकसित, पूर्णरूपेण प्रतिस्पर्धी बाज़ारों की दशाओं में, संसाधन लागतें न्यूनतम और लाभ अधिकतम करते हुए इष्टतम रूप से प्रयोग किए जाते हैं। मूल्य संकेतक, लाभों समेत, तीव्रतर संवृद्धि हासिल करने हेतु निवेशार्थ प्रोत्साहन के रूप में काम करते हैं। आदर्शतः, इसीलिए, बिना किसी हस्तक्षेप के पूर्णतः कार्यरत बाज़ारों को तीव्रतर संचयन एवं संवृद्धि हेतु एक रणनीति के रूप में देखा जाता है। तथापि, द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल में, जब अधिकांश पूर्व उपनिवेश स्वतंत्र हो गए और अपनी विकास प्रक्रिया में जुट गए, इन देशों को बाज़ारों में गंभीर अभावों का सामना करना पड़ा क्योंकि अनेक अर्थव्यवस्थाएँ अल्पविकसित थीं। बाज़ारों का अभाव विशेष रूप से 'निर्वाह प्रखंडों' में देखा जा सकता था। ये प्रखंड जनहित के ऐसे अनेक विकास क्षेत्रों से जुड़े थे जिनके लिए कोई बाज़ार नहीं था

परंतु असीम जन आवश्यकता अवश्य थी। इनमें से अनेक अल्प-विकसित बाज़ारों को राज्य द्वारा एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में विकसित करना पड़ा ताकि विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सके।

2.2.2 राज्य-निर्देशित दृष्टिकोण

अल्पविकसित देशों में, (i) निर्वाह कृषि, (ii) कमज़ोर औद्योगीकरण, (iii) व्यापक अल्प रोज़गार, (iv) निम्न आय, बचत एवं निवेश, (v) निकृष्ट अवसंरचना, आदि की विद्यमानता के कारण निवेश में बड़ी सहायता (big push) की आवश्यकता थी। राज्य हस्तक्षेप के समर्थकों के विचार से प्रमुख क्षेत्रों में वांछित आर्थिक परिवर्तन नियोजित संघटन एवं सार्वजनिक क्षेत्र को संसाधन आबंटन के माध्यम से हासिल किया जा सकता था। तथापि, ऐसी अनेक अर्थव्यवस्थाओं में जो आरंभ में इस दृष्टिकोण के पक्ष में थीं, सार्वजनिक क्षेत्र-निर्देशित संवृद्धि रणनीति उसके बाद से लाल-फ़ीताशाही, भ्रष्टाचार (किराया-अपेक्षी), अकुशलता एवं हानियों के आधार पर नीति लाभ से वंचित ही रही है। इन तर्कों के आधार पर, सामाजिक महत्त्व के विशिष्ट क्षेत्रों में राज्य की भूमिका घटाने और अर्थव्यवस्था में अवसंरचनात्मक आधार स्थापित करने की दिशा में रुझान देखा गया है। फिर भी, कुछ लोगों का तर्क है कि राज्य की भूमिका अल्प नहीं होनी चाहिए, विशेषकर स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अवसंरचना के क्षेत्रों में, ताकि उद्यमवृत्तिपूर्ण क्रियाकलाप को फलने-फूलने हेतु उचित परिवेश मिल सके।

2.2.3 समावेशी संवृद्धि दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण में संवृद्धि और समता को परस्पर संपूरक माना जाता है। भारत में, पदबंध 'समावेशी संवृद्धि' ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) में एक औपचारिक विकास रणनीति के रूप में दिखाई दिया। तथापि, 'न्याय के साथ संवृद्धि' अथवा 'समता के साथ संवृद्धि' की संकल्पना भारत में प्रथम योजना की शुरुआत से ही नियोजन रणनीति का हिस्सा रही है। 'न्याय के साथ संवृद्धि' (यथा, विवरणात्मक न्याय) हेतु मूल आधार-वाक्य यह रहा है कि धन-सम्पत्ति एवं परिसम्पत्तियों में छोर विषमताओं वाली किसी भी अर्थव्यवस्था में बिना हस्तक्षेप के राष्ट्रीय आय की वृद्धि असमानताओं के स्थायीकरण में ही परिणत होगी। दूसरे शब्दों में, संवृद्धि के अलावा, चूँकि असमानताओं में कमी लाना विकास के उद्देश्यों में से एक है, यह आवश्यक माना जाता है कि संवृद्धि रणनीति में समुचित संस्थागत व्यवस्थाएँ शामिल होनी चाहिए ताकि संवृद्धि के लाभों का न्यायोचित वितरण सुनिश्चित हो सके। न्यायोचित वितरण वाली संवृद्धि हेतु कोई भी सांस्थानिक प्राधार उत्पादन क्षेत्रों में राज्य की सार्थक भूमिका की कल्पना उतनी ही करता है जितनी कि उसके वितरण के विनियमन में।

2.2.4 धारणीय विकास दृष्टिकोण

धारणीय विकास यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि विश्व का ध्यान संवृद्धि पर होने की बजाय धारणीय विकास के लक्ष्य पर होना चाहिए ताकि 'सांझे की त्रासदी' से बचा जा सके, जो कि एक ऐसी स्थिति है जिसमें सामान्य संसाधनों का अतिदोहन किया जाता है, क्योंकि वैयक्तिक अभिकर्ताओं में उन्हें धारणीय रूप से प्रयोग किए जाने की अभिप्रेरणा का अभाव होता है। ब्रंटलैंड कमीशन रिपोर्ट (1987) में कहा गया कि – *धारणीय विकास ऐसा विकास है जो अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भावी पीढ़ियों के सामर्थ्य से समझौता किए बग़ैर वर्तमान काल की आवश्यकताएँ पूरी करता हो।* अतएव, यह दो प्रमुख अनिवार्यताओं को रेखांकित करता है – (i)

विश्व के ग़रीब वर्ग के हितों के संरक्षण की आवश्यकता; तथा (ii) पर्यावरणीय संसाधनों का दोहन रोकने में प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक संगठनों की कमज़ोरियाँ (ताकि भावी पीढ़ियों की आवश्यकताएँ प्रतिकूलतः प्रभावित न हों), जिन पर यथावत् प्रकाश डाले जाने की आवश्यकता है। उक्त आयोग ने विशेष रूप से किसी भी समाज के भीतर ग़रीबों और सामान्य रूप से अखिल विश्व की आवश्यकताओं को पहले पूरा करने की आवश्यकता पर बल दिया। धारणीय विकास हेतु तर्काधार, इसीलिए खासकर 'अक्षतिपूर्तित' भावी लागतों को टालने अथवा कम करने पर यथायोग्य ध्यान देते हुए, समाज के सर्वाधिक अलाभान्वित प्रखंडों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाना है। धारणीय विकास लक्ष्यों (SDGs) के अंतर्गत 17 लक्ष्य रखे गए हैं – (i) शून्य दरिद्रता; (ii) शून्य भुखमरी; (iii) उत्तम स्वास्थ्य एवं कल्याण; (iv) उत्कृष्ट शिक्षा; (v) लैंगिक समानता; (vi) स्वच्छ जल एवं स्वच्छता प्रबंध; (vii) आर्थिक पहुँच के भीतर व स्वच्छ ऊर्जा; (viii) उपयुक्त कार्य एवं आर्थिक वृद्धि; (ix) उद्योग, नवप्रवर्तन एवं अवसंरचना; (x) लघुकृत असमानता; (xi) धारणीय शहर एवं समुदाय; (xii) उत्तरदायित्वपूर्ण उपभोग एवं उत्पादन; (xiii) जलवायु प्रभाव; (xiv) जल जीवन; (xv) थल जीवन; (xvi) शांति, न्याय एवं सशक्त संस्थाएँ; तथा (xvii) लक्ष्य हासिल करने हेतु साझेदारियाँ।

2.3 आर्थिक व्यवस्थाएँ : पूँजीवाद एवं समाजवाद

पूँजीवाद एक ऐसी सामाजिक संरचना है जिसमें पूँजीवादी वर्ग समाज के उत्पादन साधनों पर अपने स्वामित्व एवं नियंत्रण के आधार पर फलता-फूलता है। यह, तद्नुसार, सम्पत्ति एवं उत्पादन साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित आर्थिक व्यवस्था होती है, जिसमें मुक्त बाज़ार काम करता है जो वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय हेतु प्रतिस्पर्धा की अनुमति देता है। इस प्रकार, सिद्धांततः, व्यक्ति ही 'कैसे, क्या और किसके लिए उत्पादन करें' निर्धारित करते हैं। पूँजीवाद के तहत, लोग, तद्नुसार, अपने निजी हित साधने के लिए प्रोत्साहित किए जाते हैं जबकि माँग एवं आपूर्ति संबंधी बाज़ार शक्तियों पर आर्थिक क्रियाकलाप समन्वित करने के लिए भरोसा किया जाता है। विभिन्न देश भिन्न-भिन्न प्रकार के पूँजीवाद (आधुनिक युग में पाए जाने वाले) से संपन्न हैं, जैसे– राज्य-निर्देशित पूँजीवाद, वृहद्-प्रतिष्ठान पूँजीवाद तथा उद्यमवृत्तिपूर्ण पूँजीवाद। समाजवाद, दूसरी ओर, एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें उत्पादन साधनों के सामूहिक स्वामित्व पर बल दिया जाता है। यह व्यवस्था प्रमुख उद्योगों के व्यापक सार्वजनिक स्वामित्व वाली अर्थव्यवस्था को चलाने में राज्य को एक बड़ी भूमिका सौंप देती है। यद्यपि समाजवाद बाज़ार शक्तियों को सीमित कार्यक्षेत्र ही प्रदान करता है, मार्क्स ने समाजवाद को 'किसी निजी उद्यम व्यवस्था के अंत और साम्यवाद के आरंभ' के बीच एक अंतरवर्ती अवस्था माना। समाजवाद के ऐतिहासिक क्रमविकास की प्रक्रिया में हम इसके विभिन्न रूप देखते हैं – (i) किसी केंद्रीय रूप से नियोजित आर्थिक व्यवस्था से जुड़ी समग्र अर्थव्यवस्था वाला समाजवाद। जैसा कि पूर्व सोवियत-सरीखी अर्थव्यवस्था में था); (ii) बाज़ार समाजवाद, यथा बाज़ार कार्यतंत्रों हेतु किसी भूमिका के साथ एक प्रकार के किंचित् परिवर्तित केंद्रीय नियोजन वाली अर्थव्यवस्थाएँ (उदाहरणार्थ, हंगरी एवं यूगोस्लाविया), जो कि इस प्रकार की नियोजित अर्थव्यवस्थाएँ होती हैं जहाँ बाज़ार का प्रयोग कर आबंटन सुधारने का प्रयास किया जाता है; आदि।

सिद्धांततः, इसीलिए, पूँजीवाद से भिन्न, समाजवाद एक ऐसी व्यवस्था है जो लोगों के अपने निजी स्वार्थ की अपेक्षा उनकी दूसरों के प्रति सद्भावना पर आधारित होती है।

तथापि, व्यवहारतः, समाजवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था बन चुका है जो केंद्रीकृत नियोजन वाले उत्पादन साधनों के सरकारी स्वामित्व पर आधारित होती है। चूँकि समाजवाद एक ऐसी प्रणाली पर आधारित है जो पूर्व-सोवियत संघ में जन्मी, इसे प्रायः 'सोवियत शैली का समाजवाद' कहा जाता है। सन् 1980 के दशक में अनेक देश सोवियत शैली की समाजवाद अपनाते थे, परंतु '1980 के दशकांत और 1990 के दशकारंभ' में, इनमें से अनेक अर्थव्यवस्थाओं/देशों में अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हुई और उन्होंने बाज़ारोन्मुखी व्यवस्थाओं की ओर रुख कर लिया। चीन का उदाहरण केंद्रिकतापरक समाजवाद का एक अन्य रूप दर्शाता है, जो उच्च वृद्धि दरें, न कि सामाजिक स्वतंत्रता, सुनिश्चित करने के लिए बाज़ारों को प्राथमिकता देता है। अतएव, हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पूँजीवाद और समाजवाद नामक दो वृहद् व्यवस्थाओं के भीतर ही आयात-प्रतिस्थापन औद्योगीकरण अथवा निर्यातोन्मुखी संवृद्धि के लिहाज़ से अपनाए जाने वाले विकास पथ किसी भी देश के घरेलू सामाजिक एवं आर्थिक दबावों के चलते भिन्न-भिन्न होते हैं। आपको विदित ही होगा कि वर्ष 1991 में संकटपूर्ण भुगतान शेष के कारण पैदा हुए आर्थिक अवसाद की दशाओं के चलते भारत को आर्थिक सुधारों की नीतियाँ अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। तिस पर भी, हम कह सकते हैं कि देश के संविधान में प्रतिष्ठापित सामाजिक स्वतंत्रताओं वाली आर्थिक मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाने संबंधी भारत का निर्णय, जो 1950 के दशक में भी विवेकपूर्ण सिद्ध हुआ, जिसमें आरंभ में तैयार आयात-प्रतिस्थापन औद्योगीकरण रणनीति और तदन्तर तैयार निर्यातोन्मुखी संवृद्धि को अपनाए जाने के बीच विकल्प संतुलित परिप्रेक्ष्यों के आदर्श स्वरूप आज भी महत्त्व रखता है।

2.4 विकास के दो चरण : मिश्रित अर्थव्यवस्था

विकास संबंधी अपने दृष्टिकोण में, मिश्रित अर्थव्यवस्था राज्य और बाज़ार को एक परस्पर प्रबलनकारी प्राधार में जोड़ती है। इसमें सार्वजनिक उद्यम के साथ-साथ निजी क्षेत्र के उद्यमों का भी सह-अस्तित्व होता है। यह पूँजीवाद और समाजवाद की प्रमुख विशेषताओं को संयोजित करती है। इसका अर्थ है कि स्वहित और लाभ उद्देश्य के साथ पूँजीवादी उद्यम बहुत से सार्वजनिक क्षेत्र की उत्पादन इकाइयों के साथ-साथ अनेक क्रियाकलापों में भी चलते रहते हैं। परवर्ती उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्रों में भी चलते हैं परंतु एक वृहत्तर सामाजिक हित के साथ प्राथमिक शिक्षा एवं प्राथमिक स्वस्थ्य परिचर्या जैसे क्षेत्रों में अधिक चलते हैं। भारत मिश्रित अर्थव्यवस्था का एक उत्तम उदाहरण माना जाता है, जो कि अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही इस आदर्श को अपनाता रहा है। जबकि सार्वजनिक एवं निजी, दोनों क्षेत्र सहअस्तित्व रखते थे, क्षेत्रों के बीच संसाधन आबंटन हेतु केंद्रीय नियोजन तंत्र को एक बड़ी भूमिका सौंपी गई थी। नियोजन प्रक्रिया के घोषित प्राथमिक उद्देश्य थे– सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक संवृद्धि तथा आत्मनिर्भरता। भारत की आरंभिक पंचवर्षीय योजनाओं ने एक मिश्रित अर्थव्यवस्था रणनीति के साथ आर्थिक विकास हेतु आधारभूत प्राधान प्रदान किया। इस नीति के पीछे स्पष्ट युक्तियुक्त विचार था– मूलभूत भारी उद्योगों एवं अवसंरचना क्षेत्रों के राज्य स्वामित्व के माध्यम से, अर्थव्यवस्था का सर्वाधिक सशक्त अंश राज्य के हाथों में ही रखना और जहाँ पैमाने की मितव्ययताएँ आवश्यक न हों, निजी क्षेत्र को काम करने देना। इस दृष्टिकोण के पीछे मूल अवधारणा यह थी कि योजना प्रोत्साहन एवं बाज़ार दक्षता के एक विवेकसम्मत मिश्रण के माध्यम से, संवृद्धि एवं समता दोनों के उद्देश्यों का बलवर्धन किया जा सकता था। कृषि क्षेत्र में, उत्पादन निर्णय सामान्यतः सरकार की भूमिका के साथ निजी उत्पादकों

द्वारा लिया जाता था, जो कि सिंचाई सुविधाओं, विस्तारण सेवाओं एवं कुछ प्रमुख जिन्सों में व्यापार के माध्यम से अवसंरचना विकास तक ही सीमित रही। विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्रों में, राज्य ने अनेक उद्योगों को अपनाकर और चलाकर तथा लाइसेंसिंग का साधन अपनाकर निजी निवेश को विनियमित कर एक प्रभावशाली भूमिका निभाई।

वर्ष 1991 में आर्थिक सुधार लागू होने के समय से ही, सार्वजनिक क्षेत्र हेतु अपने अनुकूल संकुचन के साथ निजी क्षेत्र की आर्थिक संभावना का संतोषजनक विस्तार देखा गया। तद्नुसार, भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण के विषय में कहा जा सकता है कि यह आयोजन के आरंभिक चार दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र हेतु समादेशन शिखर की स्थिति से एक ऐसी अवस्था में आ गया जहाँ अधिकांश स्थान निजी क्षेत्र एवं बाज़ार को दिया गया। आइए, अब अपने संक्रमणकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था के इन दो सोपानों पर कुछ विस्तार से चर्चा करें।

2.4.1 समादेशन शिखर पर सार्वजनिक क्षेत्र (चरण-I)

किसी भी आर्थिक व्यवस्था में राज्य कम से कम तीन प्रमुख भूमिकाएँ निभा सकता है, यथा (i) वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादक के रूप में; (ii) समग्र व्यवस्था के नियामक के रूप में; और (iii) प्राथमिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे 'जन हितलाभ' अथवा 'सामाजिक हितलाभ' के आपूर्तिकर्ता के रूप में। वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादक स्वरूप प्रथम भूमिका नियोजन की व्यवस्था में व्यक्त होती है, जहाँ सार्वजनिक उद्यम प्रमुख उत्पादन क्रियाकलापों में संलिप्त होते हैं, कम से कम अर्थव्यवस्था के अति महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों (जैसे, विद्युत उत्पादन एवं वितरण) में तो अवश्य ही। 'नियामक' अथवा 'नियंत्रक' वाली दूसरी भूमिका अर्थतंत्र की गतिविधियों के नियम निर्धारित करने की है। वस्तुतः, बाज़ारों के आर्थिक निष्पादन की गुणवत्ता निर्णायक रूप से किसी संपूरक भूमिका द्वारा विनियमन के माध्यम से सरकारी हस्तक्षेप की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। राज्य की तीसरी भूमिका एवं 'कल्याण प्रदायक' वाली है; यथा, यह भूमिका राज्य को वांछित अवसंरचना के प्रावधान के ज़रिए तथा मानव विकास की दिशा में किए जाने वाले प्रयासों द्वारा निजी पहलों को समर्थन देने के लिए प्रोत्साहित करती है ताकि जनसामान्य की क्षमता को बढ़ाया जा सके। अतएव, इसे एक 'सुविधादायक' की भूमिका के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ राज्य ऐसे क्षेत्रों में हस्तक्षेप करता है जिनमें बाज़ार प्रभावशाली ढंग से काम नहीं कर सकते।

नियोजन के आरंभिक वर्षों में, चूँकि भारत पूँजी-अभाव से ग्रस्त था और ज्ञात था कि बाज़ार सुगठित नहीं है, अभिकल्पिक की जाने वाली व्यवस्था कुछ उद्योगों में उत्पादन में राज्य की गहरी पैठ तथा अन्य में निजी क्षेत्र के विनियमन का एक संयोजन थी। विनियमन की भूमिका निवेश, उत्पादन एवं निर्यात हेतु वांछित अनुज्ञा-पत्रों के अनुदान द्वारा निभाई जाती थी। विशेष रूप से, उपलब्ध विदेशी मुद्रा, ऋण-आबंटन एवं कुछ मामलों में कीमत भी (जैसे– आवश्यक जिन्सों, कृषि जिन्सों की कीमतें) सरकार द्वारा नियंत्रित किए जाते थे। साथ ही, सरकार ने ऐसे उद्योगों में भी प्रवेश का अधिकार सुरक्षित रखा जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुव्यक्त रूप से आरक्षित नहीं थे। सार्वजनिक क्षेत्र को, तद्नुसार, वृहद्, समन्वित निवेश (जिसे अर्थव्यवस्था के तुरंत प्रारंभ हेतु आवश्यक बड़ी सहायता (Big push) के रूप में देखा जाता है)।

परिणामतः, वर्ष 1950 और 1965 के बीच, सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में, सार्वजनिक क्षेत्र का पूँजी-निर्माण दोगुने से भी अधिक अर्थात् 3.1 से बढ़कर 7.5 हो गया। तथापि, बाद के वर्षों में, न सिर्फ योजनाओं की पकड़ कमज़ोर पड़ी, बल्कि

संसाधन संघटन हेतु सार्वजनिक क्षेत्र की क्षमता में भी गंभीर गिरावट देखी गई। सन् 1960 के दशक-मध्य से घटता सार्वजनिक निवेश संवृद्धि मंदन का कारण बना। यह प्रक्रिया 1970 के दशकांत तक चली। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था की समादेशन के शिखर की स्थिति से, सार्वजनिक क्षेत्र एक रोज़गार-प्रदायक कल्याणवादी भूमिका वाले अभिकरण में ढलता चला।

2.4.2 बाज़ार की वर्धमान भूमिका (चरण-II)

भारत ने अपने आर्थिक प्रबंधन हेतु बाज़ार की श्रेष्ठता का सिद्धांत अपनाकर अपनी अल्पावधि अदूरदर्शिता से मुक्ति पाने के बाद से एक लम्बा सफ़र तय किया है। इसे 1980 के दशक में प्रारंभिक रूप से अंगीकृत और 1990 के दशक के दौरान प्रबलता से निष्पादित सुधारों के प्रमुख अभिलक्षणों की तुलना द्वारा समझा जा सकता है।

सन् 1980 के दशक में शुरू किए गए सुधारों के प्रमुख लक्षण ये थे : (i) आयात उदारीकरण (विशेषकर पूँजीगत वस्तुओं एवं माध्यमिक आगतों का); (ii) कर प्रणाली एवं ऋण व विदेशी मुद्रा की पर्याप्त सुलभता के माध्यम से निर्यात प्रोत्साहनों का विस्तार; (iii) कुछ उद्योगों के सीधे 'अनुज्ञा-निरस्तीकरण' के ज़रिए और 'चौड़े वितान पटल' (यथा, कुछ उद्योगों में फर्मों को एकसमान उत्पाद-शृंखलाओं में उत्पादन बदल लेने की अनुमति देकर औद्योगिक अनुज्ञापन वांछनीयताओं में महत्त्वपूर्ण छूट; तथा (iv) प्रमुख-माध्यमिक आदानों पर कीमत नियंत्रण की निरस्ति। इन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के आलोक में, 1980 के सुधारों का लक्षण-वर्णन अपने अनुस्थापन में 'बाज़ारोन्मुखी' के रूप में किया गया है।

सन् 1990 के दशक के सुधारों में, जो कि 1980 के सुधारों से भिन्न हैं, निम्नलिखित शामिल हैं : (i) औद्योगिक अनुज्ञापन का उन्मूलन एवं सार्वजनिक क्षेत्र एकाधिकारों के कार्यक्षेत्र को उद्योगों की काफ़ी कम संख्या तक सीमित करना; (ii) अंतर्मुखी प्रत्यक्ष विदेशी एवं विदेशी निवेश-सूची निवेश का उदारीकरण; (iii) आयात अनुज्ञापन के निराकरण एवं शुल्केतर अवरोधों में उत्तरोत्तर कमी के साथ व्यापक व्यापार उदारीकरण; (iv) पूँजी विषयों पर (यथा, अर्थव्यवस्था में काम करने देने हेतु विदेशी निजी बैंकों को अनुमति, बीमा क्षेत्र का खुलना) नियंत्रण हटाने समेत वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण; (v) दूरसंचार जैसी सेवाओं में निवेश नीतियों का उदारीकरण; इत्यादि।

आमतौर पर देश वस्तुओं एवं सेवाओं के एक उत्पादक स्वरूप राज्य की भूमिका से किनारा करते जा रहे हैं। राज्य हस्तक्षेप के लाभों के संदर्भ में संशयवाद के उदय हेतु एक प्रमुख कारण यह बढ़ती अवधारणा रही है कि राजनीतिक हस्तक्षेप एवं अधिकार तंत्रीकरण या नौकर-शाहीकरण की वजह से सरकारी विफलताएँ, अनेक मामलों में, बाज़ार विफलताओं से बढ़कर हो सकती हैं। दक्षता में अनुकूल सुधार लाने में प्रोत्साहन पुरस्कार प्रणाली का महत्त्व ज्ञात होने पर, सभी पहलुओं पर विचार करके, यह भली-भाँति स्वीकार किया जाता है कि बाज़ार निजी क्षेत्र द्वारा एक निगमित शैली में निष्पादित किए जाने वाले अनेक आर्थिक क्रियाकलापों के लिए एक बेहतर प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। इन सांस्थानिक कारकों से सघनता से जुड़ी यह धारणा भी है कि प्रतिस्पर्धात्मक परिवेश एक बेहतर माहौल पैदा करता है जो दक्षता बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है।

वस्तुओं एवं सेवाओं के एक उत्पादक स्वरूप राज्य की घटती भूमिका और बाज़ार शक्तियों को दी जाने वाली बढ़ती प्रमुखता राज्य की भूमिका 'विनियामक' से 'सहायक'

की अधिक बना देते हैं। एक सामान्य नियम स्वरूप, जहाँ कहीं भी दक्षता हासिल करने में मूल्य संकेत स्पष्ट रूप से कारगर हों, बाज़ारों को मुक्त रूप से काम करने की अनुमति मिलनी ही चाहिए। राज्य निवेश केवल ऐसे क्षेत्रों में आवश्यक हो जाता है जहाँ बाज़ार विद्यमान ही न हों अथवा जहाँ वे कुशलतापूर्वक कार्य-निष्पादन न कर सकते हों।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) विकास संवृद्धि से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

....

....

2) विकास के प्रति बाज़ार-आधारित दृष्टिकोण को सफल बनाने के लिए कौन-सी मूल अवधारणा सिद्ध होने की अपेक्षा की जाती है?

....

....

....

....

3) राज्य-निर्देशित विकास रणनीति के पीछे क्या तर्काधार है?

....

....

....

....

4) 'समावेशी संवृद्धि' रणनीति से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

5) 'धारणीय विकास' (SD) दृष्टिकोण का मूल तत्व क्या है?

....

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

6) 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' का अर्थ स्पष्ट करें।

....

....

....

....

7) भारत में नियोजन के आरंभिक वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा निभाई गई प्रमुख भूमिका को दर्शाने के लिए आप किस आनुभविक संकेतक का उद्धरण देना चाहेंगे? बाद के वर्षों में इसमें क्या रुझान दिखाई दिया?

....

....

....

....

8) 'बाज़ारोन्मुखी' दृष्टिकोण के रूप में, विकास दृष्टिकोण में परिवर्तन के लक्षण-वर्णन हेतु 1990 के दशक में लागू किए गए प्रमुख सुधार क्या थे?

....

....

....

....

2.5 विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण

भारत ने स्वयं को शेष विश्व के साथ किस सीमा तक एकीकृत किया है? क्या 1990 के दशकारंभ में आर्थिक सुधारों की शुरुआत से ही एकीकरण की गति बढ़ गई थी? एकीकरण को परिमाणनीय चरों द्वारा मापा जा सकता है, जैसे सकल घरेलू उत्पाद में व्यापार का अनुपात, औसत शुल्क दर, निर्यात वैविध्य, सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत रूप में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अंतर्वाह, आदि। इन चरों में रुझानों पर अब हम एक विहंगम दृष्टि डालेंगे।

2.5.1 व्यापार-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात

विश्व अर्थव्यवस्था में ऐसे देश जो उच्च रूप से एकीकृत हैं, सकल घरेलू उत्पाद के प्रति व्यापार का एक उच्च अनुपात दर्शाते हैं। एकीकरण की गहनता का एक संकेतक दो 'व्यापार उन्मुखी अनुपातों' (TOR) द्वारा प्रदान किया जाता है; यथा– (i) कुल सकल घरेलू उत्पाद में निर्यात का अंश; तथा (ii) सकल घरेलू उत्पाद में निर्यात एवं आयात का संयुक्त अंश। गत वर्षों में आर्थिक सुधारों ने भारत को एक काफ़ी मुक्त अर्थव्यवस्था बना दिया है। कुल सकल घरेलू उत्पाद में वस्तुओं एवं सेवाओं के भारतीय निर्यात का अंश वर्ष 1991-92 में 6.5 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2013-14 में 19.1 प्रतिशत हो गया। बाज़ार कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में वस्तुओं के निर्यात एवं आयात का संयुक्त अंश वर्ष 1991-92 में 13.6 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2013-14 में लगभग 46.5 हो गया। इन महत्त्वपूर्ण वृद्धियों के बावजूद,

विश्व व्यापार निर्यात में भारत का अंश वर्ष 1993 में लगभग 0.6 प्रतिशत से किंचित् बढ़कर वर्ष 2014 में 1.7 प्रतिशत ही हो पाया है। इसी प्रकार, विश्व आयात में भारत का अंश भी वर्ष 1993 में लगभग 0.6 प्रतिशत से किंचित बढ़कर वर्ष 2014 में 2.4 प्रतिशत हो गया (तालिका 2.1) था।

तालिका 2.1 : व्यापार में देशों/क्षेत्रों द्वारा निर्यात और आयात (%)

देश	निर्यात अंश		आयात अंश	
	1993	2014	1993	2014
एशिया	26	32	23.5	31.5
चीन	2.5	12.7	2.7	10.5
जापान	9.8	3.7	6.4	4.4
भारत	0.6	1.7	0.6	2.5
छह पूर्व-एशियाई व्यापारी देश	9.6	9.6	10.2	9.4

स्रोत : WHO, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सांख्यिकी, 2015।

2.5.2 औसत शुल्क दर

शेष विश्व के साथ किसी देश के एकीकरण को मापने हेतु एक अन्य संकेतक देश की औसत शुल्क दर के आकलन के माध्यम से होता है। भारत में सभी उत्पादों के लिए औसत शुल्क दर वर्ष 1990 में 80 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2012 में मात्र 6.3 प्रतिशत रह गई।

2.5.3 निर्यात विविधीकरण

वे देश जो विश्व अर्थव्यवस्था में अपेक्षाकृत अधिक एकीकृत हैं, न केवल तीव्र निर्यात वृद्धि का, बल्कि निर्यात वैविध्य का भी अनुभव करते हैं। उदारीकरण के आरंभिक वर्षों में, भारत का निर्यात शीर्ष 20 देशों के साथ कम वैविध्य दर्शाता था और यह भारत के कुल निर्यात के 80 प्रतिशत के समान था। आज (2017), शीर्ष 20 निर्यात गंतव्यों को कुल निर्यात का 67 प्रतिशत का निर्यात होता है। यह वृहत्तर विविधीकरण दर्शाता है।

2.5.4 निर्यातों का उत्पाद संयोजन

एकीकरण का एक अन्य संकेतक यह है कि कोई देश अपने निर्यात में परंपरागत एवं प्राथमिक उत्पादों से निकलकर उच्च-मूल्य-संवर्धित निर्यात में कितना आगे बढ़ा है। यह विनिर्मित निर्यात में प्रौद्योगिकीय रूप से उन्नत वस्तुओं के अंश में प्रकट होता है। भारत के निर्यातों में वस्त्रादि जैसे प्राथमिक उत्पादों से अभियांत्रिकी वस्तुओं, परिष्करणशाला उत्पादों, औषध-निर्माण उत्पादों जैसे अपेक्षाकृत अधिक मूल्य-संवर्धित मदों की दिशा में बड़ा परिवर्तन देखा गया है। तद्नुसार, भारत की निर्यात समुच्चय में अब ग़ैर-परंपरागत मदों की अधिक विविधता दिखाई पड़ती है, जिनमें शामिल हैं– अभियांत्रिकी वस्तुएँ, जो वर्ष 2014-15 में भारत के कुल निर्यात में 23 प्रतिशत के समान रही।

2.5.5 निर्यातों की दिशा

उत्तर-उदारीकरण के दौर में, भारत के निर्यातों में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन रहा— विकसित अर्थव्यवस्थाओं के अंश की तुलना में विकासशील देशों का वर्धमान अंश। वर्ष 1990-91 व 2014-15 के बीच, एशिया का अंश 34 से बढ़कर 49 प्रतिशत हो गया और अफ्रीका का अंश 3 प्रतिशत से बढ़कर 11 प्रतिशत हो गया। दूसरी ओर, यूरोप का अंश इस अवधि में 41 प्रतिशत से गिरकर मात्र 19 प्रतिशत रह गया।

2.5.6 वित्तीय एकीकरण

वे स्तर व गति जिन पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का अंतर्वाह बढ़ता है, वित्तीय एकीकरण के एक महत्त्वपूर्ण संकेतक का काम करते हैं। सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का निवल अंतर्वाह वर्ष 1991 में 0.03 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2016 में 1.96 प्रतिशत हो गया।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50—100 शब्दों में लिखें।)

1) दो व्यापार उन्मुखी अनुपातों (TORs) के लिहाज़ से, शेष विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के एकीकरण का क्या अनुमान लगता है?

....

....

....

....

2) किन अन्य विशिष्ट संदर्भों में भारतीय अर्थव्यवस्था का शेष विश्व के साथ एकीकरण संबंधी ब्यौरा प्रस्तुत किया जा सकता है?

....

....

....

....

3) किसी अर्थव्यवस्था का वित्तीय एकीकरण कैसे मापा जाता है, इस लिहाज से भारत की क्या स्थिति रही है?

....

....

....

....

....

2.6 सार-संक्षेप

विकास के प्रति दृष्टिकोण राज्य-निर्देशित दृष्टिकोण से बाज़ार-आधारित दृष्टिकोण की ओर अंतरित हुआ है। विकास के आरंभिक चरणों में, प्राथमिक उत्पादों के उत्पादन में

निकृष्ट अवसंरचनात्मक आधार एवं संकेंद्रण की उच्च कोटि के कारण किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था को अपने निवेश हेतु राज्य की सहायता की ज़रूरत होती है। दूसरे शब्दों में, विकास लक्ष्य हासिल करने के लिए बाज़ारों के कीमत संकेतक अपर्याप्त होंगे। इस अभिलक्षण ने अपने विकास के आरंभिक चरणों में एक राज्य-निर्देशित संवृद्धि नीति अपनाने के लिए सामान्यतः सभी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं को प्रभावित किया है। भारत ने भी वर्ष 1950 से 1990 तक लगभग चार दशकों तक यही प्रयोग करते हुए यह दृष्टिकोण अपनाना शुरू किया। किंतु, अर्थव्यवस्था के विस्तार हेतु वांछित संसाधनों के संघटन हेतु सार्वजनिक क्षेत्र की क्षमता सन् 1960 के दशकांत पश्चात् तेज़ी से गिरती गई। धारणीय विकास संबंधी सरोकार भी भारत में नीति नियोजन में अति महत्त्वपूर्ण हो गए क्योंकि 'समावेशी विकास' पर अभिलक्षित रहना ही उनका उद्देश्य था। परिणामतः, 1990 के दशक में एक नियंत्रित सार्वजनिक क्षेत्र-निर्देशित शासन प्रणाली से एक बाज़ार आधारित दृष्टिकोण तक विकास दृष्टिकोण में परिवर्तन देखा गया। गत दो दशकों में क्रियान्वित नीतियों के कारण वर्ष 1992 में 14 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2014 में 47 प्रतिशत तक 'सकल घरेलू उत्पाद में निर्यात जमा आयात' के अनुपात में प्रशंसनीय वृद्धि देखी गई। इस अतिप्रवण वृद्धि के बावजूद, कुल वैश्विक निर्यात के समग्र अंश के लिहाज से, भारत का अंश किंचित खिसककर वर्ष 2014 में 1.7 प्रतिशत तक ही पहुँच पाया है (1990 के दशकारंभ में 0.6 प्रतिशत से)। इसी प्रकार, भौगोलिक एवं उत्पाद वैविध्य में बढ़ोतरी 'औसत शुल्क दर' में कमी आदि के बावजूद, 'सकल घरेलू उत्पाद में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रतिशत अंतर्वाह' द्वारा मापित वित्तीय एकीकरण के लिहाज से भारत में इसका स्तर वर्ष 2016 में 2 प्रतिशत से भी नीचे रहा।

2.7 शब्दावली

आर्थिक नियोजन : आर्थिक नियोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा केंद्र सरकार मुख्य आर्थिक निर्णय लेती है। यह उस अहस्तक्षेप की नीति के एकदम विपरीत है जो अर्थव्यवस्था को निर्देशित करने के किसी भी प्रयास से परिहार करती है, और आर्थिक क्रमविकास की गति, दिशा एवं प्रकृति निर्धारित करने के लिए बाज़ार शक्तियों पर भरोसा करती है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश : प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) एक ऐसा निवेश है जो किसी निवेशकर्ता द्वारा किसी अन्य देश में अवसंरचना, उत्पादन इकाई, आदि वास्तविक सम्पत्ति के रूप में किया जाता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था : इसे एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें एक परस्पर सहअस्तित्व की रीति से सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों के उद्यमों का मिश्रण पाया जाता है। अधिकांश मामलों में, 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' का अर्थ ऐसी बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं से होता है जहाँ बाज़ारों की दक्षतापूर्ण प्रकार्यात्मकता को

सरल बनाने के लिए सार्वजनिक वस्तुओं की आपूर्ति एवं अर्थव्यवस्था के अवसंरचनात्मक आधार को विस्तार प्रदान करने में सशक्त विनियामक पर्यवेक्षण एवं सरकार की विद्यमानता दिखाई देती है।

समावेशी संवृद्धि : समावेशी संवृद्धि वह आर्थिक संवृद्धि है जो जनसमुदाय के सभी संभागों हेतु अवसर पैदा करती है और परिवर्धित समृद्धि के लाभांश (मौद्रिक एवं अमौद्रिक दोनों लिहाज से), समाज के सभी भागों में निष्पक्ष रूप से बाँट देती है।

धारणीय विकास : धारणीय विकास लोगों के लिए वह तरीका है जिससे वे आने वाली पीढ़ियों के लिए संसाधनों को समाप्त किए बिना ही संसाधनों को प्रयोग करना सीख सकें। ब्रंटलैंड कमीशन द्वारा प्रयुक्त पदबंध द्वारा इसे धारणीयता के साथ विकास के रूप में परिभाषित किया गया जो कि 'अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए भावी पीढ़ियों की क्षमता से समझौता किए बग़ैर ही वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएँ पूरा कर देता है।'

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Chakravarty, Sukhamoy (1987). 'Development Strategies in the Asian Countries' In Louis Emmerij (ed.), *Development Policies and the Crisis of the 1980s.* OECD.

2) FICCI (2016). Economy Insights – Trends in India's Foreign Trends, May, 2016.

3) Balakrishnan, P (2010). Economic Growth in India: History and Prospect, Oxford University Press.

4) Basu K. (Ed.) (2008). *The Oxford Companion to Economics in India,* Oxford University Press, USA.

5) Bhattacharya D (1993). *The Political Economy of Development,* Academic Publishers.

6) Perkins D. H., Radelet S., Lindauer D. L., & Steven A (2013). Economics of Development, W.W. Norton and Company, New York.

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) संवृद्धि राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय की भाँति केवल आय में वृद्धि से संबंध रखती है, जबकि विकास आय में वृद्धि के वितरणात्मक आयाम को ध्यान में रखता है। वह साथ ही, प्रसार को इस बात से जोड़ता है कि संवृद्धि के लाभ हाशिए के तबकों तक उनकी शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं के लिहाज से कहाँ तक पहुँचा है। यह औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण जैसे पहलुओं को भी साथ लेकर चलता है।

2) इस दृष्टिकोण में यह मानकर चला जाता है कि कीमतों एवं लाभों के संकेतों के साथ सुविकसित प्रतिस्पर्धी बाज़ारों वाली परिस्थितियाँ जन्म लें ताकि वे कुशलतापूर्वक काम कर सकें; यथा, तीव्रतर संवृद्धि की ओर प्रवृत्त करते न्यूनतम संसाधन आगतों के साथ इष्टतम उत्पादन।

3) वह तर्काधार निर्वाह कृषि, कमज़ोर औद्योगिकीकरण, आदि अल्प-विकास की दशाओं में वांछित बड़ी सहायता (बिग पुश) संबंधी है। ऐसी दशाओं में, सार्वजनिक संस्थाओं/उद्यमों को संसाधनों के नियोजित संघटन एवं आबंटन के माध्यम से अर्थव्यवसथा के प्रमुख क्षेत्रों में राज्य-निर्देशित भारी निवेश को ही महत्त्वपूर्ण माना गया।

4) समावेशी संवृद्धि रणनीति का अर्थ है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिहाज से विमुक्त संवृद्धि लाभ समाज के सबसे निचले तबकों तक इस प्रकार पहुँचें कि समाज के हाशिए पर ये तबके उनसे अछूते न रहें। इसमें संवृद्धि के लाभों का सम्यक वितरण सुनिश्चित करने के लिए संस्थागत प्रबंधों की आवश्यकता होती है, जिन्हें केवल राज्य द्वारा ही सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता पड़ती है।

5) धारणीय विकास (SD) दृष्टिकोण मूल तत्व स्वरूप दो अनिवार्यताएँ रेखांकित करता है– (i) प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से विश्व के गरीब वर्ग का हित रक्षण, जो कि अपेक्षाकृत गरीब तबकों की आजीविका प्रस्थितियों पर प्रभाव डालता है, यथावत् स्पष्ट एवं प्रतिपूर्तित किया जाए; तथा (ii) यथावत् स्पष्ट किए जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों का दोहन दुरुत्साहित करने में प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक संगठनों की सीमाबद्धताएँ।

6) इस पदबंध का अर्थ है– एक परस्पर संपोषक रीति से बाज़ार के साथ राज्य को जोड़ते हुए सार्वजनिक एवं निजी, दोनों क्षेत्रों का सहअस्तित्व।

7) सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत स्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश वर्ष 1950-65 के दौरान 3.5 प्रतिशत से बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गया। बाद के वर्षों में, संसाधन संघटित करने हेतु सार्वजनिक क्षेत्र की क्षमता इतनी तेज़ी से गिरी कि इसकी भूमिका को 'रोज़गार प्रदायक एवं कल्याणवादी' के रूप में बताया जाने लगा।

8) ये सुधार हैं– (i) औद्योगिक अनुज्ञापन का उन्मूलन; (ii) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं निवेश सूची के अंतर्वाह में उदारीकरण; (iii) आयात अनुज्ञा पत्र के उन्मूलन एवं शुल्केतर अवरोधों में उत्तरोत्तर कमी के साथ व्यापार उदारीकरण; (iv)

वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण, जैसे विदेशी निजी क्षेत्र के बैंक एवं बीमा क्षेत्र खोलने की इज़ाजत; तथा (v) दूर संचार जैसी सेवाओं में निवेश नीतियों का उदारीकरण।

बोध प्रश्न 2

1) कुल सकल घरेलू उत्पाद के प्रति केवल कुल निर्यातों के लिहाज से, प्रतिशत अनुपात वर्ष 1991-92 में 6.5 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2013-14 में 19.1 प्रतिशत हो गया (यथा, लगभग तीन गुना)। कुल सकल घरेलू उत्पाद में 'निर्यात जमा आयात' के संयुक्त अंश के लिहाज से, यह सदृश अवधि में 14 प्रतिशत से बढ़कर 47 प्रतिशत हो गया (यथा, 3.4 गुना)। इस वृद्धि के बावजूद, वैश्विक निर्यात में भारत का अंश 0.6 प्रतिशत से बढ़कर मात्र 1.7 प्रतिशत ही हुआ है (यथा, यद्यपि वृद्धि एक बार फिर 3 गुना के करीब हुई, औसत भी बहुत तुच्छ है)।

2) औसत शुल्क दर के लिहाज़ से, वर्ष 1990 में 80 प्रतिशत से वर्ष 2012 में 6.3 प्रतिशत तक की भारी गिरावट देखी गई। शीर्ष 20 देशों को निर्यातों के प्रतिशत द्वारा परिभाषित उत्पाद वैविध्य के लिहाज से औसत 80 प्रतिशत से गिरकर 67 प्रतिशत रह गया हैं वर्ष 2014-15 में, कुल निर्यातों में अभियांत्रिकी निर्यातों का अंश बढ़कर 23 प्रतिशत हो गया।

3) वित्तीय एकीकरण सकल घरेलू उत्पाद में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्वाह में प्रतिशत वृद्धि के लिहाज़ से मापा जाता है। भारत के लिए, यह वर्ष 1991 में 0.03 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2016 में 1.96 प्रतिशत हो गया है।

इकाई 3 संरचनात्मक परिवर्तन*

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भारत की राष्ट्रीय आय में संवृद्धि

3.2.1 1950-1980 की अवधि

3.2.2 1980 के दशक से आगे की अवधि

3.3 क्षेत्रीय संवृद्धि/परिवर्तन

3.3.1 बचत

3.3.2 निवेश

3.3.3 रोज़गार

3.3.4 शहरीकरण

3.4 भारत में क्षेत्रीय विषमताएँ

3.4.1 क्षेत्रीय विषमाताओं का विस्तार एवं कारण

3.5 वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR)

3.6 सार-संक्षेप

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- 'संरचनात्मक परिवर्तन' की परिभाषा कर सकें;
- भारत की राष्ट्रीय आय में संवृद्धि का विश्लेषण कर सकें;
- अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख क्षेत्रों के बीच सकल घरेलू उत्पाद के संरचनात्मक संघटन में रुझानों पर चर्चा कर सकें;
- बचत और निवेश में बदलते रुझानों को इंगित कर सकें;
- रोज़गार के क्षेत्रीय वितरण में रुझानों पर चर्चा कर सकें;
- भारत में संरचनात्मक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप शहरीकरण का विस्तार बता सकें;
- भारत में क्षेत्रीय विषमताओं का विस्तार व उसके कारण स्पष्ट कर सकें; और
- 'वर्धमान पूँजी उत्पादन अनुपात' की अवधारणा का वर्णन कर सकें।

*डॉ. असीम करमाकर, जादवपुर विश्वविद्यालय एवं प्रो. बी.एस. प्रकाश, इं.गां.रा.मु.वि.

3.1 विषय प्रवेश

आर्थिक विकास ऐतिहासिक रूप से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में 'संरचनात्मक परिवर्तनों' से जुड़ा रहा है। संरचनात्मक परिवर्तन को प्रायः एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है जिसके द्वारा आर्थिक लाभों का हस्तांतरण अर्थव्यवस्था में आय एवं रोज़गार के सापेक्ष क्षेत्रीय वितरणों में प्रमुख परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जाता है। सर्वाधिक सामान्य संरचनात्मक परिवर्तन जो कि ऐतिहासिक रूप से देखा जाता है, अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख क्षेत्रों– कृषि, उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों में आय एवं रोज़गार के संबंध में है। इसके आलोक में, कोई भी अर्थव्यवस्था जिसमें आय एवं रोज़गार में कृषि की प्रधानता हो, उसे 'अल्प-विकसित' कहा जाता है। किंतु, इसके अपवाद उस वक्त देखे जा सकते हैं जब कोई अर्थव्यवस्था अपने प्राथमिक क्षेत्र के क्रियाकलाप कृषि से 'सहबद्ध कृषि' (जिसमें पशु-पालन शामिल है) की ओर विस्तारित कर देती है। ऐसी अर्थव्यवस्थाएँ एक विकसित प्रस्थिति प्राप्त करने में सक्षम रही हैं (उदाहरणार्थ, न्यूज़ीलैंड, अर्जेंटीना आदि)। सकल घरेलू उत्पाद में उनका कृषि संबंधी अंश, बहरहाल, कालांतर में संकुचित हुआ, जो यह इंगित करता है कि उनकी संक्रियाएँ उद्योगों का रूप लेकर आधुनिकीकृत हो गई हैं। इसलिए महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण, औद्योगीकरण है, यानि क्रियाकलाप करने की एक सुव्यवस्थित विधि, खेती-बाड़ी में परंपरागत कृषि छोड़कर आधुनिक कृषि व्यवहार अपनाना, और आगे ग़ैर-फार्म उद्योगों की ओर अग्रसर होना (सर्वप्रथम, कृषि आधारित उद्योगों से आरंभ करना और फिर ग़ैर-कृषि उद्योगों की ओर जाना)। ऐसे विकास के साथ (जब परंपरागत कृषि-आधार से आधुनिक कृषि-आधार की ओर संक्रमण होता है), कालांतर में, इन अर्थव्यवस्थाओं में उद्योग का अंश बढ़ा है और कृषि का अंश घटा है। विकास के एक और भी बेहतर रूप से उच्च स्तर पर पहुँच कर सेवा क्षेत्र अर्थव्यवस्था में उत्कर्ष के बिंदु पर पहुंच जाता है। इस प्रकार के संक्रमण में, कोई भी परिणामी आर्थिक परिवर्तन एक ऐसा परिवर्तन होता है जिसमें पूर्ववर्ती ग्रामीण-शहरी अनुपात एक वृहत्तर शहरी-ग्रामीण आर्थिक परिदृश्य में बदल जाता है। इसी को 'शहरीकरण' कहा जाता है। यह प्रतिमान सामान्य तौर पर विकास के विभिन्न स्तरों वाले अनेक देशों में दिखाई दे जाता है। आमतौर पर, परिवर्तनशील क्षेत्रीय अंशों वाले संरचनात्मक बदलाव राष्ट्रीय उत्पाद (यथा, GDP अथवा आय) तथा श्रमबल (रोज़गार) दोनों में देखे जाते हैं। सामने आने वाला परिणाम एक वृहद् अनौपचारिक आधार से एक औपचारिक आधार वाला अर्थव्यवस्था का वर्धित विधानुसरण होता है।

भारत में, आर्थिक सुधारों के आरंभ और 1990 के दशक से संवृद्धि दर में त्वरण होने से ही, अर्थव्यवस्था ने कुछ भिन्न संवृद्धि प्रतिमान अपनाया है, जिसमें स्वयं उद्योग का अंश अधिक नहीं बढ़ा है परंतु सेवाओं का अंश व्यापक रूप से बढ़ा है। यह, प्रथम दृष्ट्या ही उस प्रतिमान से भिन्न नज़र आता है। जो कि पूर्ववर्ती और अभी हाल ही में विकसित हुए देशों की विकास प्रक्रिया में देखा गया था। इस प्रकार के संवृद्धि प्रतिमान का ध्यानपूर्वक विश्लेषण किए जाने की आवश्यकता होती है।

3.2 भारत की राष्ट्रीय आय में संवृद्धि

स्वातंत्र्योत्तर भारत में, राष्ट्रीय आय आकलन विषयक प्रथम रिपोर्ट वर्ष 1951 में प्रकाशित हुई। यह रिपोर्ट प्रो. पी.सी. महालेनोबिस की अध्यक्षता में राष्ट्रीय आय (NI) की एक समिति द्वारा तैयार की गई, जिसमें दो अन्य सदस्य थे– प्रो. डी.आर.

गाडगिल तथा डॉ. वी.के.आर.वी.राव। वर्ष 1948-49 हेतु कुल आकलित राष्ट्रीय आय रु. 8,830 करोड़ लिखी गई। इसके उपरांत इस आय (NI) के आंकड़े संकलित कर वार्षिक रूप से प्रकाशित किए गए हैं। यह ध्यान देने की बात है कि ये (NI) अनुमान पहले तो 'चालू कीमतों' में आकलित किए जाते हैं परंतु जब अल्पकालिक तुलनाएँ की जानी होती हैं तो इन्हें एक 'स्थिर कीमत' में बदल दिया जाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार की परिवर्तन प्रक्रिया तुलना की अवधि में कीमतों में परिवर्तन के प्रभाव का निराकण किए जाने के लिए वांछित होती है। इस आय (NI) के अनुमान आजकल 'राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी' नामक एक वार्षिक पत्रिका में चालू और स्थिर दोनों ही कीमत श्रृंखलाओं में प्रस्तुत किए जाते हैं। स्थिर कीमत श्रृंखला के तहत इन (NI) अनुमानों को प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त आधार वर्ष का बारंबार अद्यतन किया जाता है, (अर्थात् एक बाद के वर्ष वाले आधार वर्ष में स्थानांतरित कर दिया जाता है) ताकि वे उत्पादन पिटक एवं कीमतों के सम्मिश्रण में ताज़ा परिवर्तनों के अनुरूप रहें। किसी स्थिर आधार पर आकलित इस आय (NI) में संवृद्धि दर अर्थव्यवस्था के कार्य-निष्पादन के मूल्यांकन को संभव भी बना देती है और वास्तविक भी।

3.2.1 1951-1980 की अवधि

भारत में अपनाए गए नियोजित विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत एक प्रथा रही है, उपलब्धि का लक्ष्य निर्धारित करना और फिर निर्धारित लक्ष्य की तुलना में वास्तविक उपलब्धि का मूल्यांकन करना। इस हिसाब के परिणाम तालिका 3.1 में प्रस्तुत किए गए हैं। हम वर्ष 1951 से 1979 की तीन दशकावधियों में, केवल दो योजना अवधियों में (यथा, प्रथम एवं पाँचवीं योजना अवधियों में) ही इन निर्धारित लक्ष्य पूरा कर सके थे। इस अवधि को, इसीलिए, ऐसी अवधि कहा जा सकता है जिसमें भारत ने एक सामान्य सी संवृद्धि दर हासिल की। निर्धारित लक्ष्य की तुलना उपलब्धि के कम रह जाने के दो मुख्य कारण रहे– (i) वर्ष 1962, 1965 और 1971 में लड़े गए पड़ोसी देशों के साथ तीन युद्ध; तथा (ii) वर्ष 1966, 1972 और 1979 के दौरान तीन बार भयंकर सूखा। इन तीन में से प्रथम दो ने अनुमानित 5 करोड़ जनसंख्या को प्रभावित किया जबकि तीसरे ने अनुमानित 20 करोड़ लोगों को प्रभावित किया। इस प्रकार की आपाती घटनाओं ने देश की आर्थिक कार्य-निष्पत्ति पर कुठाराघात किया, जिससे भारत की राष्ट्रीय आय में दीर्घावधि औसत वृद्धि 3.5 प्रतिशत के आस-पास ही मँडराती रही, जिसे कुछ अर्थ संबंधी लेखों व पुस्तकों में संवृद्धि की 'हिंदू दर' की संज्ञा दी गई थी। इसके आलोक में, इस अवरोध को तोड़कर पाँचवीं योजना अवधि में 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर को छू लेना वास्तव में, भारत में आर्थिक निष्पत्ति में एक मील का पत्थर है, जो कि इस तथ्य के बावजूद है कि वर्ष 1979-80 ने एक नकारात्मक वृद्धि दर दर्ज़ की थी। वास्तव में, व्यापक अनावृष्टि के लिए जाने-माने तीन वर्षों के अलावा, वर्ष 1969 व 1970 भी अनावृष्टि वर्ष के ही रहे थे क्योंकि प्रत्येक में अनुमानित 1.5 करोड़ लोग प्रभावित हुए थे।

तालिका 3.1 : विभिन्न योजना अवधियों में भारत की राष्ट्रीय आय में संवृद्धि (%)

योजना	अवधि	लक्ष्य	उपलब्धि
पहली योजना	1951-56	2.1	4.6
दूसरी योजना	1956-61	4.5	4.1

तीसरी योजना	1961-66	5.6	3.3
चौथी योजना	1969-74	5.7	3.0
पाँचवीं योजना	1974-79	4.4	5.0
छठी योजना	1980-85	5.2	5.3
सातवीं योजना	1985-90	5.0	5.8
आठवीं योजना	1992-97	5.6	6.5
नौवीं योजना	1997-2002	6.5	5.4
दसवीं योजना	2002-07	8.0	7.6
ग्यारहवीं योजना	2007-12	9.0	7.5
बारहवीं योजना	2012-17	–	6.7*

स्रोत : योजना आयोग एवं आर्थिक सर्वेक्षण, 2015-16. संवृद्धि दरें (GRs) वर्ष 2004-05 (आधार वर्ष) कीमतों के अनुसार आकलित की गई हैं। *12वीं योजना हेतु आँकड़े 2011-12 की कीमतों पर हैं।

3.2.2 1980 के दशक से आगे की अवधि

1980 के दशक में, भारत ने राष्ट्रीय आय में 1960 और 1970 के दशकों के दौरान रही निम्न वृद्धि दर के मुकाबले त्वरित वृद्धि दर देखी गई। 1980 के दशक की छठी व सातवीं दोनों ही योजना अवधियों के दौरान, साथ ही अगली आठवीं योजना में भी, राष्ट्रीय आय में संवृद्धि दरें लक्षित संवृद्धि दरों से ऊँची ही रहीं। तथापि, आगामी तीन योजना अवधियों, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं योजना अवधियों के दौरान लक्षित संवृद्धि दरों के संदर्भ में दर्ज़ राष्ट्रीय आय की संवृद्धि दरों में पुनः गिरावट देखी गई। कार्य-प्रदर्शन में इस गिरावट के लिए दो प्रमुख कारण पहचाने गए– (i) वर्ष 1997 के पूर्व एशियाई संकट के पश्चात् एक वैश्विक व्यापार मंदी; और (ii) खराब मानसून और शुरू किए गए सुधारों की गति में तेज़ी का अभाव।

बहरहाल, जबकि यह किंचित् भी स्पष्ट नहीं था कि विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था का एकीकरण भारत की व्यापार मंदी के लिए किस प्रकार ज़िम्मेदार था (चूँकि भारत ने वर्ष 1991 में ही अपनी अर्थव्यवस्था को उदार बनाया था और यह किंचित् परिवर्तित उदारीकरण की नीति अपना रहा था), नीति अस्थिरता में योगकारी घरेलू कारकों का उल्लेख अनदेखा नहीं किया जा सकता। जहाँ तक कि एक अनुकूल निवेश परिवेश हेतु वांछित सही नीति संकेत देने के लिए एक स्थिर सरकार होने का सवाल है, 1990 के दशकांत से ही गठबंधन सरकारों का क्रम आरंभ हो गया था, जिनमें से कई तो कुछ महीने ही टिकीं। वर्ष 1999 के अंत में ही एक किंचित् स्थिर सरकार सत्ता में आ सकी और अपने कार्यकाल (1999-2004) के दौरान सतत् सुधारों में एक बार फिर से स्थिरता का समावेश करा सकी। चूंकि इसके कुछ परिणाम सिद्ध होने के लिए नीति-निर्णयों के बाद कुछ समय विलंब के साथ सामने आने लगे थे, वर्ष 2004-09 के दौरान आपेक्षिक स्थिरता की एक 5 वर्षीय अवधि के पश्चात् राजनीतिक वातावरण में अस्थिरता का एक दूसरा दौर अभिभावी हो गया (2009-2014 तक)। यह अवधि (2009-14) अनेक घोटालों के लिए चर्चा में रही, जो कि धन की बड़ी-बड़ी राशियाँ अनुत्पादक कार्यों में लगाए जाने की ओर संकेत करता है। अतः, यह कहना ठीक ही होगा कि राजनीतिक अस्थिरता अथवा अनिश्चितता की

अवधियों ने भी 1990 के दशकांत में राष्ट्रीय आय की संवृद्धि में उपलब्धि के अभाव को बढ़ाने में योगदान किया, जो कि अगली शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा।

वर्ष 2011-12 से आगे के आँकड़े आधार वर्ष 2011-12 वाली नई श्रृंखला से उपलब्ध हैं। बारहवीं योजना के आँकड़ों को भी विचारार्थ रखने पर, भारत की राष्ट्रीय आय में औसत दीर्घावधि संवृद्धि दरें, जो कि तीन प्रमुख चरणों में विभाजित हैं, उल्लेखनीय हैं— चरण-I, 1951-1979, 4 प्रतिशत; चरण-II, 1980-1997, 6 प्रतिशत; और 1997-2017, 7 प्रतिशत। इसी वजह से भारत को विश्व में एक सबसे तेज़ी से बढ़ने वाली उदीयमान बाज़ार अर्थव्यवस्था के रूप में देखा जाने लगा है, हालाँकि, यह रुझान 1990 के दशकांत में भी प्रत्यक्ष हो चला था।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50—100 शब्दों में लिखें।)

1) 'संरचनात्मक परिवर्तन' के आवश्यक घटकों के रूप में किन बातों को पहचानेंगे?

....

....

....

....

....

2) क्या आप मानते हैं कि प्रधानतः कृषि आधारित अर्थव्यवस्था, अनिवार्यतः एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था होती है? अपने उत्तर के लिए कारण दीजिए।

....

....

....

....

....

3) चालू कीमतों में मापी गई राष्ट्रीय आय के आकलन स्थिर कीमतों में रूपांतरित किए जाने क्यों आवश्यक होते हैं?

....

....

....

....

....

4) वर्ष 1951-80 की अवधि में राष्ट्रीय आय में लक्षित वृद्धि दरें हासिल करने में भारत क्यों विफल रहा?

....

....

....

....

....

....

....

5) 1990 के दशकांत में भारत में राष्ट्रीय आय में ह्रास होने और संवृद्धि के लक्षित संवृद्धि दरों से कम होने के कौन-से दो प्रमुख कारक माने गए हैं?

....

....

....

....

....

6) क्या आप मानते हैं कि 1990 के दशकांत में आर्थिक मंदी की अवधि पूरी तरह प्रश्न 5 में पहचाने गए दो कारकों के कारण ही थी?

....

....

....

....

....

7) क्या आप मानते हैं कि भारत एक तेज़ी से वृद्धि करती उदीयमान अर्थव्यवस्था के रूप में उभरने में सफल रहा है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें।

....

....

....

....

....

....

3.3 क्षेत्रीय संवृद्धि/परिवर्तन

साइमन कुज़नेट्स (1966) ने सर्वप्रथम दर्शाया कि संवृद्धि के वास्तविक प्रभाव क्षेत्रीय संयोजनों में परिवर्तनों द्वारा प्रकट होते हैं, यथा, माँग एवं आपूर्ति दोनों ही कारणों से कृषि, उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों में एक छोर से दूसरे छोर तक। फ़िशर (1939) और क्लर्क (1940) ने इसी विचारक्रम का प्रतिपादन किया था। भारत के लिए राष्ट्रीय आय/सकल घरेलू उत्पाद की परिवर्तनशील अंतर्क्षेत्रीय रूपरेखा नीचे (तालिका 3.2 में) प्रस्तुत की गई है। इन आँकड़ों से स्पष्ट होने वाले महत्त्वपूर्ण रुझान निम्नलिखित हैं :

तालिका 3.2 : सकल घरेलू उत्पाद (%) का अंतर्क्षेत्रीय संयोजन

वर्ष	कृषि	उद्योग	सेवाएँ
1950-51	53.1	16.6	30.3
1960-61	48.7	20.5	30.8
1970-71	42.3	24.0	33.8
1980-81	36.1	25.9	38.0
1990-91	29.6	27.7	42.7
2000-01	22.3	27.3	50.4
2010-11	14.5	27.8	57.7
2011-12	13.9	27.0	59.0

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण (आधार 2004.05)

सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश : सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश वर्ष 1950-51 में 53 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2012 में मात्र 14 प्रतिशत रह गया। वास्तविक ह्रास विगत 60+ वर्ष की समयावधि में लगभग 39 प्रतिशत रहा। कृषि क्षेत्र का गिरता अंश किसी भी विकासमान अर्थव्यवस्था के विकास-पथ के साथ संगत होता है। तथापि, कृषि एवं संबद्ध कार्यों में सापेक्ष उच्च रोज़गार अंश की सतत् प्रधानता की दृष्टि से (वर्ष 2011-12 में 48.9 प्रतिशत), कृषिगत संवृद्धि स्वयं ही नौकरियों, आय और खाद्य सुरक्षा हेतु निरंतर अत्यावश्यक बनी रही है। इसके अलावा, कृषि-खाद्य उद्योगों के लिए कृषि-क्षेत्र कच्चे माल की आपूर्ति का प्रमुख स्रोत बना ही हुआ है।

सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग का अंश : सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग का अंश वर्ष 1950-51 में 17 प्रतिशत से वर्ष 2012 में 27 प्रतिशत तक बढ़ा। उद्योग की यह अंश वृद्धि तद्नुसार, 60+ वर्ष की अवधि में केवल 10 प्रतिशत ही रही। इसका अर्थ है कि राष्ट्रीय आय में कृषि के अंश में गिरावट से उद्योग को मिला 'लाभ' एक-तिहाई से भी कम रहा। (चूँकि 10 × 3 = 30, जो कि कुल कृषि क्षेत्र की गिरावट 39 प्रतिशत) से काफ़ी कम है।

सेवा क्षेत्र का उत्कर्ष : विगत छह दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन का सर्वाधिक विस्मयकारी लक्षण सेवा क्षेत्र का उत्कर्ष ही रहा है (सकल घरेलू उत्पाद में वर्ष 1951 में अपने 30 प्रतिशत अंश से वर्ष 2012 में 59 प्रतिशत)। विस्तार की यह गति मुख्यतः संचार, बैंकिंग व बीमा जैसे सेवाक्षेत्र घटकों की वृद्धि के कारण बढ़ी। सेवा क्षेत्र की तीव्र वृद्धि हेतु उत्तरदायी कारक ये हैं– (i) आर्थिक संवृद्धि और औद्योगिक विकास के साथ, परिवहन, संचार, विद्युत्, भंडारण, वित्त आदि सेवाओं हेतु माँग बहुत तेज़ी से बढ़ी है, जिसने सेवाओं के विस्तार अर्थात् तृतीयक क्षेत्र की ओर प्रवृत्त किया है; (ii) सूचना प्रौद्योगिकी सेवाओं का तीव्र विकास संचार क्षेत्र हेतु विस्तार का एक विशाल स्रोत सिद्ध हुआ है; (iii) रक्षा, नागरिक प्रशासन, आर्थिक एवं सामाजिक सेवाओं (जैसे स्वास्थ्य व शिक्षा) ने भी सेवा क्षेत्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है; तथा (iv) वृहद् मध्यम वर्ग की प्रयोज्य आय में वृद्धि के कारण होटल-रेस्तरां, पर्यटन-परिवहन, संचार आदि सेवाओं हेतु माँग बढ़ी है।

इस प्रकार, विनिर्माण जिसे ऐतिहासिक रूप से संवृद्धि के प्रमुख सहयोगी के रूप में देखा जाता है (कम से कम आर्थिक विकास की आरंभिक अवधि में तो अवश्य ही), ने भारत में एक लघु भूमिका ही निभाई है। सकल घरेलू उत्पाद में उद्योगों का अंश वर्ष 1991 से (वर्ष 2004-05 के मूल्यों पर) 27 प्रतिशत के आस-पास ही स्थिर रहा है। दूसरे शब्दों में, अन्य विकसित देशों से भिन्न, भारत औद्योगिक विकास को दरकिनार करता हुआ, एक 'उद्योगेतर' 'सेवा अर्थव्यवस्था' बन गया है। इस प्रकार के रुझान के दो कारण बताए जाते हैं– (i) संचार प्रौद्योगिकियों का विकास, जिसने तमाम देशों के लोगों का आवागमन सुचारू कर कार्य-कुशल कर्मियों हेतु माँग पैदा की है; और (ii) विकसित देशों द्वारा प्रदर्शन प्रभाव, जिसने भारत को माँग प्रतिमान में सेवाओं की ओर प्रवृत्त किया। अभी कुछ समय पूर्व, 2018-19 में जीडीपी में उद्योग का अंश कुछ बढ़कर 30 प्रतिशत के निकट (29.6%) हो गया है।

तालिका 3.2(क): क्षेत्रवार (%) जीडीपी अंश : 2013-19 (आधार 2011-12)

वर्ष	कृषि	उद्योग	सेवाएँ
2013-14	20.7	28.3	51.1
2016-17	18.2	28.4	53.3
2018-19	16.1	29.6	54.3

स्रोत : आर्थिक समीक्षा, 2019-20 खंड-2, तालिका 1.3 ख, 0-7 पृ.33

3.3.1 बचत

रोज़गार सृजन निवेश पर निर्भर करता है– सरकारी भी और निजी भी। इसके लिए बचत आवश्यक है। रोज़गार सृजन निजी एवं सार्वजनिक निवेशों पर निर्भर करता है। इसके लिए बचतों का बहुत महत्त्व होता है। राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन (NSO) अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख क्षेत्रों (परिवार, निजी निगम क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र) की बचतों के आँकड़े प्रकाशित करता है। पिछले कुछ समय की बचतों की प्रवृत्तियाँ सकल घरेलू बचतों में निरंतर गिरावट दिखा रही है (तालिका 3.3)।

तालिका 3.3 : जीडीपी के प्रतिशत अंश के रूप में घरेलू बचतें (2011-12 श्रृंखला)

क्षेत्र	2011-12	2014-15	2017-18
परिवार	23.6	19.6	17.2
निजी निगमित	9.5	11.7	11.6
सार्वजनिक	1.5	1.0	1.7
योगफल	**34.6**	**32.3**	**30.5**

स्रोत : आर्थिक समीक्षा, 2019-20 खंड-2, सांख्यिकी परिशिष्ट, ता. 1.9 पृ.30

3.3.2 निवेश

देश में तीन सांस्थानिक क्षेत्र हैं जो बचत और निवेश करते हैं। ये हैं– कुटुंब या परिवार, निजी निगमित क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र। सार्वजनिक क्षेत्र में आते हैं : सरकार और सार्वजनिक निगम। वर्ष 1991-2004 की अवधि में निवेश की संयोजित

दर (निवेश और सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात) औसतन 24.5 प्रतिशत रही। यह वर्ष 2004-05 में 30 प्रतिशत तथा अगले आठ वर्षों, यथा 2005-2013 में औसतन 35.4 प्रतिशत तक पहुँच गई। घरेलू बचत और कुल निवेश के बीच का अंतर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, विदेशों से प्राप्त अंतरण, आदि अन्य स्रोतों से पाटा जाता है। चूँकि घरेलू बचत में रुझान ह्रासोन्मुखी है और निवेश में रुझान ऊर्ध्वमुखी, इससे ज्ञात होता है कि हाल के वर्षों में बाहर से पूँजी का अंतर्वाह बढ़ रहा है। घरेलू बचत के तीन घटकों के बीच, सार्वजनिक क्षेत्र की बचत में लगातार गिरावट देखी गई है। उदाहरण के लिए, सार्वजनिक क्षेत्र की बचत 1980 के दशकारंभ में 4.5 प्रतिशत के आसपास ही रही, परंतु यह वर्ष 2015 में मात्र 1 प्रतिशत तक आ गिरी। अतः बचत और निवेश का अधिकांश भाग, कुटुंब एवं निजी निगमित क्षेत्रों से ही रहा है, जिनमें विदेशी प्राप्तियों और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का भाग एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस भाग के अलावा, उक्त तीन घटकों के बीच (वर्षों के दौरान कुछ भिन्नताओं के साथ), कुटुंब क्षेत्र लगभग 45 प्रतिशत और निगमित क्षेत्र लगभग 35 प्रतिशत का लेखा-जोखा देता है। शेष 20 प्रतिशत ही सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र से आता है।

3.3.3 रोज़गार

जैसा कि आरंभ में कहा गया है, संरचनात्मक परिवर्तन का अर्थ है, रोज़गार व आय के आपेक्षिक अंशों में व्यापक परिवर्तन, जहाँ संवृद्धि के लाभ समाज के निम्न पायदानों पर स्थित लोगों को तक पहुंच पाते हैं। यह कृषि से उद्योग की ओर व्यावसायिक विचलन की ओर भी संकेत करता है। इस प्रकार का विचलन दीर्घावधि समय क्षितिज पर परिणत होता है। जिसके लिए हमें आदर्श रूप से दीर्घतम उपलब्ध समय-शृंखला को लेना चाहिए। इसके होते हुए भी, प्रस्तुत पाठांश के प्रयोजनार्थ, सर्वप्रथम उत्तर 1991 रोज़गार परिदृश्य पर दृष्टिपात करना और फिर इसकी तुलना पूर्वावधि (यथा, 1951-2000) के रोज़गार परिदृश्य से करना व्याख्यात्मक होगा। इससे न सिर्फ़ सुधारोत्तर परिदृश्य सामने आएगा बल्कि लगभग आठ योजना अवधियों में विस्तीर्ण उदारीकरण पूर्व दशकों में किए गए विभिन्न प्रयासों का कुल योग भी पता लगेगा।

तालिका 3.4 : कुल रोज़गार में प्रमुख क्षेत्रों का अंश (प्रतिशत)

क्षेत्र	1999–2000	2004–05	2011–12	विचलन	2018–19
कृषि व संबद्ध	59.9	58.5	48.9	–11	43.2
उद्योग	16.4	18.2	24.3	+8	24.9
सेवा	23.7	23.3	26.9	+3	31.9

स्रोत : रंगाराजन व अन्य, 2014

तालिका 3.5 : रोज़गार का संयोजन (प्रतिशत)

क्षेत्र	1993–1994	1999–2000	2004–05	2009–10	विचलन
कृषि व संबद्ध	78.4	76.2	72.6	67.9	–10.5
ग़ैर-कृषि	21.6	23.8	27.4	32.1	+10.5

स्रोत : पपोला व साहु, 2012

सामान्य रूप से रोज़गार का बदलता संयोजन और विशिष्ट रूप से ग्रामीण ग़ैर-कृषि रोज़गर का बदलता संयोजन वर्ष 2000-2012 के दौरान एक महत्त्वपूर्ण (11 प्रतिशत) विचलन दर्शाते हैं (तालिका 3.4)। उद्योग एवं सेवा क्षेत्र के बीच इस विचलन का वितरण क्रमशः 8 प्रतिशत व 3 प्रतिशत है। यह दर्शाता है कि प्रत्याशा के विपरीत उत्तर 2000 वर्षों में उद्योग द्वारा श्रम का समावेशन सेवा क्षेत्र से अपेक्षाकृत अधिक रहा है। यह ध्यान देने की बात है कि यहाँ हम समस्त भारत की तस्वीर देख रहे हैं (यथा, कुशल व अकुशल कार्यबल का मिश्रण), जबकि यदि हम 'केवल शिक्षित कार्यबल' की विशिष्ट तस्वीर ही देखें तो तस्वीर भिन्न हो सकती है। वर्ष 1951 के आँकड़ों के अनुसार, कुल 14.3 करोड़ श्रमिकों में से 10 करोड़ कृषि में लगे थे लगभग 70 प्रतिशत था। यहाँ यह महत्त्वपूर्ण रूप से ध्यान देने की बात है कि कृषि में लगे श्रमिकों का प्रतिशत 1951-2000 के 50 वर्ष की अवधि में मात्र 10 प्रतिशत ही घटा था। अतः, 2000 पश्चात् के 12 वर्षों के दौरान, इस लिहाज से 11 प्रतिशत की गिरावट इस निष्कर्ष का समर्थन करती है कि उत्तर-2000 वर्षों में, ग़ैर-कृषि क्षेत्र में इस संरचनात्मक परिवर्तन के विस्तार में एक तीक्ष्ण उठान देखा गया। इसी प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों में ग़ैर-कृषि रोज़गार की दिशा में परिवर्तन हुए। वर्ष 1993-2010 के दौरान इस प्रकार का परिवर्तन 10.5 प्रतिशत रहा (तालिका 3.5)। फिर भी, यहाँ दो बातों पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण होगा : (i) वर्ष 1951-2000 के दौरान हासिल कृषिगत रोज़गार में 10 प्रतिशत गिरावट वर्ष 2000-2012 के दौरान हुई गिरावट के मुकाबले कहीं अधिक कठिन दौर से गुज़र कर हुई; और (ii) तालिका 3.4 और 3.5 में प्रतिशतता के हर भिन्न-भिन्न है (यथा, तालिका 3.4 में यह ग्रामीण + शहरी कार्यबल है और तालिका 3.5 में यह केवल ग्रामीण कार्यबल है)। फिर भी, इन भिन्नताओं को एक साथ लिए जाने पर, वर्ष 1951-2012 की संयुक्त अवधि में कार्यबल के विचलन में संरचनात्मक परिवर्तन, 70 प्रतिशत से 49 प्रतिशत (यथा, 21 प्रतिशत ह्रास) महत्त्वपूर्ण है। कार्यबल में कृषि का अंश 2019 में और घटकर 43 प्रतिशत के लगभग रह गया है। सन् 2000 से कृषिक श्रम बल में यह गिरावट 17 प्रतिशतांकों (-16.7%) के निकट है।

3.3.4 शहरीकरण

इस इकाई की प्रस्तावना में, हमने आगामी वर्षों में प्रत्याशित त्वरित शहरीकरण प्रक्रिया द्वारा अर्थव्यवस्था के ग्रामीण से शहरी अंश में संभावित परिवर्तन की चर्चा की थी। दशकों तक चले कायांतरण के परिणामस्वरूप, ग्रामीण से शहरी जनसंख्या का वितरण वर्ष 1961-2011 की 5 दशकीय अवधि में 13 प्रतिशत बिंदु तक बदला है (तालिका 3.6)। ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 82 से 69 प्रतिशत तक (13 प्रतिशत बिंदु तक) घटा है। इसके सदृश शहरी जनसंख्या में 13 प्रतिशत बिंदु की वृद्धि 7.5 व 5.7 प्रतिशत बिंदुओं द्वारा सुधार-पूर्व (1961-1991) तथा सुधारोत्तर (1991-2011) अवधियों के बीच वितरित है। अनुपात 7.5 : 5.7 वर्ष 1961-91 के तीन सुधार-पूर्व दशकों के लिए 2.5 और वर्ष 1991-2011 के दो सुधारोत्तर दशकों के लिए 2.85 का प्रति-दशक-औसत दर्शाता है। इसके अनुसार, सुधारोत्तर वर्षों में शहरीकरण की गति अपेक्षाकृत तीव्र रही है। दूसरे शब्दों में, उत्तर-उदारीकरण अवधि में सुधारों की गति तेज़ हुई है जो कि इस संकल्पना का समर्थन करती है कि जैसे ही अर्थव्यवस्था में उक्त प्रक्रिया स्वयं को स्थापित कर लेगी, अर्थव्यवस्था का संरचनात्मक कायांतरण और गति पकड़ेगा।

तालिका 3.6 : जनसंख्या के ग्रामीण-शहरी वितरण में परिवर्तन (प्रतिशत)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी
1961	82.0	18.0
1971	80.1	19.9
1981	76.9	23.1
1991	74.5	25.5
2001	72.2	27.8
2011	68.8	31.2

स्रोत : दशकीय जनगणना, 2011

3.4 भारत में क्षेत्रीय विषमताएँ

अपने प्रारंभ से ही भारतीय योजनाओं का सरोकार संतुलित संवृद्धि की संकल्पना से रहा है। परंतु इसके बावजूद, असंतुलित संवृद्धि और क्षेत्रीय विषमताएँ बनी ही रही हैं, क्योंकि अनेक कारक तृणमूल स्तर पर अपना काम करते ही रहे, जैसे– प्रगतिशील नीतियाँ लागू करने में राज्य सरकारों की तत्परता, वह सामाजिक परिवेश जिसमें किसी राज्य के लोग नीतियों व योजनाओं का लाभ उठाने में सक्षम नहीं होते, इत्यादि। परिणामतः, तीव्र संवृद्धि के लाभ देश के सभी भागों और लोगों के सभी वर्गों में न्यायोचित तरीके से नहीं पहुँचे हैं। सकल राज्य घरेलू उत्पादन (GSDP) संवृद्धि दरें और प्रति व्यक्ति उक्त उत्पाद (GSDP) के स्तरों में भिन्नताएँ विषमताओं के आर्थिक संकेतक मात्र हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अवसंरचनात्मक संसूचकों पर तो भारत के राज्यों के बीच व्यापक भिन्नताएँ हैं। इस प्रकार के परिदृश्य में, जबकि उच्च वृद्धि दरों ने देश के पहले से ही विकसित क्षेत्रों को व्यावसायिक एवं सेवा क्षेत्र के क्रियाकलापों की उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर प्रवृत्त किया है, पिछड़े क्षेत्रों में निरंतर शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, ग्रामीण सड़कों, पेयजल एवं बिजली जैसी मूलभूत सुख-सुविधाओं तक का अभाव बना हुआ है। आजीविका के विकल्प भी सीमित हैं, क्योंकि कृषि पर्याप्त लाभ नहीं देती और उद्योग व सेवाएँ कृषि से सीमित अधिशिष्ट श्रमबल का ही समावेश कर पाए हैं। परिणामतः, निम्न कौशल, कम तनख्वाह वाली नौकरियों में रोज़गार तलाशते लोग अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे दबावों का एक सामान्य आविर्भाव है। क्षेत्रीय असंतुलनों एवं विषमताओं का समंजन, इसीलिए, न सिर्फ़ स्वयं में एक लक्ष्य रहा है बल्कि देश के एकीकृत सामाजिक एवं आर्थिक तानेबाने को कायम रखने हेतु भी अनिवार्य रहा है।

3.4.1 क्षेत्रीय विषमताओं का विस्तार एवं कारण

वे प्रमुख कारक जिन पर क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने हेतु विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, निम्नलिखित हैं –

ग़रीबी की रेखा से नीचे की जनसंख्या : विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने हेतु ग़रीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या के प्रतिशत पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, वर्ष 2011-12 में मात्र तीन राज्य (यथा, बिहार, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश) ही मिलकर देश में कुल जनसंख्या का 44 प्रतिशत हो जाते थे। ग़रीबी की रेखा से नीचे की जनसंख्या का प्रतिशत भी इन

राज्यों में अखिल भारतीय स्तर (27.5 प्रतिशत) से काफ़ी ऊँचा था (यथा, बिहार 41.9 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ 40.9 प्रतिशत, झारखंड 40.3 प्रतिशत, उत्तराखंड 39.6 प्रतिशत, मध्य प्रदेश 38.3 प्रतिशत)। इसका अर्थ है कि आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों में ग़रीबी की समस्या अत्यंत गहन है और इन्हीं राज्यों में गरीब जनसमुदाय की दशा सुधारे जाने के लिए अधिक प्रयासों पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

मानव विकास में विषमताएँ : मानव विकास संसूचकों के लिहाज़ से, भारत में राज्यों के बीच उल्लेखनीय भिन्नताएँ हैं। उदाहरण के लिए, केरल का प्रदर्शन सर्वोत्तम है (जहाँ साक्षरता दर 93.9 प्रतिशत है, स्त्री साक्षरता दर 92 प्रतिशत और शिशु मृत्यु दर 12 प्रतिशत), परंतु इसी स्थिति के दूसरे छोर पर आते हैं– बिहार, राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश और असम, जहाँ प्रदर्शन निकृष्टतम है।

कृषि विकास में अंतर्राज्यीय विषमताएँ : क्षेत्रीय विषमता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण संसूचक है– देश के विभिन्न राज्यों के बीच कृषि के विकास के स्तरों में भिन्नताएँ। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग विशेष में कृषिगत उत्पादकता की ऊँची दर है। कहा जा सकता है कि कृषि में बीजों की उच्च उत्पादकता किस्मों (HYV) के अंगीकरण ने क्षेत्रीय विषमताओं को गंभीर बना दिया है।

औद्योगिक विकास में विषमताएँ : महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक और तमिलनाडु– इन चार औद्योगिक रूप से उन्नत राज्यों में उद्योगों का अत्यधिक क्षेत्रीय संकेंद्रण रहा है। उद्योगों के वितरण संबंधी असमानता को विशेष पहलकारियों द्वारा ठीक किए जाने की आवश्यकता है, जैसे संसाधन हस्तांतरण, विशिष्ट क्षेत्र विकास कार्यक्रम, रियायती वित्त आदि।

संवृद्धि प्रदर्शन में विषमता : भारत में विभिन्न राज्य तीन समूहों में वर्गीकृत हैं, यथा, उच्च-आय राज्य, मध्यम.आय राज्य और निम्न-आय राज्य। इन राज्यों की सापेक्ष स्थितियाँ 1981.2008 की अवधि में उनके प्रति व्यक्ति वास्तविक राज्य सकल घरेलू उत्पाद (SGDP) के औसत द्वारा निर्धारित की जाती हैं।

विनियमन हटा देने और अर्थव्यवस्था को खोल देने से बड़े बाज़ार शक्तियों के दबाव ने अंतः और अंतर-राज्यीय विषमताओं को बढ़ाया ही है। इसीलिए, उत्तर-उदारीकरण अवधि में राज्यों और क्षेत्रों के बीच समता को प्रोत्साहित करने में केंद्र की भूमिका का महत्त्व, बढ़ गया है। सरकार की नीतियाँ तीव्रतर एवं अधिक समावेशी संवृद्धि हासिल करने के लक्ष्य के साथ पुनरानुस्थापित की गई हैं। इस दिशा में, ऐसे क्षेत्रों एवं क्षेत्रों. उपक्षेत्रों में धन पहुँचाने के प्रयास किए जा रहे हैं जिन पर विभिन्न कार्यक्रमों एवं योजनाओं के तहत विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

3.5 वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR)

संसाधनों का आबंटन सभी अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष एक मुख्य समस्या होती है। किसी राष्ट्र के संसाधनों के निवेश हेतु प्रभावी निकर्ष तय करना इस संबंध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। सर्वाधिक परंपरागत निवेश निकर्षों में एक है– पूँजी-उत्पादन अनुपात का प्रयोग। इसी का एक भेद है– वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR)। यह अनुपात उत्पादन की कोई अतिरिक्त इकाई उत्पन्न करने हेतु वांछित पूँजी अथवा निवेश की अतिरिक्त इकाई का संकेत करता है। बचत की दर को यह अनुपात (ICOR) आकलित करने हेतु निवेश के रूप में लिया जाता है। अतः, ICOR = (GDP

में निवेशांश) ÷ (GDP की वृद्धि दर); यथा ICOR = S / G, जहाँ, S बचत दर है और G वृद्धि दर।

हैरोड-डोमर प्रतिमान आर्थिक संवृद्धि दर निर्धारित करने में दो प्रमुख प्राचलों में से एक के रूप में उक्त अनुपात (ICOR) पर ध्यान केंद्रित करता है। अधिक विशिष्ट रूप से, G = S/ICOR. तद्नुसार ICOR जितना कम होगा, G उतना ही अधिक होगा। विलोमतः, ICOR जितना अधिक होगा, संवृद्धि दर उतनी ही कम होगी, अर्थात् *पूँजी* की उत्पादकता कम होगी। *बचत* (S) *को निवेश* (I) *के बराबर माना जाता है।*

भारत संदर्भ में, वर्ष 2012-13 पश्चात् अवधि के आँकड़ों का विश्लेषण दो रुझान दर्शाता है। प्रथम, निवेश दर में गिरावट आई। दूसरे, संवृद्धि दर में ह्रास निवेश दर में ह्रास से अधिक रहा, जो यह दर्शाता है कि वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR) में बढ़ोतरी हुई। इस अनुपात में वृद्धि का श्रेय परियोजनाओं के समापन में विलंब अथवा संपूरक निवेशों के अभाव को दिया जा सकता है। कुछ मामलों में, यह देरी निर्णायक आगतों की अनुपलब्धता के कारण भी हुई। परियोजनाओं के समापन में विलंब आंतरिक कारणों के साथ-साथ नीतिगत संरोधों के कारण भी हो सकती है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50—100 शब्दों में लिखें।)

1) वर्ष 1951 से 2011 की अवधि में कृषि से होने वाली आय (राष्ट्रीय आय) किस सीमा तक गिरी? इस गिरावट के कारण औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्रों द्वारा लिए गए लाभांश क्या रहे?

....

....

....

....

....

2) वर्ष 1951-2011 की अवधि में सेवा क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण विस्तार में किन कारकों ने योगदान दिया?

....

....

....

....

....

3) उत्तर-1991 वर्षों के दौरान भारत के औद्योगिक विस्तार में गतिहीनता का दोष किन कारणों को दिया जाता है?

....

....

....

....

4) भारत में हाल के वर्षों में 'बचत' में क्या रुझान रहा है? 'निवेश' में इसके सदृश रुझान क्या रहा है? क्या दोनों के बीच कोई महत्त्वपूर्ण अंतर रहा है? यदि ऐसा है तो इसे दूर करने की क्या संभावनाएँ रही हैं?

....

....

....

....

5) रोज़गार के लिहाज़ से उत्तर-2000 वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में विस्तार की क्या दर रही है?

....

....

....

....

....

6) क्या आप 1951-2011 की अवधि में 21 प्रतिशत तक कृषिगत रोज़गार की गिरावट में संरचनात्मक परिवर्तन को महत्त्वपूर्ण मानते हैं? क्यों?

....

....

....

....

....

7) 1961 से 2011 की अवधि में शहरी के अनुपात में क्या वृद्धि हुई? सुधार-पूर्व और सुधारोपरांत दशकों में इसका वितरण क्या रहा?

....

....

....

....

....

8) कोई दो कारण बताइए कि क्यों क्षेत्रीय विकास के बीच विषमताएँ रही हैं।

....

....

....

....

9) वे कौन-से कारक हैं जिन पर संवृद्धि एवं विकास में क्षेत्रीय विषमताएँ कम करने के प्रयास किए जाते समय ध्यान दिया जाना चाहिए?

....

....

....

....

....

10) वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR) को आप कैसे परिभाषित करेंगे? आर्थिक विकास आयोजन में यह किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है?

....

....

....

....

....

11) यदि बचत-निवेश दर 36 प्रतिशत दी गई हो और लक्षित आर्थिक वृद्धि दर 6 प्रतिशत पर निर्धारित हो, तो वर्धमान पूँजी उत्पादन अनुपात (ICOR) क्या होगा? आगे, यदि उक्त अनुपात (ICOR) 2 प्रतिशत कम कर दिया जाए तो अर्थव्यवस्था के लिए प्रत्याशित वृद्धि दर क्या होगी?

....

....

....

....

....

3.6 सार-संक्षेप

संरचनात्मक परिवर्तन का अर्थ है, किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच रोज़गार व आय के सापेक्ष अंशों में बड़े बदलाव। ऐसे संरचनात्मक परिवर्तनों का किसी दीर्घावधि क्षितिज पर परिणत होना प्रत्याशित होता है। विशेष रूप से, कृषि क्षेत्र का अंश, जो कि विकास के निम्न स्तरों पर उच्च होगा, अन्य दो क्षेत्रों को हस्तांतरित हो जाता है, यथा, औद्योगिक एवं तृतीयक अथवा सेवा क्षेत्र को। तथापि, ऐसा अंतरण कभी-कभी औद्योगिक क्षेत्र के सेवा क्षेत्र जितना विस्तीर्ण हुए बिना भी हो सकता है। यद्यपि ऐसा अनेक विकसित अर्थव्यवस्थाओं में नहीं हुआ है, किंतु भारत के लिए, यही बात कही जाती है। यह अवधारणा वस्तुतः प्रासंगिक नहीं रही है, जैसाकि उत्तर 2000 वर्षों हेतु आँकड़ों में देखा गया जहाँ अपने रोज़गार अंश के लिहाज से कृषि क्षेत्र द्वारा निकले कुल 11 प्रतिशत बिंदुओं में से 8 प्रतिशत का बड़ा भाग उद्योगों में वर्धित रोज़गार अंश के कारण माना जाता है और शेष 3 प्रतिशत का सेवाओं के कारण। महत्त्वपूर्ण रूप से, वर्ष 2000 से पूर्व समस्त 5 दशकीय अवधि में, यथा वर्ष 1951 से

2000 तक, भी कृषि रोज़गार में ऐसा ही 10 प्रतिशत परिवर्तन देखा गया था (यथा, वर्ष 1951 में 70 प्रतिशत से वर्ष 2000 में 60 प्रतिशत की ऊँचाई तक)। साथ ही, उल्लेखनीय रूप से, केवल ग्रामीण क्षेत्र में रोज़गार पर विचार करते हुए, कृषि क्षेत्रीय रोज़गार के अंश में 10.5 प्रतिशत गिरावट देखी गई। यह रुझान ग्रामीण क्षेत्रों में ग़ैर-कृषि व ग़ैर-फार्म क्षेत्र संवृद्धि के माध्यम से श्रम हस्तांतरण की प्राक्कल्पना का समर्थन करता है। आय विवरण में परिवर्तन सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के योगदान में बहुत बड़ी गिरावट दर्शाता है (वर्ष 1951 में 53 प्रतिशत से वर्ष 2011 में 14.5 प्रतिशत)। औद्योगिक क्षेत्र हेतु सदृश्य वृद्धि 17 से 28 प्रतिशत रही (यथा, 11 प्रतिशत बिंदु) और सेवाक्षेत्र हेतु यह 30 प्रतिशत से 58 प्रतिशत रही (यथा, 28 प्रतिशत बिंदु)। संरचनात्मक परिवर्तन का परिणाम ग्रामीण जनसंख्या के मुकाबले शहरी जनसंख्या की अंश वृद्धि रहा। यह परिवर्तन सामान्य से 13.2 प्रतिशत वृद्धि के रूप में देखा गया है, अर्थात् वर्ष 1961 में 18 प्रतिशत से वर्ष 2011 में 32 प्रतिशत।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Athukorala P & Sen K (2002). Saving, Investment, and Growth in India, Oxford University Press, New Delhi.

2) Bhattacharya, B. B. & Sakthivel S. (2004). 'Regional Growth and Disparity in India: Comparison of Pre and Post-Reform Decades', *Economic and Political Weekly* 29(10), 6 March.

3) Cairncross, A.K. (1970). The Capital – Output Ratio in Stephen Spiegelglas and Charles (Ed.), Economic Development: Challenge and Promise.

4) Joshi, Vijay and I.M.D. Little (2005). India, Macro Economics and Political Economy I964 to 1991, Oxford University Press, New Delhi.

5) Papola & Sahu (2012). Growth and Structure of Employment in India: Long Term and Post-Reform Performance and the Emerging Challenge, ISID, New Delhi.

6) Rangarajan C, Seema and E. M. Vibeesh (2014). 'Developments in the Workforce between 2009-10 and 2011-12',*Economic and Political Weekly*, vol. XLIX (23).

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) संरचनात्मक परिवर्तन का अर्थ है, जनसंख्या के निचले तबकों को आर्थिक संवृद्धि के लाभों का हस्तांतरण, जो कि उनके आय एवं रोज़गार स्तरों में वृद्धि के माध्यम से होता है। शहरी और ग्रामीण के सापेक्ष अंशों में परिवर्तन (अर्थात् बढ़ा शहरीकरण) अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन का ही परिणाम होता है।

2) नहीं। कोई भी अर्थव्यवस्था एक विकसित, प्रस्थिति हासिल करने के लिए पशु-पालन समेत अपने कृषिगत क्षेत्र को 'कृषि एवं संबद्ध' क्रियाकलापों की ओर मोड़ सकता है।

3) संवृद्धि विवरणों की कालगत तुलना करने के लिए। इसके अभाव में, शेष अवधि के दौरान कीमतों के बदलते स्तरों को ध्यान में रखा जाता है।

4) विफलताओं का दोष लड़े गए युद्धों और अनुभव की गई अनावृष्टियों को दिया जाता है।

5) वैश्विक मंदी और खराब मानसून, जो कि मंथर गति के सुधारों के साथ आए।

6) नहीं। यह अवधि देश में बार-बार राजनीतिक अस्थिरता हेतु भी जानी जाती है।

7) हाँ। भारत में राष्ट्रीय आय की दीर्घावधि संवृद्धि दर वर्ष 1951-79 में 4 प्रतिशत से वर्ष 1980-97 में 6 प्रतिशत तथा वर्ष 1997-2017 में 7 प्रतिशत तक नियमित रूप से बढ़ती रही है।

बोध प्रश्न 2

1) कृषि क्षेत्र के अंश में गिरावट 39 प्रतिशत के आस-पास रही। उद्योग का यह अंश 11 प्रतिशत तक और सेवा क्षेत्र का 28 प्रतिशत तक बढ़ा।

2) सेवा क्षेत्र के अनेक घटकों हेतु माँग, सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में घटनाक्रम आदि।

3) कर्मचारियों का प्रवसन तथा सेवाओं हेतु मांग के स्वरूपों में परिवर्तन।

4) घरेलू बचत हाल के वर्षों में घट कर है जो वर्ष 2015 में 19 प्रतिशत तक पहुँच गई थी। तथापि, निवेश वर्ष 2008-13 में 35 प्रतिशत तक सुधर गया। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और विदेशी प्रेषण ने खाई को पाटने में योगदान दिया है।

5) वर्ष 2000+ में कृषिगत रोज़गार में 11 प्रतिशत की गिरावट देखी गई है। इसमें से 8 प्रतिशत अंश उद्योगों और 3 प्रतिशत सेवाओं की ओर चला गया।

6) हाँ। यद्यपि वर्ष 2000 तक 50 वर्ष की अवधि में, यह मात्र 10 प्रतिशत था, यह आरंभिक योजना अवधि, युद्धों, अनावृष्टियों आदि के लिहाज से अशांत ही मानी गई है। उत्तर 2000 वर्ष अपेक्षाकृत बेहतर अवधि रहे।

7) 13 प्रतिशत बिंदु। क्रमशः 7.5 व 5.7 प्रतिशत।

8) प्रगतिशील नीतियों के अपनाने एवं लागू नीतियों से लाभ लेने हेतु राज्य की क्षमता में अंतर।

9) ग़रीबी की रेखा से नीचे की जनसंख्या, मानव विकास संसूचक, कृषिगत प्रगति विकास की स्थिति, औद्योगिक विकास में विषमताएँ तथा संवृद्धि प्रदर्शन।

10) वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR) को 'लक्षित वृद्धि दर के प्रति निवेश' के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। उन लक्षित वृद्धि दरों को प्राप्त करने के लिए नीतियाँ अपनाना आवश्यक होता है जिनके लिए इस अनुपात (ICOR) पर ध्यान दिया जा सकता है, विशेष रूप से वांछित श्रम एवं पूँजी मिश्रण को तय करने के लिए।

11) $G = 36/6 = 6$. $G = 36/4 = 9$ प्रतिशत।

इकाई 4 संसाधन और संरोध*

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 विषय प्रवेश

4.2 संसाधनों के प्रकार

4.2.1 प्राकृतिक संसाधन

4.2.2 मानव निर्मित संसाधन

4.3 अवसंरचना

4.3.1 भौतिक अवसंरचना

4.3.2 सामाजिक अवसंरचना

4.4 विकास में अवसंरचना की भूमिका

4.5 भारत में अवसंरचनात्मक विकास

4.6 संस्थान एवं शासन

4.7 सार-संक्षेप

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- प्राकृतिक संसाधनों और मानव निर्मित संसाधनों के बीच अंतर स्पष्ट कर सकें;
- स्पष्ट कर सकें कि संसाधन किस प्रकार आर्थिक संवृद्धि एवं विकास हेतु आधारिक संरचना को अतिमहत्त्वपूर्ण बनाने में सहायक होते हैं;
- किसी दृढ़ अवंरचनात्मक आधार को तैयार करने में एक निर्णायक भूमिका निभाते उत्पादन के विभिन्न कारकों को वर्गीकृत कर सकें;
- भौतिक अवसंरचना और सामाजिक अवसंरचना के बीच भेद कर सकें;
- आर्थिक विकास में अवसंरचना की भूमिका पर चर्चा कर सकें;
- भारत में अवसंरचना विकास की स्थिति का वर्णन कर सकें; तथा
- 'संस्थान एवं शासन' के रूप में भारत में अवसंरचना विकास हेतु चुनौतियों एवं संरोधों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें।

4.1 विषय प्रवेश

प्राकृतिक संसाधनों में वे सभी चीज़ें और उत्पाद शामिल होते हैं जो, मानव श्रम, पूँजी व उद्यम के साथ मिलकर, लाभ एवं सेवाएँ प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

*प्रो. सेबक जाना, मिदनापुर विश्वविद्यालय

प्राकृतिक संसाधन अपनी प्रकृति में स्थिर नहीं बल्कि गतिशील होते हैं; वे आर्थिक विकास के स्तर के साथ बदलते रहते हैं। संसाधन अवसंरचना विकास के लिए आवश्यक होते हैं जो कि बदले में समग्र विकास, यथा, अर्थव्यवस्था के सभी तीन प्राथमिक क्षेत्रों की संवृद्धि एवं विकास के लिए सामर्थ्य और संभावना निर्धारित करता है। परिवहन, संचार एवं ऊर्जा आर्थिक अवसंरचना के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। परिवहन के विभिन्न साधन, तीव्रतर गति पर आग्रह के साथ विकसित हुए हैं, यही दर्शाते हैं कि किस प्रकार विश्व तेज़ी से बदलते समय-गति सदिश में विराजमान है। दूरियाँ स्थानिक पदों में नहीं बल्कि गति के आधार पर मापी जाती हैं। इन सबमें, ऊर्जा की खपत ही एकमात्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राचल है जो किसी विकसित अर्थव्यवस्था को किसी विकासशील अर्थव्यवस्था से अलग खड़ा करता है। इस इकाई में हम भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रसंग में संसाधनों एवं अवसंरचना के घटकों पर चर्चा करेंगे। विकास के मार्ग में संरोधों अर्थात् अवरोधक तत्त्व, (संस्थानों एवं शासन' में अक्षमताओं के कारण अवसंरचना के किसी अभाव द्वारा भी) इस इकाई में चर्चा के मूल में रहेंगे।

4.2 संसाधनों के प्रकार

संसाधन एक ऐसा स्रोत या संचय है जिससे कोई लाभकारी वस्तु उत्पादित होती हो। विशिष्टतः, संसाधन सामग्रियाँ, ऊर्जा, सेवाएँ, श्रम, ज्ञान व अन्य भौतिक परिसंपत्तियाँ होते हैं। ये किसी लाभकारी वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए किसी न किसी प्रकार मिश्रण में प्रयोग किए जाते हैं। इस प्रक्रिया में, कुछ संसाधन (जिन्हें अनवीकरणीय अथवा समाप्य संसाधन कहा जाता है) इस प्रकार उपभोग भी कर लिए जा सकते हैं कि वे संसाधन, वे भावी प्रयोग के लिए अनुपलब्ध हो जाते हैं। संसाधन, तद्नुसार, मूलतः दो प्रकार के होते हैं– प्राकृतिक और मानव-निर्मित। आइए, इन दोनों के बीच अंतर कर चर्चा आरंभ करें।

4.2.1 प्राकृतिक संसाधन

प्राकृतिक संसाधन पर्यावरण से व्युत्पन्न होते हैं। इनमें से कुछ संसाधन जीवित रहने के लिए अनिवार्य हैं, जबकि अन्य हमारी सामाजिक इच्छाएँ पूरी करते हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक मानव निर्मित उत्पाद कुछ हद तक प्राकृतिक संसाधनों से ही बना होता है। प्राकृतिक संसाधन प्रकृति द्वारा प्रदत्त सामग्री हैं जिनका प्रयोग कर मनुष्य अन्य अनेक जटिल उत्पाद तैयार करता है जिन्हें मानव निर्मित उत्पादों की संज्ञा दी जाती है। प्राकृतिक सांधनों के कुछ उदाहरण और जिस प्रकार से हम उन्हें प्रयोग करते हैं, तालिका 4.1 में दर्शाए गए हैं।

तालिका 4.1 : प्राकृतिक संसाधनों के प्रकार

प्राकृतिक संसाधन	उत्पादों अथवा सेवाओं के उदाहरण
वायु	पवन ऊर्जा
कोयला	बिजली
खनिज	सिक्के, तार, इस्पात, एल्युमीनियम पात्र, आभूषण
प्राकृतिक गैस	विद्युत, ताप
तेल	बिजली, वाहन ईंधन

सूर्य प्रकाश	सौर ऊर्जा, प्रकाश-संश्लेषण
जल	जल-विद्युत ऊर्जा, पेय सफ़ाई

स्रोतः http://study.com/academy/lesson/what-are-natural-resources-definition-lesson-quiz.html

जल संसाधन : जल जीवन के अनेक पहलुओं के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सीमा निर्धारक कारक है, जैसे – (i) आर्थिक संवृद्धि, (ii) पर्यावरण स्थिरता, (iii) जैव विविधता संरक्षण, (iv) खाद्य सुरक्षा, तथा (v) स्वास्थ्य परिचर्या। वर्तमान में, मनुष्य विश्व में सुलभ समस्त अलवणीय जल आपूर्ति का लगभग 54 प्रतिशत प्रयोग करता है। वर्ष 2025 तक यह अंश बढ़कर 70 प्रतिशत पहुँच जाने की आशा है। इसके पादप जगत् समेत संपूर्ण सजीव जगत के लिए गंभीर निहितार्थ हैं। इन अनेक कारणों से अलवणीय जल हेतु माँग अभूतपूर्व स्तरों तक बढ़ रही है, जैसे– (i) जनसंख्या वृद्धि, (ii) बढ़ती सिंचाई आवश्यकताएँ, (iii) तीव्र शहरीकरण, (iv) औद्योगीकरण, तथा (v) उत्पादन एवं उपभोग में वृद्धि। भारत को विश्व में एक जलीय उत्तेजनशील स्थल अर्थात् अखाड़े के रूप में गिना जाता है, जिसका प्रमुख कारण है– यहाँ की विशाल जनसंख्या, जिसे खाद्य एवं पेयजल प्रदान करना ही होता है। जल की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता भारत में वर्ष 1951 में 5000ड^3 (घन मीटर) से घटकर वर्ष 2010 में मात्र 1588 M^3 रह गई है।

ऊर्जा संसाधन : ऊर्जा संसाधन दो प्रकार के होते हैं : अनवीकरणीय और नवीकरणीय। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधन जीवाश्म ईंधन हैं, जैसे कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस। ऊर्जा औद्योगिक क्षेत्र, परिवहन क्षेत्र (जो कि मुख्यतः निजी कारों में वृद्धि के कारण ऊर्जा प्रयोग करने वाला विश्व का सबसे तेज़ी से बढ़ता रूप है) तथा आवास एवं वाणिज्यिक क्षेत्र (यथा, भवनों, व्यापार, सार्वजनिक सेवाओं, कृषि एवं मत्स्य उद्योग में ऊर्जा प्रयोग) में प्रयोग की जाती है। भारत, चीन, अमेरिका एवं रूस के बाद विश्व में चौथा सबसे बड़ी ऊर्जा उपभोक्ता है। तथापि, अमेरिका में 6800 इकाइयों और चीन में 2030 इकाइयों की तुलना में भारत का प्रतिव्यक्ति ऊर्जा उपभोग 615 इकाइयाँ मात्र हैं।

भारत कोयले का तीसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता है और विश्व में पाँचवाँ सबसे बड़ा कोयला भंडार स्वामी है। भारत के पास पर्याप्त तेल नहीं है और इसलिए उसे अपनी तेल संबंधी आवश्यकता का 83 प्रतिशत आयात करना पड़ता है। भारत, चीन, जापान और अमेरिका के बाद विश्व का चौथा सबसे बड़ा तेल-आयातक है। सरकार ऊर्जा उत्पादों की कीमतों पर साहाय्य देने को बाध्य है, परंतु अभी हाल में उसे ऐसे परिदान कम करते देखा जा रहा है। लगभग 25 प्रतिशत जनसंख्या को बिजली सुलभ ही नहीं है जबकि विद्युतीकृत क्षेत्र असतत् विद्युत निर्माण से पीड़ित रहता है। सरकार वर्तमान में पवन फार्म, सौर ऊर्जा, जलविद्युत् और कचरे-से-ऊर्जा परियोजनाएँ जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहन दे रही है।

वन संसाधन : मानव मात्र जो आर्थिक लाभ वनों से प्राप्त करता है, दो प्रकार के होते हैं– (i) प्रत्यक्ष प्रयोग मूल्य, जैसे इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी, खाद्य पादप, आदि व औषधीय पादप; तथा (ii) परोक्ष प्रयोग मूल्य, जैसे कार्बन अवशोषण, जैव. विविधता संरक्षण हेतु प्राकृतिक आवास का प्रावधान, पारितंत्र संरक्षण सेवाएँ, जैसे मृदा अपरदन घटाने हेतु क्षमता एवं नदियों की गाद कम करना। भारत के लिए 'ऊर्जा स्थिति रिपोर्ट, 2013' के कुछ निष्कर्ष हैं– (i) देश का वन एवं वृक्ष आवरण लगभग

7 करोड़ हेक्टेयर अथवा कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 21 प्रतिशत है; (ii) वर्ष, 2011 के मूल्यांकन के बाद से, वनावरण में 5800 हेक्टेयर की वृद्धि हुई है; तथा (iii) भारत के सात उत्तर-पूर्वी राज्य देश के वनावरण का लगभग एक-चौथाई भाग घेरते हैं।

भूमि : यद्यपि वैश्विक भू-क्षेत्र पृथ्वी की सतह के एक-तिहाई से भी कम है, यह मानवमात्र को प्रदत्त अपने अनेक संसाधनों एवं प्रकार्यों के कारण हमारे अस्तित्व हेतु अत्यावश्यक है। इनमें आते हैं– (i) जैव विविधता, (ii) जल, (iii) कार्बन चक्र, आदि। विश्व के भू-पृष्ठ का वर्धमान 'मरुस्थलीकरण' के साथ निरंतर अवक्रमण हो रहा है। एक अनुमान के अनुसार समस्त प्रयोज्य भूमि के 23 प्रतिशत का अवक्रमण हो चुका है। अवक्रमण के प्रमुख कारण हैं– (1) निर्वनीकरण, (2) अतिचारण, (3) कुव्यवस्थित कृषि, (4) अनियोजित औद्योगीकरण एवं शहरीकरण, आदि। किसी भी देश में कुल भूक्षेत्र अपनी निश्चित सीमाओं में ही रहता है, जिसके भीतर आर्थिक विकास की प्रक्रिया को नियोजित करना होता है। वर्धमान विश्व जनसंख्या के साथ भूमि पर दवाब गहरा होगा। भारत में भूमि प्रयोग का प्रतिमान तालिका 4.2 में दर्शाया गया है। उपलब्ध भूमि, अपने प्रयोग के आधार पर दो प्रकार से वर्गीकृत की जाती है, यथा –(क) कृषि भूमि, और (ख) ग़ैर-कृषि भूमि।

तालिका 4.2 : भारत में भूमि प्रयोग

(वर्ग किमी. में)

प्रयोग पर वर्गीकरण की मदें	1950–51	प्रतिशत	2014–15	प्रतिशत
भौगोलिक क्षेत्र	328726	–	328726	–
भूमि प्रयोग आँकड़ों हेतु सूचित क्षेत्र	284315	100	307818	100
वन	40482	14	71794	23
बंजर भूमि	47517	17	43880	14
परती भूमि छोड़कर शेष अकृष्य भूमि	49446	17	25832	8
परती भूमि (कृष्य भूमि के मध्य अकृष्य भूमि)	28124	10	26182	9
निवल बुआई क्षेत्र	118746	42	140130	46

कृषि भूमि में निवल बुआई क्षेत्र और वर्तमान परती भूमि शामिल होते हैं। भारत में (वर्ष 2014–15 में) कृषि भूमि, तद्नुसार, कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 55 प्रतिशत है। देश की विशाल जनसंख्या के कारण, प्रतिव्यक्ति कृष्य भूमि (यथा, कृषि-योग्य भूमि) 0.24 हेक्टेयर के विश्व औसत के मुकाबले मात्र 0.16 हेक्टेयर ही है। ग़ैर-कृषि भूमि में शामिल हैं– (i) वनावृत्त भूमि, (ii) अकृष्य परती, बंजर भूमि के रूप में वर्गीकृत तथा पर्वतों एवं मरुस्थलों में अकृष्य भूमि।

4.2.2 मानव निर्मित संसाधन

मानव निर्मित संसाधन प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का प्रयोग कर उत्पादित माल व सेवाएँ हैं। प्रायः, संसाधन मनुष्य के लिए उपयोगी तभी बन पाते हैं जब उनका मूल

रूप बदल दिया जाता है। ऐसी वस्तुएं प्राकृतिक रूप से नहीं होतीं बल्कि मानव द्वारा उपभोग हेतु उत्पादित की जाती हैं। औषधियों, जैसे कुछ मानव निर्मित संसाधन आधुनिक मानव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं, क्योंकि, टीका-द्रव्य जैसी औषधियों के बिना लोग रोग एवं मृत्यु के शिकार हो जाएँगे। किंतु, पीड़कनाशी जैसे कुछ मानव निर्मित संसाधन वैज्ञानिक रूप से प्रयोग न किए जाने पर प्राकृतिक पर्यावरण को हानि भी पहुँचा सकते हैं।

कुछ मानव निर्मित संसाधन प्राकृतिक संसाधनों की भाँति ही होते हैं। उदाहरण के लिए, झीलें और ताल मानव-निर्मित संसाधन हैं। जबकि उनमें जल और मछलियाँ प्राकृतिक संसाधन हैं, किंतु उनमें जल मानव प्रयास द्वारा ही एकत्र होता है। ऐसे संसाधन अनेक लोगों के लिए खाद्य, आय और आमोद-प्रमोद अवसर पैदा करते हैं। इसी प्रकार, खेत भी प्रकृति से उपलब्ध पौधे एवं मृदा प्रयोग करने वाले मानव निर्मित संसाधन हैं। कागज़ जैसे कुछ अन्य मानव निर्मित संसाधन प्रायः पुस्तकों एवं तश्तरियों जैसे अन्य संसाधन तैयार करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। तारों एवं अर्धचालकों जैसे उच्च-प्रौद्योगिक उत्पाद मानव के प्रयोग हेतु बनी अन्य वस्तुएँ हैं। अन्य मानव निर्मित संसाधनों के उदाहरण हैं– अस्पताल, अनुसंधान केंद्र, शैक्षणिक संस्थान, आदि। ये सामुदायिक विकास हेतु संसाधनों के रूप में काम करते हैं। कुल मिलाकर वे अवसंरचना बन जाते हैं जो आर्थिक संवृद्धि एवं विकास की रीढ़ कहलाते हैं।

4.3 अवसंरचना

अवसंरचना, अर्थात् आधारिक संरचना, के अंतर्गत वे आनुषंगिक सेवाएँ आती हैं जो कृषि एवं उद्योग जैसे उत्पादनकारी क्रियाकलापों की संवृद्धि में सहायक होती हैं। यद्यपि अवसंरचनाकी संकल्पना आर्थिक विकास विषयक पुस्तकों में व्यापक रूप से प्रयोग होती रही है, 'अवसंरचना' शब्द की कोई भी सटीक एवं सामान्यतः स्वीकार्य परिभाषा अब भी भ्रांतिजनक ही होती है। गुणात्मक एवं दक्ष अवसंरचना सेवाओं का प्रावधान अर्थव्यवस्था से उमड़ते संवृद्धि आवेगों की पूर्ण अंतःशक्ति को कार्य में परिणत करने हेतु अपरिहार्य होता है। प्रो. वी.के.आर.वी. राव ने उत्पादन के कारकों का एक सर्वसमावेशी वर्गीकरण किया है, जिसमें अवसंरचना व उसके निर्माण में अभिन्न क्रियाकलाप/कार्यक्षेत्र दिए गए हैं, जो कि निम्नवत् हैं–

क) **परिवहन** : सड़कें, रेलमार्ग, नौवहन पत्तन एवं बंदरगाह, हवाई पत्तन, परिवहन उपकरण।

ख) **संचार** : डाक, तार, दूरभाष, आकाशवाणी, दूरदर्शन, चलचित्र।

ग) **ऊर्जा** : कोयला, बिजली (जल, ताप, नाभिकीय), पवन, सौर, तेल, गैस, गोबर गैस।

घ) **माध्यमिक वस्तु उत्पादन** : खनिज, इस्पात, मूल रसायन, उर्वरक एवं पीड़कनाशी, यंत्र-समूह एवं यंत्र उपकरण।

ङ) **प्राकृतिक संसाधनों की उत्पादकता** : भूमि-सुधार, सिंचाई (वृहद्, मध्यम, लघु), अपवाह, मेंड़बंदी, बाँध बनाना व भूमि पुनर्रूपांतरण, चकबंदी, उच्च. उत्पादकता गो-जातीय किस्में, मत्स्य ग्रहण नौकाएँ, मत्स्य ग्रहण उपस्कर एवं प्रशीतन, वनीकरण एवं वाणिज्यिक वनों का विकास।

च) **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी** : अध्यापन, आधारिक एवं व्यावहारिक अनुसंधान, राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ, उत्पादन इकाइयों से संपर्क।

छ) **सूचना प्रणाली** : जनसंपर्क साधन, पुस्तकालय एवं संग्रहालय, मेले एवं प्रदर्शनियाँ, पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ।

ज) **वित्त एवं बैंक व्यवसाय** : बचत संस्थान (सार्वजनिक, निजी एवं सहकारी क्षेत्रों में), ऋण एवं परिदाय संस्थान (सार्वजनिक, निजी एवं सहकारी क्षेत्रों में), पूँजी बाज़ार।

झ) **मानव संसाधन विकास** : पेयजल, रोग उन्मूलन, सार्वजनिक स्वच्छता, परिवार नियोजन, चिकित्सा सुविधाएँ, शिक्षा-साक्षरता, विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय, व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी एवं औद्योगिक विद्यालय, विकास शास्त्र विधाएँ।

किसी भी देश का आर्थिक विकास खासकर कृषि, उद्योग एवं सेवाक्षेत्र जैसे क्षेत्रों का विकास, काफ़ी कुछ उसकी अवसंरचनात्मक सुविधाओं की उपलब्धता पर निर्भर करता है। किसी भी अर्थव्यवस्था की अवसंरचना स्थूलतः दो प्रकार की होती है– भौतिक अवसंरचना और सामाजिक अवसंरचना। अवसंरचना को प्रयोजनों के उद्देश्य के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है, यथा (i) 'अनम्य' और 'सुनम्य' अवसंरचना, (ii) ग्रामीण एवं शहरी अवसंरचना, तथा (iii) सांस्थानिक एवं ग़ैर-सांस्थानिक अवसंरचना। **अनम्य अवसंरचना** को सड़कों, सेतुओं आदि भौतिक अवसंरचना के रूप में परिभाषित किया जाता है, जबकि **सुनम्य अवसंरचना** को मानव पूँजी एवं उन संस्थानों के रूप में देखा जाता है जो किसी जनसमुदाय के आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मानक कायम रखने के लिए वांछित होते हैं।

4.3.1 भौतिक अवसंरचना

भौतिक अवसंरचना कृषि, उद्योग एवं व्यापार जैसे उत्पादन क्षेत्रों से सीधे संबद्ध होता है। इसमें बिजली, सिंचाई, परिवहन एवं दूरसंचार जैसी सेवाएँ शामिल होती हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में भौतिक अवसंरचना का कार्य-प्रदर्शन मिश्रित एवं उतार-चढ़ाव भरा रहा है। वर्ष-दर-वर्ष भारत की 'सुनम्य अवसंरचना' तेज़ी से विकसित होती रही है। इसके विपरीत, 'अनम्य अवसंरचना' का विस्तार एवं कार्य-प्रदर्शन देश के जनसंख्या घनत्व को ध्यान में रखते हुए साधारण ही रहा है।

4.3.2 सामाजिक अवसंरचना

सामाजिक अवसंरचना में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सीय देखभाल, पोषण, आवास तथा जलापूर्ति शामिल होते हैं, जो कि मानव विकास में सुधार हेतु योगदायी रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास तेज़ी से होता है। मानव विकास लोगों के विकल्पों व उनके क्षेम-स्तर को विस्तीर्ण करने की प्रक्रिया है। ये विकल्प कालांतर में बदलते हैं और विकास के अपने चरण के अनुसार समान व्यक्तियों के बीच भी भिन्न-भिन्न होते हैं। लोगों के लिए तीन अनिवार्य विकल्प हैं– एक दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन बिताना, ज्ञानार्जन करना तथा जीवन के एक मर्यादित मानक हेतु आवश्यक संसाधनों की सुलभता।

'सामाजिक अवसंरचना' पदबंध का प्रयोग उन 'ऊर्ध्वस्थ सुविधाओं' (यथा, जो उत्पादन से संबद्ध न हों) के अर्थ में किया जाता है, जो उत्पादन में श्रम उत्पादकता की गुणवत्ता सुधारने में योगदायी होती है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, आदि शामिल होते हैं। सामाजिक अवसंरचना मानव-पूँजी निर्माण में अत्यावश्यक होती है जबकि

भौतिक अवसंरचना भौतिक पूँजी का निर्माण करती है। जहाँ एक ओर, मानव पूँजी आर्थिक विकास की प्रक्रिया में एक बेहद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, सामाजिक अवसंरचना पर व्यय उपभोग की बजाय निवेश माना जाता है। आर्थिक एवं सामाजिक, दोनों अवसंरचनाएँ, आर्थिक क्रिया-कलापों को कुशलतापूर्वक निष्पादित करने के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। यह भेद केवल उनकी विषय-वस्तु में अंतर विषयक है, न कि उनकी भूमिका अथवा महत्ता विषयक।

अंतर्जात संवृद्धि सिद्धांत के अनुसार, निकृष्ट भौतिक अवसंरचना तथा मानव पूँजी दोनों आर्थिक संवृद्धि को संरोधित करती हैं। उदाहरण के लिए, हॉल एवं जोन (1999) का दावा है कि प्रतिकर्मी उत्पादन स्तरों में अंतर्राष्ट्रीय भिन्नताएँ मानव पूँजी में तथा भौतिक एवं सामाजिक अवसंरचना में भिन्नताओं द्वारा निर्धारित की जाती हैं। वैग्स्टाफ़ (2002) लिखते हैं कि वर्ष 1965 व 1990 के बीच पूर्व-एशिया में वार्षिक आर्थिक संवृद्धि के 1.7 प्रतिशत तक का श्रेय सामाजिक अवसंरचना (यथा सार्वजनिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य), में उत्कृष्ट निवेश को दिया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए रिक्त स्थान में अपना उत्तर 50—100 शब्दों में लिखें।)

1) प्राकृतिक संसाधनों के विभिन्न प्रकार बताइए। किसी मानव निर्मित संसाधन का उत्पादन करने के लिए प्रत्येक का एक उदाहरण भी दीजिए।

....

....

....

....

....

2) जीवन के वे पाँच सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू बताइए जो निर्णायक रूप से जल पर निर्भर हैं। इस ग्रह पर उपलब्ध जल के प्रयोग में सतत् वृद्धि का श्रेय किस कारक को दिया जाता है?

....

....

....

....

....

3) 'अवसंरचना' को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है? इसके घटकों के उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

4) प्रो. वी.के.आर.वी. राव द्वारा वर्गीकृत अवसंरचना के नौ घटक बताइए।

....

....

....

....

....

5) भौतिक एवं सामाजिक अवसंरचनाओं के बीच भेद कीजिए।

....

....

....

....

....

6) अंतर्जात संवृद्धि सिद्धांत आर्थिक विकास के मार्ग में मूल संरोधों के रूप में किन्हें मान्यता देता है? इस संबंध में वैयक्तिक योगदाताओं का क्या कहना है?

....

....

....

....

4.4 विकास में अवसंरचना की भूमिका

प्रत्येक राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य अपने जनसमुदाय की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयास करना होता है। इसके लिए, वह उच्चतर सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दरें हासिल करने मात्र से वांछित संसाधन बढ़ा सकता है। इससे उस देश को अपने अवसंरचना विकास में निवेश करने में मदद मिलेगी और फिर वह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के माध्यम से निवेशार्थ अन्य देशों को आकर्षित कर सकेगा। अवसंरचना, तद्नुसार, उच्चतर संवृद्धि हासिल करने के मूल उद्देश्य को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण रूप से सहयोग करती है। भौतिक अवसंरचना आर्थिक संवृद्धि को सीधे सहयोग करती है जबकि सामाजिक अवसंरचना समुदाय के जीवन-गुणवत्ता मानकों को सुधार कर अप्रत्यक्ष रूप से करती है। अधिक विशिष्ट रूप से, विकास में अवसंरचना की भूमिका और योगदान निम्नवत् पहचाने जा सकते हैं –

- प्रथम, भौतिक अवसंरचना न सिर्फ़ उत्पादकता बढ़ाने में योगदान देती है बल्कि मानव पूँजी की संभाव्य क्षमता की प्राप्ति में भी मदद करती है। यह ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करती है जिनमें वह संभाव्यता पूर्णतः फलीभूत हो सके। यह प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से लोगों के जीवन की गुणवत्ता एवं सुरक्षा बढ़ाने की दिशा में भी योगदान देती है।

- दूसरी, अवसंरचना की प्रकृति एवं वृद्धि दर किसी भी देश के विकास-पथ को

इस प्रकार से निर्धारित करती है – (i) उत्पादन का विविधीकरण एवं व्यापार का विस्तार; (ii) जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण; (iii) ग़रीबी का उन्मूलन; तथा (iv) पर्यावरण की दशाओं का संरक्षण एवं सुधार। यह अनुमान किया जाता है कि किसी भी देश के अवसंरचना भंडार में एक प्रतिशत की वृद्धि उस देश के सकल घरेलू उत्पाद में एक प्रतिशत की वृद्धि का कारण बन जाती है (विश्व विकास रिपोर्ट, 1994)। ग्रामीण उद्यम के क्षेत्र में चीन की सफलता में एक महत्त्वपूर्ण अवयव ग्राम स्तर पर परिवहन, दूर संचार एवं बिजली का पैकेज रहा है। 'भौतिक अवसंरचना' के तत्व बाहयताओं की एक शृंखला सृजित करते हैं। उदाहरण के लिए, बिजली का प्रयोग सभी प्रकार की उत्पादन इकाइयों के सक्रिय कायांतरण में मदद करता है; संचार एवं परिवहन का विकास कृषि के व्यापारीकरण एवं व्यापार गतिविधियों हेतु मार्ग प्रशस्त करता है, साथ ही, ये किसी देश के भीतर तमाम क्षेत्रों के बीच श्रमिक-वर्ग की गतिशीलता बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं; आदि।

- तीसरे, शिक्षा और स्वास्थ्य – जो कि सामाजिक अवसंरचना के मुख्य घटक हैं – मानव-पूँजी निर्माण के माध्यम से आर्थिक विकास में योगदान देते हैं। जनसाधारण की वास्तविक शिक्षा (यथा, सर्वतोमुखी प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा) एक कुशल श्रमबल आधार स्थापित करके दीर्घ समयावधियों में ग़रीबी घटाने और आर्थिक विकास की उच्चतर दरें कायम रखने हेतु अत्यावश्यक होती है।

- चौथे, धन और पूँजी बाज़ारों वाली 'वित्तीय अवसंरचना' के घटक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को लघु, मध्यम एवं दीर्घावधि के ऋण प्रदान करते हैं। विशेष रूप से, वाणिज्यिक बैंक बचतें संकलित करते हैं और लघु-अवधि ऋण देते हैं, तो विकास बैंक यही काम कृषि एवं उद्योग को दीर्घावधि ऋण प्रदान करने के लिए करते हैं।

- पाँचवें, गरीब जन-समुदाय की सहायता करने वाली अवसंरचना सेवाएँ पर्यावरणीय धारणीयता में भी योगदान देती हैं। उदाहरण के लिए, स्वच्छ जल एवं स्वच्छता, ऊर्जा के ग़ैर-प्रदूषणकारी स्रोत, ठोस अपशिष्ट का सुरक्षित निपटान, शहरी क्षेत्रों में यातायात का बेहतर प्रबंधन, आदि जनता के सभी वर्गों के लिए पर्यावरण लाभ प्रदान करते हैं। शहरी ग़रीब प्रायः उत्तम अवसंरचना सेवाओं से सीधे लाभान्वित होते हैं क्योंकि वे अस्वच्छ दशाओं, खतरनाक उत्सर्जन एवं दुर्घटना जोखिमों वाली बस्तियों में ही प्रायः संकेंद्रित पाये जाते हैं।

- छठे, अवसंरचना पर्यटन के विकास में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। तथापि, ऐसे क्षेत्रों में जो प्राकृतिक भूदृश्य (यथा, पर्वतीय क्षेत्र, समुद्र तट, वन आदि) हेतु पर्यटकों को आकर्षित करते हैं, भौतिक अवसंरचना का विकास इस प्रकार किए जाने की आवश्यकता होती है कि पर्यावरणीय सरोकार यथोचित रूप से संरक्षित हों।

दूरसंचार एवं भू.उपग्रहों के प्रयोग के क्षेत्रों में आई प्रौद्योगिकीय क्रांति ने जीवन के सभी क्षेत्रों में सूचना-प्रणाली को आमूल.चूल रूप से उन्नत बना दिया है। हमें इसको अवसंरचना के एक महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में भली-भाँति प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा, जलापूर्ति, मल-व्ययन, सड़कों, संरक्षण सेवाओं आदि की समुचित

प्रणालियों के साथ नागरिक जीवन की मूल आवश्यकताओं जैसी अवसंरचना के अनुरक्षण हेतु उपयुक्त सांस्थानिक व्यवस्थाओं के विकास पर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है ताकि अवसंरचना विकास से विधिवत् लाभ उठाया जा सके।

4.5 भारत में अवसंरचनात्मक विकास

परिवहन व्यवस्था अनुपूरक सहयोगी सेवाओं पर निर्भर करती है। वे विभिन्न साधन एवं सेवाएँ जिन पर व्यापक परिवहन व्यवस्था निर्भर करती है, इस प्रकार हैं– रेलमार्ग, सड़कें, पत्तन, अंतर्देशीय जल-परिवहन, तटीय पोत-परिवहन, हवाई पत्तन एवं हवाई कंपनियाँ। भारत में परिवहन के प्रमुख साधन हैं– रेलमार्ग और सड़कें, जो कुल यातायात के 95 प्रतिशत से अधिक का लाना-ले जाना करते हैं। यद्यपि तटीय पोत. परिवहन एवं अंतर्देशीय जल-परिवहन भी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, रेलमार्ग एवं सड़कें देश में परिवहन के पटल पर प्रमुखता से दिखाई पड़ते हैं। विभिन्न परिवहन साधनों के विकास को प्रोत्साहित करना आवश्यक है ताकि वे मिलकर किसी एकीकृत तरीके से एक दक्ष, धारणीय, सुरक्षित एवं क्षेत्रीय रूप से संतुलित परिवहन व्यवस्था की ओर अग्रसर हों। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक दक्ष परिवहन व्यवस्था की आवश्यकता को पहचाने जाने और इस प्रक्रिया में, विश्व बाज़ार में प्रभावपूर्ण ढंग से स्पर्धा करने में देश को सक्षम बनाने के महत्त्व को मन में बैठा दिया है। पर्याप्त एवं भरोसेमंद परिवहन अवसंरचना (एवं सेवाएँ) देश की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाने एवं प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित करने की क्षमता बढ़ाने में योगदान देने के लिए आवश्यक होती है।

सड़क संजाल : भारत में सड़क संजाल में शामिल हैं– (i) राष्ट्रीय राजमार्ग (NH), (ii) राज्यीय राजमार्ग (SH), (iii) मुख्य ज़िला मार्ग (MDRs), तथा (iv) अन्य ज़िला मार्गों व ग्राम मार्गों समेत ग्रामीण मार्ग (RR)। प्रथम प्रकार (NHs), लगभग 66,600 किमी. की कुल लंबाई तक फैले हैं। सड़क संजाल के लगभग 20 प्रतिशत को और सड़क यातायात के 40 प्रतिशत को समाविष्ट करता है। राज्यीय राजमार्ग (लगभग 1.37 लाख किमी. लंबाई के साथ) तथा मुख्य ज़िला मार्ग (लगभग 3 लाख किमी. लंबाई के साथ) मिलकर सड़क परिवहन की द्वितीयक व्यवस्था का गठन करते हैं, जो कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास तथा देश की औद्योगिक संवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। द्वितीयक व्यवस्था भी कुल सड़क यातायात के लगभग 40 प्रतिशत का वहन करती है। ग्रामीण मार्ग (जो 28 लाख किमी. लंबाई का विशाल अवशिष्ट भाग हैं) आर्थिक एवं सामाजिक सेवाओं की सुलभता बढ़ाने के अलावा उच्चतर कृषि आय एवं प्रभावी रोज़गार अवसर पैदा करने के लिए शेष जगत से गाँवों को जोड़ने की क्षमता रखते हैं जो कि अत्यावश्यक है। सड़क संजाल सुधारने के लिए, सुनहरा चतुर्भुज (गोल्डन क्वाड्रिलेटरल–GQ) और उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व-पश्चिम (NS-EW) गलियारे जैसी परियोजनाओं के तेज़ी से क्रियान्वयन के अलावा राष्ट्रीय राजमार्गों, राज्यीय राजमार्गों, आदि के विस्तृत विस्तार में त्रुटियों के निवारण को भी उच्च प्राथमिकता दिए जाने की आवश्यकता है।

पत्तन : पत्तनों अर्थात् बंदरगाहों पर समुद्रीय एवं भू-(सड़क एवं रेल दोनों मिलाकर) परिवहन के बीच अंतराफलक बनता है। भारत की 12 प्रमुख पत्तनों तथा अपनी तटरेखा एवं सागर द्वीपों के एक छोर से दूसरे छोर तक 187 प्रमुखेतर पत्तनों (यथा, अधिसूचित लघु/मध्यवर्ती) के साथ लगभग 7,500 किमी. तटरेखा भी है। भारत में वैश्विक माल व्यापार का लगभग 95 प्रतिशत परिभाण में और 70 प्रतिशत मूल्य में

समुद्रीय मार्ग से ही किया जाता है। समुद्र पार नौभार भारतीय पत्तनों पर व्यापार किए जाने वाले कुल नौभार का लगभग 77 प्रतिशत है।

वायु परिवहन : अंतर्राष्ट्रीय तुलना परिणामों द्वारा सड़क एवं रेलमार्गों में भारत का अपेक्षाकृत उत्कृष्ट कार्य-प्रदर्शन अंशतः इसलिए भी है कि अन्य देश (जैसा कि पूर्व एशिया, 'BRCS' अर्थात् ब्राज़ील, रूस, चीन, दक्षिण अफ्रीका और विशेषकर, विकसित देशों में) वायु परिवहन का काफ़ी अधिक प्रयोग करते हैं। यह साक्ष्य भारत में वायु परिवहन विषयक आँकड़ों से मिलता है जहाँ (वर्ष 2012 में) चीन में 201, उक्त (BRCS) देशों में 333, पूर्व एशिया में 490 तथा विकसित देशों में विशाल 1480 की तुलना में केवल 50 व्यक्ति प्रति 1.000 लोगों ने ही हवाई यात्रा की थी। वायु माल परिवहन के संबंध में, भारत का परिमाण (1,000 टन किमी. प्रति 1,000 लोग के लिहाज से) चीन के 13, उक्त (BRCS) देशों के 18, पूर्व-एशिया के 80 और विकसित देशों में विशाल 111 के मुकाबले मात्र 1.4 (वर्ष 2012 में) ही रहा।

बिजली : बिजली उत्पादन, दक्षता एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए घरों, कार्यालयों एवं उद्योग में प्रयुक्त ऊर्जा का एक अति महत्त्वपूर्ण रूप है। बिजली की सुलभता का अभाव उत्पादन एवं उत्पादकता को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। भारत में, विद्युत् संजाल की सुलभता केवल 75 प्रतिशत लोगों के लिए ही है। इसका तुलना पूर्व-एशियाई देशों के 86 प्रतिशत, उक्त (BRCS) देशों के 94 प्रतिशत और चीन व विकसित देशों के 100 प्रतिशत से की जा सकती है। भारत के स्तर से तुलना किए जाने पर, बिजली का उपभोग प्रतिव्यक्ति चीन में लगभग 5 गुना अधिक पूर्व-एशिया में 6 गुना अधिक, उक्त (BRCS) देशों में 7.5 गुना अधिक और विकसित देशों में 15 गुना अधिक है।

बैंकिंग व्यवस्था : बैंकिंग व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के बैंक शामिल होते हैं, जिनमें अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (SCBs) क्रियाकलापों की पहुँच और पैमाने के लिहाज से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये बैंक आगे सार्वजनिक.क्षेत्र बैंक, विदेशी बैंक, निजी बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं। आईसीआईसीआई बैंक एवं एचडीएफसी बैंक जैसे निजी बैंक निजी स्वामित्व एवं प्रबंधन के अधीन हैं। विदेशी बैंक पूर्णतः स्वामित्व प्राप्त परिदान अथवा भारत से बाहर पंजीकृत जनक बैंक की शाखाओं के माध्यम से काम करते हैं। उनकी संक्रियाएँ आमतौर पर श्रेणी-I शहरों तक ही सीमित रहती हैं।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) : सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की सुलभता उत्पादकता वर्धन के लिए अत्यावश्यक है क्योंकि यहाँ नई पीढ़ी का इस प्रौद्योगिकी के संपर्क में रहने से उन्हें अधिक उत्पादनकारी कार्यों के लिए तैयारी करने में मदद मिलती है। उक्त प्रौद्योगिकी (ICT) की सुलभता प्रति 1,000 व्यक्ति टेलीफोन व इंटरनेट अभिकर्ताओं की संख्या, प्रति 1,000 व्यक्ति कंप्यूटरों की संख्या तथा प्रतिव्यक्ति टेलीफोन, इंटरनेट, आदि पर व्यय के संबंध में मापी जाती है। तुलना के उद्देश्य से (वर्ष 2012 हेतु) नवीनतम उपलब्ध आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत में प्रति 1,000 निवारी 69 सेल फोन हैं। यह संख्या चीन में 810, पूर्व एशियाई देशों में 1,186, उक्त (BRCS) देशों में 1,312 तथा विकसित देशों में 1,153 है।

सामाजिक अवसंरचना : सामाजिक अवसंरचना के दो प्रमुख घटक हैं– शिक्षा और स्वास्थ्य। शिक्षा के विभिन्न स्तर हैं– प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा। स्वास्थ्य अवसंरचना में इनके समानांतर हैं – समुदाय स्वास्थ्य केंद्र (CHCs), प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (PHCs) तथा तृणमूल स्तर पर उपकेंद्र (SCs)।

अप्रैल, 2010 में, भारत में शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम लागू हुआ। इसके साथ ही, प्राथमिक शिक्षा (कक्षा एक से आठ) के 'सार्वभौमीकरण' को एक नई प्रेरणा मिली। यह अधिनियम शिक्षा को 6 से 14 वर्ष आयु तक के प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार बनाता है और प्राथमिक शिक्षा में न्यूनतम मानक विनिर्दिष्ट करता है। यह सभी प्राइवेट स्कूलों में 25 प्रतिशत सीटें गरीब बच्चों के लिए आरक्षित करने की अपेक्षा करता है और चंदा अथवा कैपिटेशन फ़ीस अर्थात् प्रतिव्यक्ति कर या शुल्क का निषेध करता है। हाल के दिनों में उच्चतर शिक्षा की आपूर्ति और सुलभता बढ़ाने पर ज़ोर दिया जा रहा है। परिणामतः, भारत में उच्चतर शिक्षा (डिग्री एवं डिप्लोमा दोनों कार्यक्रम) हेतु 'सकल नामांकन अनुपात' (GER), जिसे 18–23 के पात्र आयु सहगण में जनसमुदाय की प्रतिशतता के रूप में व्यक्त किया जाता है, वर्ष 2007–08 में 13 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2011–12 में 18 प्रतिशत हो गया है। व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण (VET) में ऐसे प्रायोगिक पाठ्यक्रम शामिल होते हैं जिनके माध्यम से कोई भी व्यक्ति किसी व्यवसाय एवं रोज़गार अवसरों से सीधे संबद्ध 'कौशल एवं अनुभव' प्राप्त करता है। ये प्रशिक्षण पाठ्यक्रम अध्ययन के अन्य परंपरागत पाठ्यक्रमों (जैसे बी. एससी., एम.एससी. आदि) के समानांतर ही होते हैं। तथापि, प्रतिवर्ष रोज़गार बाज़ार में प्रवेश करते विशाल श्रमबल और उच्च बेरोज़गारी दरों को ध्यान में रखते हुए, विभिन्न कार्यक्रमों से आने वाले स्नातकों के निम्न रोज़गार-योग्यता स्तरों के अलावा, व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण (VET) (कंप्यूटर से जुड़े पाठ्यक्रमों को छोड़कर) भारत में अल्पविकसित हैं। ब्राज़ील, रूस, भारत, चीन व दक्षिण अफ्रीका अर्थात् ब्रिक्स (BRICS) अर्थव्यवस्थाओं में वर्ष 2013 में व्यावसायिक शिक्षा में नामांकित उच्चतर, माध्यमिक शिक्षा में छात्रों की प्रतिशतता इस प्रकार रही– रूस : 60 प्रतिशत, चीन : 48 प्रतिशत, दक्षिण अफ्रीका : 14 प्रतिशत, ब्राज़ीज : 8 प्रतिशत और भारत : 2 प्रतिशत।

स्वास्थ्य : स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही भारत में प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या संस्थाओं के रूप में एक विशाल स्वास्थ्य अवसंरचना है। इसके अंतर्गत, सरकारी अस्पतालों में आते हैं– स्वास्थ्य परिचर्या केंद्र, ज़िला अस्पताल एवं सामान्य अस्पताल, जबकि निजी अस्पतालों में आते हैं– शहरों के उपचार-गृह एवं अति-विशिष्ट अस्पताल। भारत में, निजी स्वास्थ्य परिचर्या व्यय देश के कुल स्वास्थ्य परिचर्या व्यय के लगभग 74 प्रतिशत के समान है (IBEF, 2017)। अस्पतालों और अस्पताल के बिस्तरों में निजी क्षेत्र का अंश क्रमशः 74 प्रतिशत और 40 प्रतिशत है। स्वास्थ्य परिचर्या हेतु बढ़ती माँग निम्नलिखित कारणों से है– (i) बढ़ती आय एवं क्रय. सामर्थ्य; (ii) बढ़ती वृद्धजनसंख्या;(iii) बदलते रोग प्रतिमान;(iv) चिकित्सा पर्यटन में वृद्धि; (v) बेहतर जागरूकता; तथा (vi) निवारक एवं निदानकारी देखभाल। फिर भी, चिकित्सा व्यावसायियों की औसत संख्या (प्रति 1,000 व्यक्ति) भारत में बहुत कम है, यथा – 0.7 डॉक्टर, 1.5 नर्सें और अस्पताल संख्या 1; जबकि इनके लिए विश्व औसत क्रमशः 2.5, 2.5 और 2.9 है।

4.6 संस्थान एवं शासन

उत्तम शासन दक्ष एवं प्रभावी सह-अस्तित्व वाले सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र द्वारा प्रबंधित संस्थानों के सुव्यवस्थित प्रशासन पर ध्यान केंद्रित करता है। इसके दायरे में आते हैं– प्रतिस्पर्धात्मक कार्य-व्यापार हेतु प्राधार, सरकारी कर्मचारियों की उत्तरदेयता, शासन प्रक्रियाओं में पारदर्शिता, सूचना की स्वतंत्रता, नागरिकों तक पहुँच, नागरिक

समाज हेतु किसी बड़ी भूमिका के माध्यम से जनता द्वारा सहभागितापूर्ण शासन आदि। अवसंरचना प्रदान करने में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की सापेक्ष भूमिका इसीलिए इनमें से प्रत्येक घटक की विकास अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है। सिंचाई एवं जल संसाधन प्रबंधन, ग्रामीण सड़क निर्माण, आर्थिक रूप से अथवा परिस्थितिवश अलाभान्वित क्षेत्रों में विकासात्मक निवेश आदि कुछ क्षेत्रों में अवसंरचना विकास में निवेश हेतु अधिकांश पहल सार्वजनिक क्षेत्र से ही होगी। उपलब्ध सार्वजनिक क्षेत्र संसाधन इसीलिए ऐसे क्षेत्रों की ओर लक्षित किए जाने चाहिए। ठीक इसी कारण, सार्वजनिक-निजी भागीदारियों (PPPs) का अन्य क्षेत्रों में गंभीरता से अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है। भारत में अवसंरचना विकास के समक्ष प्रमुख चुनौतियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

भूमि अधिग्रहण : अवसंरचना विकास के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं, जिनमें 'भूमि अधिग्रहण' अवसंरचना के विकास मार्ग में एक बड़ा अवरोध है। भूमि अधिग्रहण मामलों के कारण अनेक परियोजनाएँ बाधित अथवा विलंबित हुई हैं। ऐसे अनेक कारक हैं जो भूमि अधिग्रहण में विलंब की ओर अग्रसर करते हैं, जैसे वैधानिक समाशोधन, जन. आंदोलन, विवाद आदि, इनके कारण वर्तमान भूमि-प्रयोग प्रावधानों में संशोधन की नितांत आवश्यकता प्रतीत होती है।

विनियामक एवं पर्यावरणीय अनुमतियों में विलंब : निविदा-पूर्व अवस्था से निर्माणोपरांत अवस्था तक, प्रत्येक चरण में परियोजना चक्र के एक छोर से दूसरे छोर तक विभिन्न श्रेणियों की अनुमतियाँ अपेक्षित होती हैं। उदाहरण के लिए, निविदा-पूर्व अवस्था में, निविदाएँ आमंत्रित करने में ही व्यावहारिक विलंब होते हैं। आगे, राष्ट्रीय हरित अधिकरण, पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण प्राधिकरणों आदि सहित केंद्र, राज्य एवं स्थानीय स्तरों पर सरकार के अनेक विभागों से स्वीकृति आवश्यक होती है।

जल से जुड़े मुद्दे : सभी क्षेत्रों में जल हेतु बढ़ती माँग और किसी युक्तियुक्त जल कीमत नीति का अभाव जल हेतु माँग पर प्रतिकूल प्रभाव डालते रहते हैं। भू-जल संसाधनों का व्यापक अवैज्ञानिक प्रयोग तथा राज्यों के बीच विवादों के अप्रभावी निपटान ने विशेष रूप से कृषि क्षेत्र के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

पत्तनों का आधुनिकीकरण : भारतीय पत्तनों के आधुनिकीकरण एवं विकास हेतु अत्याधिक संभावनाओं के बावजूद सरकार प्रमुख पत्तनों तक के आधुनिकीकरण में विफल रही है। वृहद् अंतर्राष्ट्रीय पत्तनों की तुलना में, भारत बेहद पिछड़ा हुआ है। भारतीय पत्तनों की इस स्थिति में योगदान देने वाले कारक हैं— राजनीतिक दबाव (कई बार तटीय क्षेत्रों में रहने वाले 'मत्स्य-पालक' समुदायों के परंपरागत अधिकारों के आधार पर), स्वायत्तता का अभाव, प्रोत्साहनों का अभाव, अत्यधिक अधिकार तंत्रीय तथा पदानुक्रमिक कठोरताएँ।

व्यावसायिक शिक्षा : भारत को वर्तमान श्रम-बाज़ार की आवश्यकताओं के प्रति उन्मुख बनाने के लिए यहाँ व्यावसायिक प्रशिक्षण को विस्तार प्रदान करने की तत्काल आवश्यकता है। जैसे-जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था उत्तरोत्तर ज्ञान-आधारित होती जा रही है, आधुनिक उद्योगों की आवश्यकतापूर्ति करने वाले नए एवं संशोधित पाठ्यक्रम अत्यावश्यक होते जा रहे हैं। तद्नुसार, निजी क्षेत्र को, जो इस लिहाज़ से अधिक अनुकूलनीय होता है, एक वृहत्तर भूमिका निभाने के लिए स्वीकृति एवं समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में, सार्वजनिक-निजी भागीदारी एक उत्तम विकल्प हो

सकता है। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में डिग्री एवं डिप्लोमा कार्यक्रमों के अलावा, लघुत्तर एवं अनौपचारिक प्रशिक्षण सुविधाओं की भी आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) किन पहलुओं में अवसंरचना किसी देश के विकास-पथ को निर्धारित करती है?

....

....

....

....

....

2) 'अवसंरचना सेवाएँ' किस प्रकार पर्यावरणीय धारणीयता हेतु योगदान देने में ग़रीबों की मदद करती हैं?

....

....

....

....

....

3) भारत में निजी स्वास्थ्य परिचर्या व्यय का अनुमानित अंश क्या है? किन कारकों ने देश में निजी स्वास्थ्य परिचर्या के इतने बड़े अंश में योगदान दिया है?

....

....

....

....

....

4) 'उत्तम शासन' के घटक कौन.से हैं?

....

....

....

....

....

5) भारत में उत्तम शासन एवं संस्थानों के लिहाज से 'अवसंरचना विकास' के समक्ष प्रमुख संरोध कौन-से हैं? विशेष रूप से, पत्तनों/हवाई पत्तनों के आधुनिकीकरण के मार्ग में आने वाले किन कारकों की पहचान की गई है?

....

....

....

....

....

4.7 सार-संक्षेप

उन उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को धारणीय रूप से प्रयोग किया जाना आवश्यक है जिनसे मानव निर्मित संसाधनों की अनेक आधुनिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। 'अवसंरचना विकास' के संदर्भ में यह अत्यावश्यक है। प्राकृतिक एवं मानव निर्मित, दोनों संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर अवसंरचना विकास के संदर्भ में यह तो अत्यावश्यक है। किसी भी देश के संसाधनों की उपलब्धता और अवसंरचना विकास के बीच एक गहन संबंध है। अवसंरचना के दो घटक होते हैं– भौतिक अवसंरचना और सामाजिक अवसंरचना। पूर्ववर्ती में आतें हैं– सड़कें, पत्तन, वायु परिवहन, ऊर्जा, बैंकिंग एवं वित्तीय सेवाएँ, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी आदि। परवर्ती में शिक्षा और स्वास्थ्य के दो प्रमुख घटक आते हैं। किसी भी देश में यह आवश्यक है कि वहाँ एक दक्ष शासन-प्रणाली वाला उत्तम सांस्थानिक प्राधार हो ताकि अर्थव्यवस्था के अवसंरचनात्मक विकास को समर्थन मिले। शासन और संस्थान एक व्यापक पदबंध है, जिसमें आते हैं – कानून के शासन हेतु विधिक प्राधार (सरकारी प्रक्रियाओं में सरकारी कर्मचारियों की जवाबदेही और पारदर्शिता समेत), नागरिकों को सूचना का अधिकार, जनसंस्थाओं की सहभागितापूर्ण शासन, आदि। भारत में, अवसंरचना विकास अनेक संरोधों की वजह से पिछड़ा है। इनमें से कुछ हैं– भूमि अधिग्रहण, विनियामक एवं पर्यावरणीय अनुमतियों में विलंब, जल से जुड़े मुद्दे, पत्तनों एवं हवाई पत्तनों का विकास, व्यावसायिक शिक्षा, आदि।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Agrawal, P. (2015). *Infrastructure in India: Challenges and the Way Ahead,* Institute of Economic Growth, IEG Working Paper No. 350.

2) IBEF (2017). Health Care, https://www.ibef.org/download/Healthcare-January-2017. pdf

3) Rajagopalan, R. (2015), *Environmental Studies: from Crisis to Cure* (No. Ed. 3). Oxford University Press.

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) वायु, कोयला, खनिज, प्राकृतिक गैस, तेल, सूर्य प्रकाश एवं जल। तालिका 4.1 देखें और उत्तर दें।

2) आर्थिक संवृद्धि, पर्यावरणीय स्थिरता, जैव-विविधता संरक्षण, खाद्य सुरक्षा एवं स्वास्थ्य परिचर्या। कारक हैं– जनसंख्या वृद्धि, वर्धमान सिंचाई आवश्यकताएँ, तीव्र शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा उत्पादन एवं उपभोग में वृद्धि।

3) ऐसे मानव निर्मित संसाधन जो समुदाय एवं आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं (यथा, कागज़, पुस्तकें, अर्ध-संचालक, अस्पताल, सड़कें व पुल, शैक्षणिक एवं अनुसंधान संस्थान), संयुक्त रूप से 'अवसंरचना' कहलाते हैं।

4) परिवहन, संचार, ऊर्जा, माध्यमिक वस्तु-उत्पादन, मानव निर्मित उत्पादक, प्राकृतिक संसाधन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सूचना प्रणालियाँ, वित्त एवं बैंकिंग तथा सभी मानव संसाधन विकास घटक।

5) भौतिक अवसंरचना में आते हैं– बिजली, सिंचाई, परिवहन तथा दूरसंचार। सामाजिक अवसंरचना में आते हैं– शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सीय देखभाल, पोषण, आवास एवं जलापूर्ति।

6) निकृष्ट भौतिक अवसंरचना तथा मानव पूँजी संरोध (उपभाग 4.3.2)।

बोध प्रश्न 2

1) इनके रूप में – (i) उत्पादन का विविधीकरण एवं व्यापार का विस्तार; (ii) जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण; (iii) ग़रीबी का उन्मूलन; तथा पर्यावरण की दशाओं का संरक्षण एवं सुधार।

2) स्वच्छ जल एवं स्वच्छता, ऊर्जा के ग़ैर-प्रदूषणकारी स्रोत, ठोस अपशिष्ट का सुरक्षित निपटान, शहरी क्षेत्रों में यातायात का बेहतर प्रबंधन, आदि पर्यावरणीय लाभ प्रदान करते हैं और साथ ही, पर्यावरणीय गुणवत्ता कायम रखने में भी योगदान देते हैं।

3) यह कुल व्यय का लगभग 74 प्रतिशत है। इसमें योगदायीकारक हैं– बढ़ती आय और व्यय वहन क्षमता; बढ़ती वृद्ध जनसंख्या; बदलते रोग प्रतिमान; चिकित्सा पर्यटन में उछाल; बेहतर जागरूकता तथा निवारक एवं निदानकारी देखभाल।

4) प्रतिस्पर्धापूर्वक कार्य हेतु विधिक प्राधार, सरकारी कर्मचारियों की जवाबदेही, शासन प्रक्रियाओं में पारदर्शिता, नागरिकों को सूचना सुलभता की स्वतंत्रता, नागरिक समाज की एक महती भूमिका के माध्यम से जनता द्वारा सहभागितापूर्ण शासन, आदि।

5) भूमि अधिग्रहण, विनियामक एवं पर्यावरणीय अनुमतियों में विलंब, राज्यों के बीच जल से जुड़े मुद्दों का धीमा निपटान, समुद्री पत्तनों एवं हवाई पत्तनों का आधुनिकीकरण तथा व्यावसायिक शिक्षा। संरोध अर्थात् अवरोधक तत्त्व हैं– राजनीतिक दबाव, स्वायत्तता का अभाव, प्रोत्साहनों का अभाव, अत्यधिक लालफ़ीताशाही तथा पदानुक्रमिक कठोरताएँ।

इकाई 5 जनांकिकीय अभिलक्षण*

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 विषय प्रवेश

5.2 भारत की जनसंख्या : आकार एवं वृद्धि

5.2.1 जनसंख्या वृद्धि

5.3 जन्म-मरण के आँकड़े

5.3.1 प्रजनन दरें

5.3.2 मर्त्यता दरें

5.4 जनांकिकीय संक्रमण

5.4.1 शहरीकरण

5.4.2 लिंग अनुपात

5.4.3 जनसंख्या पिरामिड

5.4.4 निर्भरता अनुपात

5.5 जनसंख्या वृद्धता

5.5.1 जनांकिकीय लाभांश

5.5.2 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (NPP)

5.6 सार-संक्षेप

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- 'जनसंख्या घनत्व' (DoP) और 'जनसंख्या वृद्धि' (GoP) की संकल्पनाएँ स्पष्ट कर सकें;
- 'जन्म-मरण के आँकड़े' संबंधी मूल जनांकिकीय समीकरण को उसके मुख्य अवयवों के विवरण के साथ बता सकें;
- विभिन्न प्रकार की 'प्रजनन' एवं 'मर्त्यता' दरें, उनके गुण-दोषों के साथ स्पष्ट कर सकें;
- भारत में 'जनांकिकीय संक्रमण' की प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकें;
- 'जनसंख्या वृद्धता' एवं 'जनांकिकीय लाभांश' की संकल्पनाओं का ख़ाका खींच सकें; तथा
- राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 के उद्देश्य एवं उपलब्धियाँ इंगित कर सकें।

*प्रो. सुमानेश दत्ता, असम विश्वविद्यालय

5.1 विषय प्रवेश

जनांकिकी का अर्थ है – 'मानव जनसंख्या का उसके आकार, संरचना एवं विकास के साथ वैज्ञानिक अध्ययन।' जनांकिकी का अध्ययन इसलिए आवश्यक है कि अपनी संरचना, संयोजन एवं संवृद्धि के लिहाज से मानव जनसंख्या आर्थिक संवृद्धि एवं विकास से महत्त्वपूर्ण संबद्धता दर्शाती है। जनसंख्या ही विकास गतिविधियों के लिए श्रमापूर्ति का एक मात्र एवं अंतिम स्रोत होती है। यह विकास की अंतिम लाभार्थी भी होती है। अतः, जनसंख्या आर्थिक विकास का साधन भी है और साध्य भी। भारत में, जनांकिकीय आँकड़े जनगणना की रिपोर्टों में उपलब्ध होते हैं, जो कि दस वर्षों में एक बार नियमित रूप से कराई जाती है। इस प्रकार की अंतिम जनगणना वर्ष 2011 में करवाई गई थी। प्रस्तुत इकाई भारत के महत्त्वपूर्ण जनांकिकीय अभिलक्षणों की ही गहराई से समीक्षा कर रही है।

5.2 भारत की जनसंख्या : आकार एवं वृद्धि

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की जनसंख्या 121.1 करोड़ या 1211 मिलियन थी। मिलियन में ही प्रस्तुत करने पर, यह वर्ष 2001 में 1029, 1991 में 846, 1981 में 683, 1971 में 548, 1961 में 439 और 1951 में 361 थी। वर्तमान में, भारत चीन के बाद दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार (वर्ष 2016 में), चीन की जनसंख्या 1359 मिलियन और भारत की जनसंख्या 1324 मिलियन अर्थात् क्रमशः 135.9 करोड़ और 132.4 करोड़ है। तथापि, वर्ग किलोमीटर में भारत का भौगोलिक क्षेत्र चीन के भौगोलिक क्षेत्र से काफी कम है। वह जनांकिकीय मापदंड जो भू-क्षेत्र के प्रति वर्ग किलोमीटर लोगों की संख्या का लेखा-जोखा करता है, जनसंख्या घनत्व (DoP) कहलाता है। इसे निम्नवत् मापा जाता है–

$$\text{DoP} = \frac{\text{किसी भौगोलिक क्षेत्र की जनसंख्या}}{\text{उस भौगोलिक क्षेत्र का वर्ग किमी. में भू-क्षेत्र}}$$

वर्ष 2011 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, भारत का जनसंख्या घनत्व 382 है। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2016 हेतु, भारत का जनसंख्या घनत्व 445 है, चीन का 147, अमेरिका का 35 और ऑस्ट्रेलिया का मात्र 3।

ये आँकड़े दर्शाते हैं कि इन देशों के बीच भारत की स्थिति सर्वाधिक सघन रूप से जनाकीर्ण देश की है। ये आँकड़े यह भी दर्शाते हैं कि विश्व की जनसंख्या विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से वितरित नहीं है। यह बात भारत के भीतर भी सिद्ध होती है। भारत के कुछ राज्य घने बसे हैं जबकि कुछ में जनसंख्या अपेक्षाकृत विरल है। बिहार (1106), पश्चिम बंगाल (1028) और उत्तर प्रदेश (829) राज्य घने बसे हैं। दूसरी ओर, हिमाचल प्रदेश (123), सिक्किम (86), मिज़ोरम (52) और अरुणाचल प्रदेश (17) राज्य विरल रूप से बसे हैं। मोटे तौर पर कहें तो, पर्वतों, पहाड़ियों, रेगिस्तान तथा वृहद् गहन वन वाले क्षेत्र विरल रूप से बसे हैं जबकि उर्वर भूमि, उद्योग, बेहतर परिवहन सुविधाओं आदि वाले क्षेत्र सघन रूप से बसे हैं।

5.2.1 जनसंख्या वृद्धि

किसी भी दिए गए स्थान की जनसंख्या का आकार समय के साथ दो माध्यमों से बदलता है – (i) प्रवास, और (ii) प्राकृतिक कारक, जैसे जन्म और मृत्यु। कालांतर में

जनसंख्या के आकार में परिवर्तन, जो कि उसके आधार वर्ष मान के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है, जनसंख्या वृद्धि कहलाता है। तद्नुसार, जनसंख्या वृद्धि की दर (अथवा केवल वृद्धि दर) निम्नवत् आकलित की जाती है– जनसंख्या वृद्धि की दर (RGP) = $\frac{P_{t+1}-P_t}{P_t} \times 100$, जहाँ P_t समयबिंदु 't' पर उच्चतम जनसंख्या का आधार है और P_{t+1} समयबिंदु '$t + 1$' पर उच्चतम जनसंख्या का आकार है। जनसंख्या की वृद्धि दर प्रतिशत में व्यक्त की जाती है।

वर्ष 2001 में, भारत की जनसंख्या 102.85 करोड़ थी; वर्ष 2011 में यह बढ़कर 121.06 करोड़ हो गई। वर्ष 2001 से 2011 की अवधि में जनसंख्या की वृद्धि दर 17.7 (अथवा 18) रही। तथापि, जब जनसंख्या वृद्धि की दशकीय दर 10 से विभाजित की जाती है तो हमें जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त होती है जो वर्तमान उदाहरण में 1.8 प्रतिशत है। भारत की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 1951.61 में 22 प्रतिशत से बढ़कर 1961.71 में 25 प्रतिशत हो गई। उसके बाद, पहले तो यह अति मंथर गति से स्थिरतापूर्वक, परंतु वर्ष 1991 से त्वरित दर से गिरती रही है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, जनसंख्या वृद्धि दर भारत के राज्यों में एकसमान नहीं रही। कुछ राज्यों ने राष्ट्रीय वृद्धि दर की तुलना में उच्चतर औसत वार्षिक वृद्धि दर दर्शाई है। उदाहरण के लिए, मेघालय (2.8 प्रतिशत), बिहार (2.6 प्रतिशत), अरुणाचल प्रदेश (2.6 प्रतिशत), जम्मू एवं कश्मीर (2.4 प्रतिशत), राजस्थान (2.2) आदि। निम्नवत् वृद्धि दर नागालैंड में रही (–0.6 प्रतिशत)।

5.3 जन्म-मरण के आँकड़े

जनसंख्या गतिकी को समझने के लिए जन्म (प्रजनन) दर, मृत्यु (मर्त्यता) दर और प्रवास प्रतिमान का उनकी मापन विधियों के साथ एक वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करना आवश्यक है। मूल जनांकिकीय समीकरण निम्नवत् है –

$$P_{t+1} - P_t = \text{(जन्म संख्या – मृत्यु संख्या) + (आगमन – बहिर्गमन)}$$

यथा, जनसंख्या परिवर्तन = प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धि + निवल प्रवास

जन्म-मरण के आँकड़ों में दो जनसांख्यिकी मूल सिद्धांत होते हैं, यथा– जन्म संख्या (प्रजनन) एवं मृत्यु संख्या (मर्त्यता)। इसका संबंध प्रवास, विवाह, दीर्घायु, आदि से भी होता है। इस भाग में हम चार प्रकार की प्रजनन दरों और चार ही प्रकार की मर्त्यता दरों पर चर्चा करेंगे।

5.3.1 प्रजनन दरें

चार महत्त्वपूर्ण प्रकार के प्रजनन मापदंड इस प्रकार हैं – (i) अशोधित जन्म दर (CBR), (ii) सामान्य प्रजनन दर (GFR), (iii) आयु-विशिष्ट प्रजनन दर (ASFR), तथा (iv) कुल प्रजनन दर (TFR)।

अशोधित जन्म दर (CBR) : किसी भी वर्ष (अथवा समय) में, किसी क्षेत्र में अशोधित जन्म दर (CBR) को उस वर्ष अथवा समय उस क्षेत्र में जीवित जन्म संख्या प्रति हज़ार जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है।

तद्नुसार, CBR = $\frac{B}{P} \times 1000$, जहाँ B किसी समय-प्राधार (सामान्यतः कोई पूरा वर्ष) के भीतर किसी परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में पंजीकृत कुल जीवित जन्मसंख्या है और

P परिभाषित स्थान व समय में वर्ष-मध्य जनसंख्या है। भारत में, उक्त दर (CBR) का रुझान दर्शाता है कि यह दर 1941.51 में 40 से घटकर 1991-2001 में लगभग 26 और वर्ष 2011 में लगभग 22 रह गई। देश में इस दर में गिरावट हेतु मुख्य कारण हैं – (i) सरकार द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन, (ii) साक्षरता का प्रसार एवं लोगों के शिक्षा-स्तर में वृद्धि, (iii) 'छोटा परिवार' आदर्श अपनाने के लाभों के प्रति लोगों के बीच जागरूकता बढ़ाना, (iv) सवेतन कार्य में महिलाओं की अधिक भागीदारी, तथा (v) महिलाओं के लिए जनन एवं पालन-पोषण की अवसर लागत का बढ़ना। भारत में उक्त दर (CBR) की तुलना अमेरिका में लगभग 14, चीन में 12 और जापान में 9 से की जा सकती है। इस प्रकार, विकसित देशों की तुलना में भारत की यह दर (CBR) ऊँची है। इसके लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक निम्नवत् हैं – (i) उच्च शिशु मर्त्यता दर; (ii) बेटा जनने की उच्च अधिमानता; (iii) परंपरागत कृषिक समाज में बच्चों का उच्च आर्थिक मूल्य; (iv) परिवार नियोजन एवं गर्भ निरोधक विषयक जानकारी का अभाव; (v) अल्पायु में विवाह एवं बहु-विवाह प्रथा; (vi) माता-पिता की निम्न शिक्षा; तथा (vii) धार्मिक मान्यताएँ एवं प्रथाएँ।

अशोधित जन्म दर के गुण-दोष : अशोषित जन्मदर (CBR) समझने और आकलन करने में सरल है। इसकी एक ही क्षेत्र के दो दूरस्थ प्रायः समयबिंदुओं पर जन्म दरों में युक्तियुक्त रूप से तुलना की जा सकती है, क्योंकि, जन-समुदाय का आयु एवं लिंग वितरण आमतौर पर अल्पावधि में नहीं बदलता। उक्त दर (CBR) कुल जनसंख्या को विचारार्थ लेती है, जिसमें से लगभग आधे पुरुष होते हैं जो कि प्रसूति में सीधे शामिल नहीं होते। इसके अलावा, महिला जनसंख्या का मात्र एक सीमित भाग (15–49 वर्ष) ही जनन में सक्षम होता है।

सामान्य प्रजनन दर (GFR) : यह दर (GFR) जनन आयु (15–49 वर्ष) की प्रति एक हज़ार महिलाओं के अनुसार जीवित जन्मों का अनुपात होती है। इसे निम्नवत् आकलित किया जाता है – $GFR = \frac{B}{\sum_{x=15}^{x=49} {}^{f}P_x} \times 1000$, जहाँ B कुल जीवित जन्म संख्या (CBR के अनुसार) और $\sum_{x=15}^{x=49} {}^{f}P_x$ आयु वर्ग 15–49 में महिलाओं की वर्ष. मध्य जनसंख्या है, जिन्हें आमतौर पर महिलाओं की 'जनन-आयु' की दो सीमाओं के रूप में देखा जाता है।

सामान्य प्रजनन दर के गुण-दोष : यह दर (GFR) उक्त दर (CBR) के उदाहरण में अपनाए गए अशोधित दृष्टिकोण को पराजित करती है। यह अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि यह केवल जनन आयु वाली महिला जनसंख्या के संदर्भ में कुल जन्मसंख्या पर विचार करती है। ठण्डे, शीतोष्ण एवं गर्म जलवायु क्षेत्रों से आने वाली लड़कियों की यौवनारंभ आयु एकसमान नहीं होती। अतः, उक्त सूत्र प्रयोग करने से पूर्व महिलाओं की जनन आयु की दो सीमाओं के संबंध में एक विवेकसम्मत निर्णय लिया जाना आवश्यक होता है। इसके अलावा, प्रजनन शक्ति आयु के साथ बदलती है, यथा प्रजनन-शक्ति अवधि की दो सीमाओं के भीतर हो। इसी कारण, आयु-वर्ग 15–49 के समग्र महिला वर्ग पर एक साथ विचार किया जाना अनुपयुक्त होगा।

आयु-विशिष्ट प्रजनन दर (ASFR) : किसी भी आयु.वर्ग के लिए यह दर (ASFR) जीवित जन्म संख्या प्रति स्त्री और किसी आयु-वर्ग विशेष की वर्ष.मध्य स्त्री जनसंख्या का अनुपात होता है। यह दर (ASFR), तद्नुसार, निम्नवत् दर्शाई जाती है– ASFR $= \frac{B_x}{{}^{f}P_x} \times 1000$ जहाँ B_x, x से $x+1$ आयु-वर्ग में स्त्रियों द्वारा दी गई जीवित जन्म

संख्या है और ${}^{f}P_{x}$ x आयु-वर्ग में स्त्री जनसंख्या का औसत आकार है। उक्त दर (ASFR) प्रायः 15 से 49 आयु के प्रत्येक एकल वर्ष हेतु अथवा 15–19, 20–24,.... जैसे किन्हीं आयु-समूहों के लिए आकलित की जाती है। उपर्युक्त सूत्र x आयु की स्त्रियों की आयु-विशिष्ट प्रजनन दर (ASFR) दर्शाता है। अंश और हर में आवश्यक किंचित परिवर्तन पर हम दो आयु-सीमाओं के बीच उक्त दर (ASFR) ज्ञात कर सकते हैं।

गुण और दोष : चूँकि यह आयु-विशिष्ट होती है, 15–49 वर्ष के भीतर विभिन्न आयु-समूहों में आने वाली स्त्रियों की प्रजनन दर का ध्यान रखा जाता है। आमतौर पर उक्त दर (ASFR) यौवनारंभ के शुरुआती वर्षों में कम ही होती है, यह 30 के आस-पास तक तेज़ी से बढ़ती है और फिर 49 वर्ष की आयु के आस-पास लगभग शून्य तक गिर जाती है। जनन आयु से आने वाली सभी स्त्रियों द्वारा जन्म देना आवश्यक नहीं होता। केवल जो उस आयु-समूह में विवाहित हैं और जननक्षम हैं, प्रायः वही ऐसा करती हैं। उक्त दर (ASFR) जनन आयु-समूह में कुछ महिलाओं की वैवाहिक प्रस्थिति के साथ.साथ बध्यता घटक को भी अनदेखा करती है।

कुल प्रजनन दर (TFR) : यह दर दो मान्यताओं के अंतर्गत किसी जन-समुदाय में प्रजनन शक्ति का एक सामान्य सूचकांक प्रस्तुत करती है– (i) प्रत्येक स्त्री जो जनन आयु में प्रवेश करती है, प्रत्येक आयु हेतु उक्त दर (ASFR) के अनुसार जीवित जन्म देती है, और (ii) कोई भी स्त्री जननीय अवधि पूर्ति से पहले देह नहीं त्यागती अर्थात् मरती नहीं है। कुल प्रजनन दर इस सूत्र से आकलित की जाती है TFR = $\sum_{x=15}^{x=49} \frac{B_x}{{}_{49}^{f}P_{15}}$, जो कि आयु-विशिष्ट प्रजनन दरों का योग मात्र है। इस सूत्र के अनुसार, यदि 1000 स्त्रियाँ एक साथ जनन आयु में प्रवेश करती हैं तो उक्त दर (TFR) इन स्त्रियों द्वारा अपनी जननीय अवधि से निकास के समय से पूर्व जीवित जन्म संख्या दर्शाएगी। यदि गुणक 1000 हटा दिया जाए तो यह दर (TFR) अपनी जननीय अवस्था के अंत में माँओं द्वारा जनित शिशुओं की औसत संख्या मात्र ही दर्शाएगी। जब उक्त दरें (ASFRs) आयु-समूहों 15–19, 20–24,....45–49 के लिए आकलित की जाती हैं तो यह दर निम्नवत् परिकलित की जाती है– TFR = $\frac{5 \text{ x } \sum_{15}^{49} ASFR}{1000}$.

गुण और दोष : यह दर (TFR) जन्मदर का सर्वाधिक प्रयुक्त सूचकांक है। यह स्त्री जनसंख्या की समग्र प्रजनन अवधि को ध्यान में रखती है और साथ ही, विशिष्ट आयु. समूहों से आने वाली स्त्रियों की प्रजनन शक्ति को भी। यह दर (TFR) इस कारण कम सटीक होती है कि हर स्त्री 15 वर्ष की आयु में अपना प्रजनन काल आरंभ नहीं करती और कुछ शायद बच्चे जन्में ही नहीं।

वर्ष 1971 में, भारत की कुल प्रजनन दर (TFR) 5.2 आकलित की गई; परंतु वर्ष 1991 में यह गिरकर 3.6 और फिर वर्ष 2002 में मात्र 3.0 रह गई। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट, 2001 के अनुसार, विश्व जनसंख्या की कुल प्रजनन दर वर्ष 1975 में 4.5 से गिरकर वर्ष 1995-2000 में मात्र 2.8 रह गई। भारत में, यह दर (TFR) वर्ष 2002 में 3.0 से गिरकर वर्ष 2012 में 2.4 रह गई। नवीनतम उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2013 में यह दर 2.3 रही। इस दर (TFR) का इतना उच्च मान होने का अर्थ है कि वर्तमान अभिभावी आयु-विशिष्ट प्रजनन दरों पर

भारत में कोई भी स्त्री अपना प्रजनन जीवन पूर्ण होने से पूर्व जनसंख्या में औसतन 2.4 बच्चों का इज़ाफ़ा कर देती है। यद्यपि उक्त दर (TFR) 40 वर्षों से भी अधिक अवधि में वर्ष 2013 के दौरान 2.3 के स्तर पर आ गई है, यह अब भी काफ़ी ऊँची है और पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन (यथा, TFR = 2.1) से 0.2 अधिक है, जो कि एक गंभीर चिंता का विषय है।

5.3.2 मर्त्यता दरें

इस उपभाग में हम चार मर्त्यता दरों पर चर्चा करेंगे, यथा- अशोधित मृत्यु दर (CDR), आयु-विशिष्ट मृत्यु दर (ASDR), शिशु मर्त्यता दर (IMR) तथा जन्म के समय जीवन. प्रत्याशा। किसी क्षेत्र में किसी भी वर्ष में, प्रथम (CDR) अर्थात् अशोधित मर्त्यता दर (CMR) के उस वर्ष में मृत्यु संख्या प्रति हज़ार जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है, यथा $CDR = \frac{D}{P} \times 1000$, जहाँ D किसी समयावधि (प्रायः एक कैलेण्डर वर्ष) में किसी परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र (अथवा किसी सामानिक समूह) में अंकित सभी कारणों से मौतों की कुल संख्या को इंगित करता है और P परिभाषित स्थान एवं समय में वर्ष.मध्य जनसंख्या है।

गुण-दोष : यह दर (CDR) सर्वाधिक प्रयुक्त एवं सर्वाधिक सरलता से आकलित किया एवं समझा जाने वाला मर्त्यता सूचकांक होती है। यह विचाराधीन समग्र जनसंख्या में अभिभावी मर्त्यता दशा की एक सामान्य तस्वीर प्रस्तुत करती है। तथापि, यह इस अवधारणा पर आधारित होती है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए मृत्यु का जोखिम समान होता है। इसी सीमा के कारण इस दर (CDR) के आधार पर दो देशों, दो क्षेत्रों अथवा दो समुदायों की तुलना करना वांछित नहीं होता। भारत में उक्त दर (CDR) वर्ष 1911—21 के दौरान 49 प्रतिवर्ष प्रति हज़ार के उच्च दर से वर्ष 2001 में 9, वर्ष 2006 में 8 और फिर वर्ष 2012 में घटकर 7 रह गई है।

आयु-विशिष्ट मृत्यु दर (ASDR) : मृत्यु हर आयु में होती है और मौत का जोखिम आयु के साथ बदलता रहता है। अतएव, आयु-विशिष्ट मृत्यु दरें (ASDR) आकलित कर विभिन्न आयु अथवा आयु समूहों) में जनसंख्या हेतु मृत्यु दरों का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। इसे निम्नवत् आकलित किया जाता है $ASDR = \frac{nDx}{nPx} \times 1000$, जहाँ ${}_nD_x$ आयु-वर्ग x से $x+n-1$ में लोगों की दर्ज़ मृत्यु संख्या है और ${}_nP_x$ इस आयु. समूह का वर्ष.मध्य जनसंख्या आकार है। जब n=1 तो ASDR वार्षिक आयु.विशिष्ट मृत्यु दर हो जाती है और इस प्रकार दर्शाई जाती है – $AASDR = \frac{D_x}{P_x} \times 1000$.

गुण-दोष : उक्त दर (ASDR) दो जनसंख्या समूहों के बीच तुलना अपेक्षाकृत अधिक सार्थक रूप से करती है। यह बताती है कि क्या किसी विशिष्ट आयु-समूह में लोग कुल जनसंख्या के अनुसार ही मरने की समान संभावना रखते हैं। तथापि, आयु. विशिष्ट मृत्यु दर का आकलन तब तक मुश्किल होता है जब तक हमें मृतक की आयु सही-सही न पता हो। त्रुटियों की नितांत संभावना होती है।

शिशु मर्त्यता दर : बच्चों के समक्ष वयस्कों की तुलना में मर्त्यता का खतरा अधिक देखा जाता है, विशेषकर जीवन के प्रथम वर्ष में। शिशुओं की स्वास्थ्य प्रस्थिति (यथा, उनकी जो 12 माह से कम आयु के हैं) किसी क्षेत्र में उपलब्ध स्वास्थ्य परिचर्या एवं चिकित्सा सुविधाओं के स्तर का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक होती है। शिशु मर्त्यता पर (IMR) को किसी क्षेत्र में किसी भी वर्ष में 'प्रति हज़ार जीवित जन्म' एक वर्ष से कम आयु के मरने वाले शिशुओं की संख्या के रूप में परिभाषित की जाती है। यथा,

IMR $= \frac{1D_0}{1B_0} \times 1000$ जहाँ ${}_1D_0$ का अर्थ है – 1 वर्ष से कम आयु (< 1 वर्ष) की शिशु मृत्यु संख्या तथा ${}_1B_0$ का अर्थ है– उसी वर्ष एवं क्षेत्र में जीवित जन्मों की संख्या। भारत में, उक्त दर (IMR) वर्ष 1971 में लगभग 129 थी। वर्ष 2006 में यह घटकर 57 और वर्ष 2012 में और घटकर मात्र 42 रह गई है। यह प्रत्येक राज्य में भिन्न होती है। वर्ष 2012 में निम्न छोर पर रहे केरल (12), मणिपुर (10) और गोवा (10) तथा ऊपर के छोर पर रहे, मध्य प्रदेश (56), असम (55), ओडिशा (53) तथा उत्तर प्रदेश (53)।

जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा – यह किसी नवजात शिशु के उन वर्षों की औसत संख्या है जिनमें उससे वर्तमान मर्त्यता दशाओं में जीवित रहने की प्रत्याशा की जाती है। जीवन की प्रत्याशा किसी भी आयु में आकलित की जा सकती है। उदाहरण के लिए, आयु पाँच में जीवन की प्रत्याशा उन वर्षों की औसत संख्या होगी जिनमें आज किसी 5 वर्षीय बच्चे के जीवित रहने की आशा की जाती है। भारत में जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा वर्ष 1951-61 की अवधि में 41 वर्ष से बढ़कर वर्ष 1981-85 में 56 वर्ष हो गई और आगे बढ़कर 1992-96 में 61 वर्ष एवं वर्ष 2006-10 में 66 वर्ष हो गई। भारत के प्रमुख राज्यों में यह (वर्ष 2006-10 में) केरल में उच्चतम (74) से असम में निम्नतम (62) तक भिन्न-भिन्न स्तरों पर रही है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) 'जनसंख्या घनत्व' कैसे ज्ञात किया जाता है? भारत का वर्तमान जनसंख्या घनत्व क्या है और इसकी तुलना अन्य देशों के जनसंख्या घनत्व से किस प्रकार की जाती है?

....

....

....

....

....

2) भारत में राज्यों के बीच जनसंख्या घनत्व (DoP) किस प्रकार वितरित है?

....

....

....

....

....

....

3) अशोधित जन्म दर (CBR) को परिभाषित करें। भारत में इसका क्या रुझान रहा है? भारत की इस दर (CBR) की तुलना अन्य देशों की इस दर से कीजिए।

....

....

....

....

....

....

4) सामान्य प्रजनन दर (GFR) अशोधित जन्म दर (CBR) से किस प्रकार श्रेष्ठ है? इसके बावजूद प्रथम (GFR) की क्या सीमा है?

....

....

....

....

....

....

5) कुल प्रजनन दर (TFR) किस प्रकार आकलित की जाती है? यह अन्य सभी प्रजनन दरों से किस प्रकार श्रेष्ठ है? 'पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन' का क्या महत्त्व है?

....

....

....

....

....

6) शिशु मर्त्यता दर (IMR) को परिभाषित करें। इसका क्या महत्त्व है?

....

....

....

....

5.4 जनांकिकीय संक्रमण

जनांकिकीय संक्रमण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनेक देश उच्च जन्म एवं मृत्यु दरों की स्थिति से दोनों ही निम्न दरों की ओर अग्रसर होते हैं। अल्प-विकसित देश (LDCs) विशिष्ट रूप से उच्च जन्म एवं मृत्यु दरें दर्शाते हैं क्योंकि मंथर गति से बढ़ते विकास के साथ, मृत्यु दर में जन्म दर की अपेक्षा ज़ल्दी गिरने की प्रवृत्ति आ जाती है जो तीव्र जनसंख्या वृद्धि में परिणत होती है। उन्नत देश निम्न जन्म एवं मृत्यु दरें और स्वाभाविक वृद्धि की एक निम्न अथवा ऋणात्मक दर भी दिखा सकते हैं। जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धांत पश्चिमी देशों के वास्तविक जनांकिकीय अनुभव पर आधारित है। सी.पी.ब्लैकर (1945) ने जनांकिकीय संक्रमण की पाँच विशिष्ट अवस्थाएँ

पहचानीं, जो कि निम्नवत् हैं –

1) उच्च अचल अवस्था, जो कि उच्च जन्म दरों एवं उच्च मृत्यु दरों से अभिलक्षित होती है।

2) आरंभिक विस्तारण अवस्था, जो कि घटती मर्त्यता के साथ, कुछ समय के विलंब के साथ गिरती जन्म दरों में अभिलक्षित होती है।

3) परवर्ती विस्तारण अवस्था, जो कि गिरती जन्म दरों परंतु तेज़ी से घटती मर्त्यता से अभिलक्षित होती है।

4) निम्न अचल अवस्था, जनसंख्या की वह अवस्था जो समान रूप से निम्न मर्त्यता द्वारा संतुलित निम्न जन्म दरों से अभिलक्षित होती है।

5) निम्न मर्त्यता किंतु जन्मों से अधिक मौतों वाली जनसंख्या की ह्रासमान अवस्था।

वर्ष 1901-2011 की अवधि में भारत के अशोधित जन्म दर (CBR) एवं अशोधित मृत्यु दर (CDR) हेतु आँकड़े तालिका 5.1 में दिए गए हैं। ये आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत में वर्ष 1931 से ही मृत्यु दर में तेज़ी से गिरावट देखी जाती रही है। दूसरी ओर, जन्म दर वर्ष 1901 से 1951 की अवधि में बहुत ऊँची बनी रही। यह, इसीलिए, जनसंख्या की 'आरंभिक विस्तारण अवस्था' थी; यथा, भारत में जनांकिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था। वर्ष 1981 से जन्म दर और मृत्यु दर, दोनों तेज़ी से गिरती रही हैं जो यह दर्शाता है कि भारत अब जनांकिकीय संक्रमण की 'परवर्ती विस्तारण अवस्था' में है। वर्ष 2010-15 में, विश्व-स्तर पर, 83 देश पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन शक्ति से नीचे अर्थात् जनसंख्या की ऋणात्मक स्वाभाविक वृद्धि दर पर होने का अनुभव कर रहे थे। इस प्रकार, अंतःप्रवसन सम्मिलित करने के बावजूद, जापान (– 0.1), स्पेन (– 0.2), ग्रीस (– 0.4), रोमानिया (–0.8), लियुआनिया (–1.6), आदि देशों ने जनसंख्या की ऋणात्मक औसत वार्षिक वृद्धि दर दर्ज़ की है। यह दर्शाता है कि उनके जनांकिकीय संक्रमण की वर्तमान अवस्था पाँचवीं अवस्था कही जाएगी। कुछ प्रमुख जनांकिकीय अभिलक्षण, जिनमें अर्थव्यवस्थाओं को जनांकिकीय संक्रमण की प्रक्रिया के दौरान महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का अनुभव होगा, निम्नवत् हैं– (i) शहरीकरण; (ii) बदलता लिंगानुपात; (iii) जनसंख्या पिरामिड की संरचना; और (iv) निर्भरता अनुपात।

तालिका 5.1 : भारत में CBR व CDR – 1901 से 2011

वर्ष	CBR	CDR
1901	46	44
1911	49	43
1921	48	47
1931	46	36
1941	45	31
1951	40	27
1961	41	23
1971	41	19

1981	37	15
1991	33	11
2001	25	9
2011	22	7

स्रोत : स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण रिपोर्ट, 2013

5.4.1 शहरीकरण

शहरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे समाज पहले से अधिक नगरीय हो जाते हैं। इसका अर्थ ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या विचलन होता है। तद्नुसार, यह एक ऐसा प्रसंग है जिसमें शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक होती है। शहरीकरण की कोटि मापने के दो सरल मापदंड निम्नवत् हैं–

i) शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रतिशत (PU) :

$$PU = \frac{\text{शहरी जनसंख्या का आकार}}{\text{कुल जनसंख्या का आकार}} \times 100$$

PU का मान जितना अधिक होगा, शहरीकरण की कोटि उतनी ही उच्च होगी।

ii) शहरी-ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात (UR) :

$$UR = \frac{\text{शहरी जनसंख्या का आकार}}{\text{ग्रामीण जनसंख्या का आकार}} \times 100$$

UR अनुपात का मान जितना अधिक होगा, शहरीकरण की कोटि उतनी ही उच्च होगी।

भारत में शहरी जनसंख्या (PU) का अंश वर्ष 1901 में लगभग 11 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1951 में लगभग 17 प्रतिशत और फिर वर्ष 2011 में बढ़कर 31 प्रतिशत हो गया। इस अवधि में भारत में शहरीकरण के रुझान में क्रमिक वृद्धि देखी गई। शहरी-ग्रामीण अनुपात (UR), दूसरी ओर, वर्ष 1951 में 21 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2011 में 45 प्रतिशत हो गया। शहरीकरण की दर, बहरहाल, राज्यों के बीच असमान ही रही है। उदाहरण के लिए, दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCT) सर्वाधिक शहरीकृत है, जहाँ उसकी जनसंख्या का लगभग 98 प्रतिशत भाग शहरी क्षेत्रों में ही रहता है। गोवा राज्यों के बीच सर्वाधिक शहरीकृत है, जहाँ उसकी जनसंख्या का 62 प्रतिशत भाग रहता है। अल्पतम शहरीकृत राज्य हैं– हिमाचल प्रदेश (10 प्रतिशत) तथा बिहार (11 प्रतिशत)। परंतु जनगणना वर्गीकरण एक स्तर विशेष से ऊपर जनसंख्या वाले क्षेत्रों को ही शहरी क्षेत्र मानता है। तद्नुसार, हर जनगणना में कुछ क्षेत्रों को 'शहरी' में पुनवर्गीकृत किए जाने की गुंजाइश होती है। हालाँकि उन क्षेत्रों में रहने वाले लोग उसी स्थान पर रह रहे होते हैं। फिर भी, शहरीकरण को लाभकारी माना जाता है, जिसके कारण हैं– अपेक्षाकृत अधिक आय अर्जित करने के बेहतर अवसर, बेहतर आधारित संरचना, तथा आय, सामाजिक समस्याओं के प्रति लोगों को बेहतर जागरूकता एवं प्रत्युत्तर। शहरीकरण, इसीलिए, आधुनिकीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन में योगदान देता है, जहाँ परवर्ती निम्नतर जन्मदर, निम्नतर मृत्युदर, निम्नतर शिशु मर्त्यता दर तथा निम्नतर प्रजनन दरों के माध्यम से होता है। यह सब प्रमुखतः शिक्षा

के उच्च्तर स्तरों एवं स्वास्थ्य परिचर्या सुविधाओं के कारण होता है, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों की बाजय शहरी क्षेत्रों में काफ़ी बेहतर है।

भारत में शहरीकरण के प्रतिरूप को संसाधन आधार एवं सुख-सुविधाओं के पर्याप्त विस्तार के बिना ही बड़े शहरों में जनसंख्या के निरंतर संकेंद्रण से पहचान जाता है। परिणामतः, इससे अनेक क्षेत्रों में समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, जैसे कि आवास, परिवहन, जलापूर्ति एवं स्वच्छता, जलवायु एवं ध्वनि प्रदूषण, सामाजिक अवसंरचना (विद्यालय, अस्पताल आदि); शहरी दारिद्रय एवं बेरोज़गारी तथा गंदी बस्तियों की संख्या में वृद्धि आदि।

5.4.2 लिंग अनुपात

जनसंख्या का स्त्री-पुरुष संयोजन लिंग अनुपात द्वारा मापा जाता है, जिसे स्त्री संख्या प्रति एक हज़ार पुरुष के रूप में परिभाषित किया जाता है। देखा गया है कि विकसित देशों में स्त्री संख्या पुरुष संख्या से अधिक होती है। भारत का लिंगानुपात, बहरहाल, दर्शाता है कि इस जनांकिकीय अभिलक्षण के जिहाज से हमारा समाज 'पुरुषवत्' है। भारत में लिंगानुपात वर्ष 1901 में 972 से घटकर वर्ष 2001 में 933 रह गया, जो कि वर्ष 2011 में किंचित् वृद्धि के बाद 943 हो गया है। यह राज्य स्तर पर काफी भिन्नता दर्शाता है : केरल में 1084 से हरियाणा में 879 तथा केंद्रशासित प्रदेशों में, पांडिचेरी में 1037 से दमन एवं दीव में 618 (वर्ष 2011 की जनसंख्या के अनुसार)। भारत में लिंगानुपात का ह्रासमान रुझान अनेक कारकों की वजह से हैः उच्च मातृ मर्त्यता दर (MMR), बालिकाओं के बीच उच्च शिशु मर्त्यता दर (IMR), बालिकाओं के बीच उच्च बाल मर्त्यता दर, माता.पिता के बीच विद्यमान सशक्त 'पुत्र' अधिमानता, नारी-निरक्षता व निम्न शिक्षा-स्तर, अवैध बालिका शिशु-हत्या एवं बालिका भ्रूण-हत्या, आदि। भारत में हाल के वर्षों में इन मसलों को हल करने के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं, जैसे, बालिकाओं की शिक्षा पर ज़ोर, नारी सशक्तीकरण, महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा रोकने हेतु कानून, तथा प्रसव-पूर्व लिंग-निर्धारण प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल पर रोक के माध्यम से लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करना। इस संदर्भ में, की गई नवीनतम पहल, यथा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' उल्लेखनीय है।

5.4.3 जनसंख्या पिरामिड

जनसंख्या पिरामिड अथवा आयु-लिंग पिरामिड जनसंख्या के आयु-लिंग वितरण को आरेखणीय रूप से प्रस्तुत करने का एक परिष्कृत एवं उपयोगी तरीका है। किसी भी पिरामिड में उसके दोनों पक्षों पर अवस्थित दो साधारण बारंबारता-चित्र होते हैं। पिरामिड आरेखन के नियम आमतौर पर बारंबारता चित्र अंकित करने के नियमों जैसे ही होते हैं, परंतु पूर्ववर्ती कुछ परिपाटियाँ एवं विशेष अभिलक्षण दर्शाते हैं जो कि निम्नवत् हैं–

प्रथम, पिरामिड सदैव बाईं ओर पुरुष जनसंख्या और दाईं ओर स्त्री जनसंख्या दर्शाते हुए आरेखित किए जाते हैं। अल्पवयस्क सदा तल पर होते हैं और वृद्ध शीर्ष पर। परिपाटी के अनुसार, एक वर्षीय अथवा 5 वर्षीय आयु-समूहों का प्रयोग किया जाता है, हालाँकि अन्य समूहन भी संभव है।

द्वितीय, अंतिम मुक्तांत आयु-समूह का सामान्यतः विलोप कर दिया जाता है, परंतु कुछ उदाहरणों में इसे दर्शाया जाता है।

तृतीय, शीर्ष पैमाना आयु-समूह दर्शाता है और क्षैतिज पैमाना जनसंख्या के प्रतिशत प्रतिशतताओं को आधार के रूप में संयोजित करने में दोनों लिंगों की कुल जनसंख्या का प्रयोग होता है।

चौथे, क्षैतिज पैमाना पिरामिड के दोनों पक्षों के लिए एक रूप ही होना चाहिए। शीर्ष पैमाना भी बारंबारता-चित्र आरेखित करते समय दोनों पक्षों के लिए एकसमान ही होना चाहिए।

वर्ष 2001, 2016 एवं 2026 (परिकल्पित) हेतु भारत के जनसंख्या पिरामिड चित्र 5.1 में दर्शाए गए हैं। ये दर्शाते हैं कि जनसंख्या पिरामिड की आकृति क्रमिक रूप से बदलती रही है। वर्ष 2001 में इसका वर्ष 2016 व 2026 की तुलना में काफ़ी विस्तृत आधार था, जिसका अर्थ है कि वर्ष 2001 में, वर्ष 2016 व 2026 के मुकाबले, जनसंख्या में अल्पवयस्क बच्चों का वृहत्तर अनुपात था। उक्त अवधि में वृद्धजन का अनुपात भी बढ़ा है, जैसा कि जनसंख्या पिरामिड—2026 (परिकल्पित) के शीर्ष पर स्थित बारंबारता-चित्रों का किंचित बड़ा आकार दर्शाता है। परवर्ती जनसंख्या वृद्धता की वजह से है। विकसित देशों के पिरामिड आकार में लगभग आयताकार हैं, जो कि जनसंख्या में बच्चों का निम्नतर अनुपात तथा वयस्कों एवं वृद्धजनों का उच्चतर अनुपात दर्शाते हैं। भारत में कार्यरत आयु की, विशेषकर पिरामिड-2016 व पिरामिड 2026 में आयु-समूह 20—24 व 55—59 से आने वाली जनसंख्या का वृहत्तर अनुपात देश के जनांकिकीय लाभांश के दौर में प्रवेश की ओर इंगित करता है।

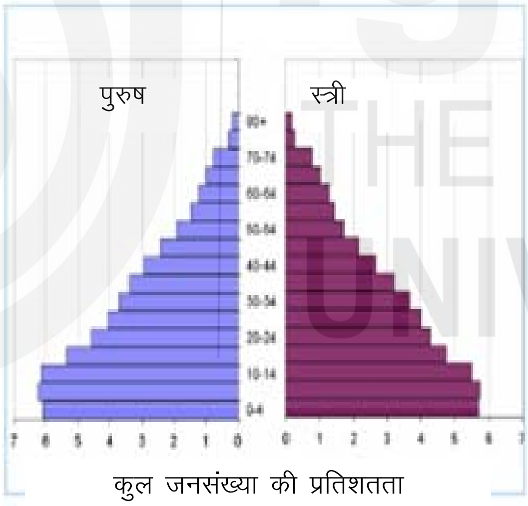

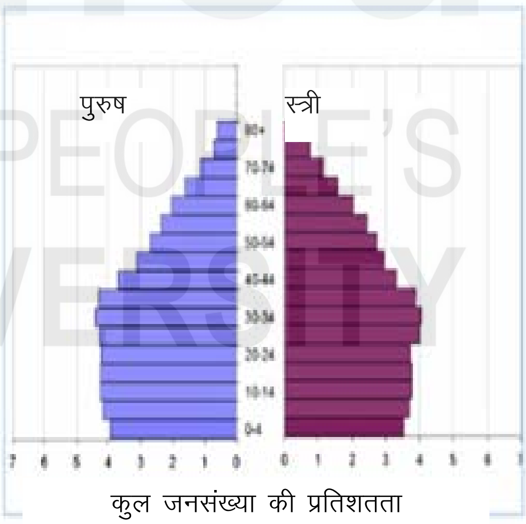

चित्र 5.1 : भारत के जनसंख्या पिरामिड.2001, 2016 व 2026

चित्र 2: परिकल्पित जनसंख्या पिरामिड : भारत.2001	चित्र 3 : परिकल्पित जनसंख्या पिरामिड : भारत.2026

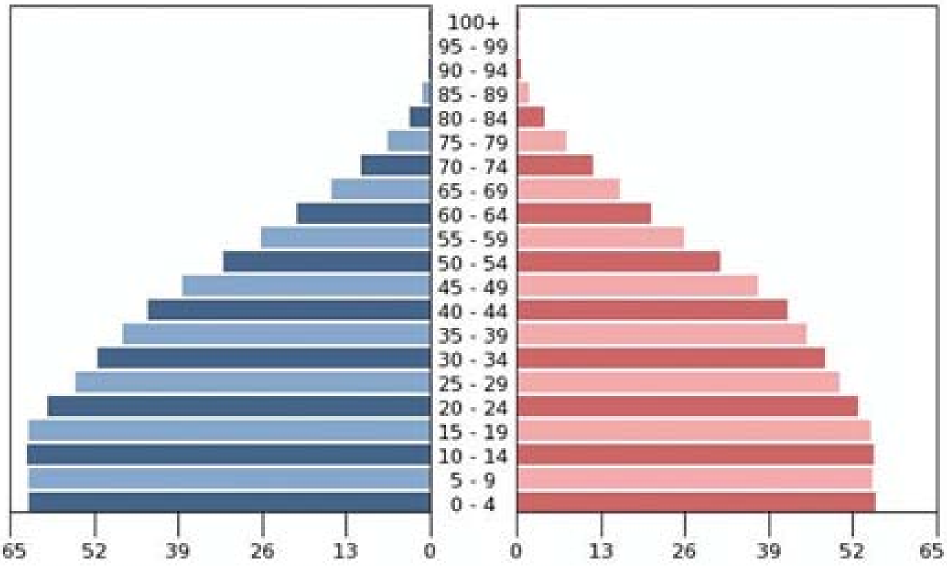

जनसंख्या (दस लाख में) आयु.समूह जनसंख्या (दस लाख में)

स्रोत : इंटरनेट, http://www.populationpyramid.net/India/2015

5.4.2 निर्भरता अनुपात

प्रथानुसार, आयु के आँकड़ों को पाँच-वर्षीय आयु-समूहों में वर्गीकृत किया जाता है; यथा, 0-4, 5-9, 10-14, 15-19, 20-24 वर्ष इत्यादि। आयु-समूहवार जनसंख्या की ऐसी प्रस्तुति अनेक प्रकार के विश्लेषणात्मक उद्देश्यों हेतु उपयोगी होती है। प्रायः, जनसंख्या संबंधी आँकड़ों को कुछ विशिष्ट आयु-समूहों हेतु मिला दिया जाता है ताकि संभावित श्रमबल, आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या आदि के विषय में अनुमान किया जा सके, जैसा कि नीचे दर्शाया गया है।

तालिका 5.2 : आयु-समूह द्वारा जनसंख्या का वर्गीकरण

आयु-समूह	वर्गीकरण
0—14	बच्चे
15—25	अल्पवयस्क
25—59	आर्थिक रूप से उत्पादनशील
60—79	वृद्धजन
80^{+}	वयोवृद्ध

जनसंख्या का आयु-समूहवार वितरण देश एवं क्षेत्र द्वारा जनसंख्या के बाल, अल्पवयस्क, आर्थिक रूप से उत्पादनशील, वृद्धजन एवं वयोवृद्ध जन-समूहों के बीच जनसंख्या का आकार आकलित करने में सहायक होती है। फिर विकास के विभिन्न संकेतक आकलित किए जा सकते हैं, जिनमें 'निर्भरता अनुपात' विकास का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट, 2016 ने 'निर्भरता अनुपात' अल्प-वयस्कावस्था जनसंख्या एवं वृद्धावस्था जनसंख्या हेतु अलग. अलग परिभाषित किया है, जो कि निम्नवत् है–

(क) अल्प-व्यवस्कावस्था निर्भरता अनुपात = अल्प-वयस्कावस्था (0–14) जनसंख्या / जनसंख्या आयु (15–64) × 100

(ख) वृद्धावस्था निर्भरता अनुपात = वृद्धावस्था (65 व ऊपर) जनसंख्या / जनसंख्या आयु (15–64) × 100

उपर्युक्त के अनुसार, वर्ष 2015 में भारत के लिए (क) और (ख) के मान क्रमशः 44 व 9 थे। अमेरिका जैसे किसी भी विकसित देश के लिए सदृश अनुपात 29 एवं 22 हैं। अल्प-विकसित देशों में निर्भरता अनुपात आमतौर पर ऊँचा होता है। भारत में, 'निर्भरता अनुपात' को 0–14 एवं 60+ दोनों जनसंख्या को लेकर निम्नवत् मापा जाता है–

(ग) निर्भरता अनुपात = [बाल जनसंख्या (0–14) जनसंख्या + वृद्ध जनसंख्या (60+), /जनसंख्या आयु (15–59)

बच्चों और बड़ों, यथा जो 0–14 व 60+ आयु-वर्ग में आते हैं, का ध्यान कार्यरत-आयु जनसंख्या 15–59 द्वारा रखे जाने की अपेक्षा की जाती है। ऊपर (ग) में निर्भरता अनुपात आश्रितों का दायित्व प्रति कार्यरत आयु-समूह जनसंख्या का सदस्य इंगित करता है। अनुकूल निर्भरता अनुपात बचत वर्धन का अभिमुख होता है। यह तभी संभव होगा जब कार्यरत-आयु जनसंख्या उत्पादनशीलता के साथ रोज़गार प्राप्त हो। भारत के लिए निर्भरता अनुपात वर्ष 1951 एवं 2001 के बीच 0-92 से 0-56 पर आ गया है।

5.5 जनसंख्या वृद्धता

21वीं सदी की प्रमुख वैश्विक जनांकिकीय घटनाओं में एक है– जनसंख्या वृद्धता। जनसंख्या वृद्धता जनांकिकीय परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वृद्धजन का अंश अल्पवयस्कों के अंश में सहकालिक गिरावट के साथ कुल जनसंख्या में बढ़ता है। जनसंख्या वृद्धता की घटना के पीछे मुख्य कारक हैं– मर्त्यता दर में कमी, जिसके बाद जीवन-प्रत्याशा दर में वृद्धि के साथ-साथ प्रजनन दर में भी कमी आती है। वर्ष 1950 में, 60+ लोगों का वैश्विक अंश 20 करोड़ अथवा कुल जनसंख्या का 8 प्रतिशत था। यह प्रतिशतता वर्ष 2011 में 11 तक बढ़ी और वर्ष 2050 तक यह दोगुनी होकर 22 हो जाने का अनुमान है। अधिक विशिष्ट रूप से, वर्ष 2045 में, परिकल्पना की जाती है कि वृद्धजन संख्या समग्र विश्व में बच्चों की संख्या से अधिक हो जाएगी। भारत में भी 60+ लोगों का प्रतिशत स्थिर रूप से बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए, कुल जनसंख्या के प्रति वृद्ध जनसंख्या का प्रतिशत वर्ष 1951 में 5.5 प्रतिशत था, परंतु वर्ष 2001 में यह बढ़कर लगभग 7.5 प्रतिशत और वर्ष 2011 में बढ़कर 8.6 प्रतिशत पर जा पहुँचा। परिकल्पना की जाती है वृद्धजन संख्या से वर्ष 2051 तक भारत में कुल जनसंख्या का लगभग 17 प्रतिशत हो जाएगी।

5.5.1 जनांकिकीय लाभांश

विश्व के कुछ भागों में हाल के तीव्र प्रजनन गिरावट ने आर्थिक एवं मानव विकास में तीव्रतर वृद्धि दर प्राप्त करने के अवसरों के नए वातायन खोल दिए हैं। प्रजनन में निरंतर कमी के कारण आयु-समूह 0–14 में बच्चों की संख्या निरंतर घटती जाएगी। कुछ समय पहले की उच्च प्रजनन दर वर्तमान कार्यबल की वृद्धि सुनिश्चित कर देती है और वर्तमान निम्न प्रजनन दर का अर्थ होगा– भविष्य में आश्रित बाल जनसंख्या का लघुतर आकार। जनसंख्या रुझान का यह अभिलक्षण ही 'जनांकिकीय वातायन अथवा लाभांश' है। अधिक विशिष्ट रूप से, वे लाभांश जो संभव होते हैं, निम्नवत् हैं–

(i) वृहत्तर आर्थिक गतिविधियों हेतु उच्चतर श्रमापूर्ति; (ii) महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं कार्यबल में शामिल होने के अवसर के साथ कम बच्चे; (iii) वृहत्तर आय एवं वृहत्तर बचत के साथ श्रम योग्य आयु के वयस्कों का वृहत्तर आकार, यथा आर्थिक गतिविधियों हेतु बढ़ी पूँजी आपूर्ति; (iv) व्यष्टिक एवं समष्टिक दोनों स्तरों पर बच्चों पर कम निवेश अपेक्षित होगा क्योंकि देश में देखभाल किए जाने के लिए बच्चों की संख्या कम होगी; (v) वृहत्तर आय के कारण बेहतर मानव-विकास, उच्च शिक्षा में अधिक निवेश और महिलाओं एवं बच्चों के बेहतर स्वास्थ्य के लिए अधिक निवेश (चीन ने एक-बच्चा परिवार नियोजन का सहारा लेकर मानव-विकास सूचकांक में अपनी रैंकिंग सुधारी है); तथा (vi) प्रजनन पतन एवं श्रमयोग्य आयु के लोगों की जनसंख्या में वृद्धि के कारण, निर्भरता अनुपात घटेगा। निम्न निर्भरता अनुपात आर्थिक विकास में सहायक होता है।

विशिष्टतः, अवसर का यह वातायन अथवा जनांकिकीय लाभांश की उपलब्धता, देश के अपनी परिस्थितियों के आधार पर हुए, 30 से 40 वर्षों तक चलती है। भारत जनांकिकीय वातायन के बिंदु पर वर्ष 2011 में पहुँचा। पंद्रह वर्ष से कम आयु के नागरिकों का अनुपात अब भी 30 प्रतिशत है और जो 65 वर्ष या उससे ऊपर का आयु प्राप्त कर चुके हैं, 15 प्रतिशत से कम हैं। भारत में श्रम योग्य आयु की जनसंख्या का अंश बढ़ रहा है (वर्ष 2011 में लगभग 60.3 प्रतिशत)। दूसरी ओर, वर्ष 2011 में कार्य भागीदारी दर (WPR) 39.8 प्रतिशत पर नीची ही बनी रही। तत्काल उपाय, इसीलिए, आवश्यक हैं ताकि – (i) बेरोज़गारी एवं कम-रोज़गारी मिटाने हेतु यथेष्ट पैमाने पर रोज़गार अवसर पैदा किए जा सकें; (ii) स्व-रोज़गार के नए मार्गों का लाभ उठाने के लिए युवा-वर्ग के बीच कौशल विकास को अग्रता प्रदान की जा सके; तथा (iii) जनसंख्या के वृहत्तर भागों को लाभ उठाने में सक्षम करने व उसके द्वारा विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आधुनिक शैक्षणिक एवं प्रशिक्षण प्रणाली की पहुँच विस्तीर्ण की जा सके। तभी भारत 'जनांकिकीय लाभांश' से लाभ उठा सकेगा।

5.5.2 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (NPP)

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (NPP 2000), परिवार नियोजन सेवाओं के लागू करने में स्वैच्छिक दृष्टिकोण की दिशा में सरकार की प्रतिबद्धता को दोहराती है। यह कुल प्रजनन दर (TFR) के लिहाज से निवल पुनर्स्थापन स्तर हासिल करने के लिए लोगों की प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक नीति प्राधार प्रदान करती है। इस नीति (NPP 2000) का तत्काल उद्देश्य है– गर्भ निरोध, स्वास्थ्य परिचर्या अवसंरचना संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना तथा मूलभूत प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य रक्षा हेतु एकीकृत सेवाएँ सुलभ कराना। इसका मध्यावधि उद्देश्य अंतर्क्षेत्रीय संक्रियात्मक रणनीतियों के क्रियान्वयन के माध्यम से वर्ष 2010 तक उक्त दर (TFR) को पुनर्स्थापन स्तर पर लाना है। इसका (NPP 2000 का) दीर्घावधि उद्देश्य धारणीय आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए देश की आवश्यकताओं के अनुरूप वर्ष 2045 तक एक स्थिर जनसंख्या हासिल करना है। सरकार उक्त नीति (NPP 2000) के तत्काल उद्देश्यों के अंतर्गत पहले ही अनेक कदम उठा चुकी है और पहल कर चुकी है। परिणामतः यह दर (TFR) वर्ष 2002 में 3.0 से घटकर वर्ष 2002 में 3.0 से गिरकर वर्ष 2013 में 2.3 रह गई। नवीनतम उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, 24 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों ने वर्ष 2013 तक TFR =2.1 की प्रजनन दर का पुनर्स्थापन स्तर हासिल कर लिया है।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) शहरीकरण क्या है? इसे कैसे मापा जाता है? इन संकेतकों के अनुसार भारत की शहरीकरण प्रक्रिया में क्या रुझान देखा गया है?

....

....

....

....

....

2) जनसंख्या पिरामिड क्या दर्शाता है? यह विकासशील देशों और विकसित देशों के बीच कैसे भेद करता है?

....

....

....

....

....

3) कोई देश अपना 'जनाकिकीय लाभांश' के दौर में प्रवेश किया जाना कैसे दर्शाता है? इसक आर्थिक नियोजन हेतु क्या निहितार्थ होते हैं?

....

....

....

....

....

5.6 सार-संक्षेप

आर्थिक नियोजन के लिए जनसंख्या जनांकिकीय अभिलक्षणों का आकलन आवश्यक होता है। जनसमुदाय के विभिन्न अंशों, जैसे अल्पायु बच्चे, प्रजनन आयु-समूह में स्त्रियाँ, आर्थिक रूप से सक्रिय श्रम बल तथा वृद्धजन, आमतौर पर सरकार से और खासतौर पर सामाजिक अवसंरचना से, विभिन्न प्रकार की समर्थन सेवाएँ चाहते हैं। परिवर्तनशील जनांकिकीय विवरण इस दृष्टिकोण से आर्थिक नियोजन हेतु आवश्यक होता है। इस प्रसंग में, इस इकाई में अनेक संकल्पनाओं से परिचय कराया गया है : यथा– जनसंख्या वृद्धि दर, प्रजनन एवं मर्त्यता दरें, जनांकिकीय संक्रमण, जनसंख्या वृद्धता, आदि। भारत 'जनांकिकीय लाभांश' के अपने दौर में प्रवेश कर चुका है, परंतु इस अवसर के वातायन का लाभ उठाने के लिए अनेक सुविधाओं एवं सेवाओं का अब भी अभाव है। इनमें शामिल हैं, अपने श्रमबल के समर्थनार्थ पर्याप्त रोज़गार अवसर तथा अपनी पण्यता बढ़ाते हेतु कौशल विकास कार्यक्रम।

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Cassen, R.H. (1958). India : Population, Economy, Society, Chapter 4, The Macmillan Co. of India Ltd., Delhi.

2) Colin Newell(1994). Methods and Models in Demography, John Willey and Sons, England.

3) Human Development Report, (2016). UNDP, New York, NY 10015.

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) यह 'प्रतिवर्ग किमी. भूमि' पर 'जनसंख्या' के अनुपात के रूप में मापा जाता है। वर्ष 2016 हेतु 445। यह चीन का 147, अमेरिका का 35 और ऑस्ट्रेलिया का 7 है।

2) बिहार, पश्चिम बंगाल व उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में यह ऊँचा है (जहाँ जनसंख्या घनत्व 829 से 1106 तक पाया जाता है) तथा हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, मिज़ोरम व अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में निम्न है (जहाँ यह 17 से 23 तक पाया जाता है)।

3) इसे किसी क्षेत्र में वर्ष मध्यय जनसंख्या के प्रति हजार स्तर अनुसार जीवित जन्मों की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह वर्ष 1951 में 40 से वर्ष 2011 में 22 पर गिर चुका है। यह अमेरिका में 14, चीन में 12 और जापान में 9 है।

4) अशोधित जन्म दर से भिन्न, हर में यह केवल जननक्षम जनसंख्या में महिलाओं पर विचार करता है। परंतु यह भिन्न-भिन्न जनन क्षमता के साथ विभिन्न जलवायवीय क्षेत्रों से आने वाली महिलाओं के बीच कोई भेदभाव नहीं करती।

5) कुल प्रजनन दर इस प्रकार आकलित की जाती है– TFR = $\frac{5 \text{ x } \sum_{15}^{49} \text{ASFR}}{1000}$. गुणक 5 तब प्रयोज्य होता है जब विचाराधीन आयु-समूह 5 वर्षीय अंतरालों पर हों। यह प्रत्येक आयु-समूह में समग्र प्रजनन विस्तार को विचारार्थ होता है। पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन का अर्थ है कि 'जनसंख्या में बच्चों की संख्या माता-पिताओं का स्थान लेने को पर्याप्त है' जो कि जनसंख्या में स्थिरता सुनिश्चित करता है। आमतौर पर, TFR = 2.1 को पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन माना जाता है।

6) इसे इस रूप में परिभाषित किया जाता है : IMR = $\frac{1D_0}{1B_0}$ × 10001 यह किसी क्षेत्र में उपलब्ध स्वास्थ्य रक्षा एवं चिकित्सा सुविधाओं का स्तर इंगित करता है।

बोध प्रश्न 2

1) यह जनसंख्या का ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर विचलन दर्शाता है। यह PU अर्थात् शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रतिशत तथा UR अर्थात् शहरी एवं ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात द्वारा मापा जाता है। भारत में PU के अनुसार शहरीकरण वर्ष 1951–2011 के दौरान 15 प्रतिशत से दोगुना होकर 31 प्रतिशत

हो गया। UR के अनुसार, यह वर्ष 1951–2011 के दौरान 21 से 45 प्रतिशत तक बढ़ा है।

2) यह आयु-समूहों द्वारा प्रतिशत में जनसंख्या का वितरण दर्शाता है, जहाँ एक विस्तृत आधार अधिक बच्चे दर्शाता है जो कि प्रायः विकासशील देशों में होता है। विकसित देशों में यह आकृति में आयताकार होती है, जो यह दर्शाती है कि वृद्ध जनसंख्या उच्चतर है।

3) यह श्रम योग्य समूह (20–59) हेतु जनसंख्या पिरामिड का भाग अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होने से इंगित होता है। यह आर्थिक नियोजन हेतु आह्वान करता है ताकि उपलब्ध्य रोज़गार बढ़ाया जा सके और साथ ही, बाज़ार की कौशल संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके, जिससे वहाँ के विसंगतिपूर्ण परिणामों से बचा जा सकें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 शिक्षा क्षेत्र*

संरचना

6.0 उद्देश्य
6.1 विषय प्रवेश
6.2 मानव पूँजी और मानव विकास : विभेद
6.3 भारत में शिक्षा क्षेत्र
    6.3.1 प्राथमिक शिक्षा
    6.3.2 माध्यमिक शिक्षा
    6.33 उच्च शिक्षा
6.4 शैक्षणिक उपलब्धि/परिणाम
    6.4.1 स्त्री-पुरुष विषमता
    6.4.2 गुणवत्ता
6.5 शिक्षा का वित्तीयन
    6.5.1 राज्य बनाम बाज़ार निधिकरण हेतु तर्क
    6.5.2 शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय
    6.5.3 वित्तीयन के वैकल्पिक स्रोत
6.6 सार-संक्षेप
6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- 'मानव पूँजी' और 'मानव विकास' शब्दों के बीच भेद कर सकें;
- भारत में शिक्षा क्षेत्र में संवृद्धि का वर्णन कर सकें;
- शिक्षा क्षेत्र में विस्तार की पर्याप्तता के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक आयामों के विश्लेषण कर सकें;
- स्त्री-पुरुष समता एवं गुणवत्ता आयामों के संदर्भ में शिक्षा क्षेत्र की कार्य-निष्पत्ति की समालोचना कर सकें;
- अन्य देशों से तुलनात्मक रूप में भारत के शिक्षा क्षेत्र पर सार्वजनिक व्यय में प्रवृत्तियों की चर्चा कर सकें; और
- शिक्षा क्षेत्र का वित्त प्रबंध करने के वैकल्पिक स्रोतों की रूपरेखा के साथ शिक्षा के वित्त प्रबंधन में 'राज्य' बनाम 'बाज़ार' की भूमिका स्पष्ट कर सकें।

---

*प्रो. सेबक जाना, मिदनापुर विश्वविद्यालय

6.1 विषय प्रवेश

शिक्षा जिस पूँजी के निर्माण में योगदान देती है उसे 'मानव पूँजी' की संज्ञा दी जाती है। मानवीय पूँजी 'भौतिक पूँजी' से भिन्न होती है, परंतु वह परवर्ती की संपूरक भी है। भौतिक पूँजी आर्थिक संवृद्धि में सहायक होती है जो कि, बदले में, ऐसी परिस्थितियों को जन्म देती है जिनमें बेहतर शिक्षा सुविधाओं की माँग उठती है। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मानव पूँजी निर्माण होता है। मानव पूँजी निर्माण, आर्थिक संवृद्धि को तेज़ करता है। इस प्रकार, विकास के ये सामाजिक पहलू नीति-निर्माताओं और राजनीतिक नेताओं दोनों को समान रूप से आकर्षित करते हैं, हालाँकि प्रत्येक के लिए उसके भिन्न-भिन्न कारण हैं। इस संदर्भ में, प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक क्षेत्र के विकास के दो विशिष्ट उपक्षेत्रों में से एक से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करेंगे अर्थात् भारतीय अर्थव्यवस्था में शिक्षा क्षेत्र (दूसरा उपक्षेत्र स्वास्थ्य है)।

6.2 मानवीय पूँजी और मानव विकास : विभेद

मानवीय पूँजी को जनसमुदाय द्वारा धारण किए जाने वाली ज्ञान-राशि और उस ज्ञान को प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करने की उसकी क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। मानवीय पूँजी में *इसीलिए* समस्त ज्ञान, प्रतिभाएँ, कौशल, योग्यताएँ, अनुभव, बुद्धि, प्रशिक्षण, निर्णय तथा वैयक्तिक रूप से एवं सामूहिक रूप से लब्ध प्रज्ञा आदि शामिल होते हैं, जिनका संचयी योग राष्ट्रों एवं संगठनों को अपने लक्ष्य हासिल करने हेतु उपलब्ध एक संपदा के रूप में निरूपित किया जाता है। 1950 के उत्तरार्ध तक अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक के रूप में मानीवय पूँजी में निवेश की भूमिका पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। इस अवधारणा का जन्म दिसंबर, 1960 में अमेरिकन इकॉनोमिक एसोसिएशन को प्रो. थिओडोर डब्ल्यू. शुल्ज़ के अध्यक्षीय भाषण में देखा जा सकता है। शुल्ज़ (1961) द्वारा प्रतिपादित मानवीय पूँजी सिद्धांत ने मनुष्यों में शिक्षा को निवेश स्वरूप मानने और इसे आर्थिक संवृद्धि के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में जानने के लिए एक सशक्त आधार दिया। मानवीय पूँजी सिद्धांत के अनुसार, ''शिक्षा अर्थव्यवस्था के परंपरागत क्षेत्र और आधुनिक क्षेत्र, दोनों, द्वारा अपेक्षित ज्ञान प्रदान करके व कौशल अंतर्निवेशित करके अनगढ़ मनुष्यों को उत्पादनशील 'मानवीय पूँजी' बना देती है। इस प्रकार, वह लोगों को समाज के पहले से अधिक लाभकारी सदस्य बना देती है– न सिर्फ पण्य क्षेत्र में, बल्कि घरों में भी और साथ ही, पूरे समाज में भी। भारत समेत लगभग सभी देशों में उपलब्ध साक्ष्य ग़रीबी की रेखा से नीचे के लोगों के अनुपात और अनपढ़ लोगों के अनुपात के बीच महत्त्वपूर्ण सकारात्मक साहचर्य स्थापित करते हैं।

मानव विकास, दूसरी ओर, लोगों के अधिकारों और अवसरों को परिवर्धित करने की ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिससे उनके समग्र कल्याण में बढ़ोतरी होती है। मानव विकास जनसाधारण की असली आज़ादी की बात कहता है, जिससे कि वे तय कर सकें कि उन्हें क्या बनना है, क्या करना है और कैसे रहना है। मानव विकास की संकल्पना अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक़ द्वारा विकसित की गई, जो इस अवधारणा पर आधारित है कि शिक्षा और स्वास्थ्य मानव क्षेम-कल्याण के अभिन्न अंग हैं क्योंकि जब लोगों के पास वांछित योग्यता और एक स्वस्थ शरीर होगा, तभी वे एक उत्तम और सार्थक जीवन जी सकेंगे। इस प्रकार, मानव विकास एक व्यापक

संकल्पना है जिसमें मनुष्यों को ही अपने आप में साध्य मानकर चला जाता है। मानव विकास तभी होता है जब किसी अर्थव्यवस्था में अधिकांश लोग शिक्षित और स्वस्थ हों।

6.3 भारत में शिक्षा क्षेत्र

सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को सरल बनाने में शिक्षा की भूमिका को भली-भाँति पहचाना गया है। यह ऐसे अवसर पैदा करती है जिससे वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही क्षमताओं में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। शिक्षा, अपने व्यापकतम अर्थ में, लोगों को लाभकारी रोज़गार अवसर सुलभ कराकर उन्हें विभिन्न प्रकार के कौशल एवं ज्ञान से संपन्न करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आगत है। शिक्षा में सुधारों से न सिर्फ़ दक्षता बढ़ाए जाने की बल्कि जीवन की समग्र गुणवत्ता भी बढ़ाए जाने की अपेक्षा की जाती है। भारत में अनुसरण की जा रही वर्तमान संवृद्धि युक्ति द्रुत एवं समावेशी संवृद्धि हासिल करने के लिए एक प्रमुख साधन के रूप में शिक्षा को उच्चतम प्राथमिकता देती है। इसके दायरे में शिक्षा पिरामिड के सभी घटकों को समाविष्ट करते शिक्षा क्षेत्र को दृढ़ता प्रदान करने हेतु अभिकल्पित कार्यक्रम ये हैं : (i) प्राथमिक शिक्षा; (i) माध्यमिक शिक्षा; तथा (iii) उच्च शिक्षा।

6.3.1 प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा, यथा कक्षा I-VIII जिनमें प्राथमिक (I-V) और उच्चतर प्राथमिक (VI-VIII) स्तर होते हैं, शैक्षिक प्रणाली पिरामिड का आधार है और इसी पर हमारे सभी विकास कार्यक्रमों में ज़ोर दिया गया है। प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण (UEE) को सन् 1999 में सर्व शिक्षा अभियान (SSA) कार्यक्रम के अंगीकरण से काफ़ी विस्तार मिला है। यह योजना पाँच सिद्धांतों द्वारा निर्देशित रही है, यथा– (i) व्यापक सुलभता, (ii) व्यापक नामांकन, (iii) व्यापक धारण, (iv) व्यापक उपलब्धि, एवं (v) समता। इनके अलावा, उक्त अभियान (SSA) '6 से 14 वर्ष की आयु-वर्ग के सभी बच्चों' के लिए उत्तम गुणवत्ताकारी प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करने को अवश्यकरणीय मानता है। इसको सुनिश्चित करने के लिए 86 वें संविधान संशोधन (2002) में नया अनुच्छेद (21-A) शामिल किया गया जो '6 से 14 वर्ष आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में' प्रदान करता है। भारत में 'प्राथमिक एवं उच्चतर प्राथमिक' विद्यालयों की वृद्धि अवधि 1951-2015 के दौरान छह गुना (2 लाख से 13 लाख) रही। इन विद्यालयों में नामांकन (वर्ष 1951 में 2.2 करोड़ से वर्ष 2015 में 19.8 करोड़) नौ गुना बढ़ा है।

6.3.2 माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा के बीच एक सेतु का काम करती है। प्राथमिक शिक्षा की भाँति, माध्यमिक शिक्षा के भी दो भाग हैं, यथा माध्यमिक (जिसमें कक्षाएँ 9 और 10 आती हैं) तथा वरिष्ठ माध्यमिक (जिसमें कक्षाएँ 11 और 12 आती हैं)। चूँकि प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण एक स्वीकृत लक्ष्य बन गया है, इस स्वप्न को आगे माध्यमिक शिखा के सर्वव्यापीकरण की ओर ले जाना अनिवार्य हो गया है, जो कि अधिकांश विकसित देशों और नव-औद्योगीकृत पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में काफ़ी हद तक हो भी चुका है। अब तक माध्यमिक शिक्षा का ख़ास ज़ोर 'समान स्कूल प्रणाली' को महत्त्व देते हुए सुलभता बढ़ाने और विषमताएँ घटाने पर ही रहा है, जिसमें किसी क्षेत्र विशेष में विद्यालयों के लिए पड़ोस में रह रहे निम्न-आय परिवारों से

विद्यार्थियों को लेना अनिवार्य होता है। शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा बनाए जाने को महत्त्व देते हुए पाठ्यचर्याओं के संशोधन पर भी विशेष आग्रह रहा है। सारतः शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा बनाए जाने का अर्थ है– रोज़गारोन्मुखी पाठ्यक्रम प्रदान किए जाने पर ध्यान देना, महत्त्व दिए जाने के अन्य क्षेत्र हैं– (i) मुक्त शिक्षा प्रणाली का विस्तार एवं विविधीकरण; (ii) अध्यापक प्रशिक्षण का पुनर्विन्यास, आदि। ये उद्देश्य अब तक अंशतः ही पूर्ण हुए हैं। माध्यमिक शिक्षा हेतु संस्थानों की संख्या वर्ष 2001 में 1.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 2.0 लाख हो गई। इन संस्थानों में नामांकन वर्ष 2001 में 2.9 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2015 में 6.2 करोड़ हो गया। तद्नुसार, इन संस्थानों की संख्या और उनमें नामांकन 2001.15 की अवधि में 2 गुना बढ़ा है।

6.3.3 उच्च शिक्षा

1950 व 1960 के दशकों में उच्च शिक्षा में किए गए निवेश ने स्वाधीन भारत में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और राजनीतिक लोकतंत्र के दृढ़ीकरण में महत्त्वपूर्ण रूप से योगदान देते हुए भारत को अनेक क्षेत्रों में सशक्त ज्ञान आधार प्रदान किया है। महाविद्यालयों की संख्या वर्ष 1951 में 1.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 38 लाख हो गई, यथा 38 गुना वृद्धि। इसी प्रकार, विश्वविद्यालयों की संख्या वर्ष 1951 में 27 से बढ़कर वर्ष 2015 में 760 हो गई, यथा 28 गुना वृद्धि। इन 'महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों' में संयुक्त नामांकन वर्ष 1951 में 4.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 3.42 करोड़ हो गया, यथा लगभग 86 गुना। तथापि, अब तक हुए विस्तार के बावजूद, वर्तमान व्यवस्था पर ऐसी कुशल मानव शक्ति की वांछित संख्या उपलब्ध कराने का दबाव बना ही हुआ है जो कि अर्थव्यवस्था की माँगों को पूरा करने में सहायक वांछित ज्ञान एवं तकनीकी कौशलों से संपन्न हो। अर्थव्यवस्था की त्वरित संवृद्धि ने पहले ही उच्च-गुणवत्ता वाली तकनीकी मानवशक्ति की कमी पैदा कर दी है। इसके अतिरिक्त, विकसित देशों से भिन्न, जहाँ युवा कार्यबल उच्चतर निर्भरता अनुपात के साथ तेज़ी से घट रहा है, भारत जनांकिकीय संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है, जहाँ लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या 35 वर्ष से नीचे आयु वालों की है। परंतु यह लाभ आर्थिक लाभ के रूप में तभी साकार किया जा सकता है जबकि युवाओं के लिए अवसर मूल विज्ञान. शास्त्रों, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य परिचर्या, वास्तुकला, प्रबंधन, आदि विभिन्न क्षेत्रों में विस्तीर्ण मान एवं वैविध्य पर व्याप्त हों। ऐसा तभी संभव होगा जब द्रुत-विस्तार उच्चतर, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा क्षेत्रों में एक लंबे समय से विलंबित सुधारों के साथ आरंभ किया जाएगा।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) मानवीय पूँजी को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है? मानवीय पूँजी को पहचान दिलवाने का श्रेय किस अर्थशास्त्री को दिया जाता है?

....

....

....

....

....

2) मानव विकास का विचार मानव पूँजी से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

....

....

....

3) वे पाँच सिद्धांत कौन.से हैं जिनसे सर्वशिक्षा अभियान (SSA) नामक कार्यक्रम नियंत्रित होता है?

....

....

....

....

....

4) भारत में 'प्राथमिक शिक्षा' के संबंध में विस्तार का क्या महत्त्व रहा है?

....

....

....

....

....

5) देश में 'माध्यमिक शिक्षा' व्यवस्था में 'समान स्कूल प्रणाली' का एक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण क्या रहा है?

....

....

....

....

....

6) भारत में 'उच्च शिक्षा' के संबंध में विस्तार-प्रसार का कितना विस्तार हुआ है?

....

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

7) क्या आप मानेंगे कि शिक्षा क्षेत्र में विस्तार-प्रसार अर्थव्यवस्था की अपेक्षाओं के अनुरूप रहा है? क्यों?

....

....

....

....

....

6.4 शैक्षणिक उपलब्धि / परिणाम

शिक्षा एक मूलभूत आवश्यकता है जिसे अब शिक्षा का अधिकार संबंधी अधिनियम के माध्यम से एक मौलिक अधिकार भी बना दिया गया है : बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम अर्थात् शिक्षा का अधिकार– RTE)। जबकि उच्च शिक्षा आवश्यक है, प्राथमिक शिक्षा उस आधार की भूमिका निभाती है जिस पर आगे की पढ़ाई की अधिरचना की जा सकती है। विद्यालयों में नामांकन हाल के वर्षों में यथेष्ट रूप से बढ़ा है, परंतु पठन, लेखन एवं अंकगणितीय संक्रियाओं संबंधी मूल संकल्पनाओं में विद्यार्थियों का कार्य-प्रदर्शन निम्न ही रहा है। इसके अलावा, शिक्षा सुलभता और शिक्षा समापन दोनों में ही व्यावहारिक लिंग भेद आधारित पूर्वाग्रह चिंता का मुख्य कारण रहा है। इनके कारण ही, मौलिक शिक्षा व्यवस्था के घटिया प्रदर्शन में भी व्यापक क्षेत्रीय भिन्नताएँ विद्यमान हैं। कुछ कारण, जैसे– (i) गरीबी; (ii) व्यापक बाल-श्रम बाज़ार की विद्यमानता; (iii) विद्यालयी शिक्षा के बाद निश्चित रोज़गार का अभाव; तथा (iv) अवसंरचनात्मक समस्याएँ, भारत में प्राथमिक शिक्षा प्रणाली को अभिशप्त करती बुराइयों के लिए ज़िम्मेदार मानी जाती हैं। स्कूलों में उपस्थिति के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना, विद्यालयी प्रक्रिया को बच्चों के लिए आकर्षक बनाना, मिडिल और हाई स्कूल पाठ्यचर्या को व्यावसायिक एवं रोज़गारोन्मुखी पाठ्यक्रमों के अनुरूप बनाना तथा विद्यालयों में बेहतर अवसंरचना उपलब्ध कराना– ये कुछ ऐसी नीतियाँ हैं जिन पर परिदृश्य को सुधारने के लिए ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

साक्षरता दर को शैक्षणिक लब्धि में विषमता उज़ागर करने के मूल संसूचकों में एक माना जाता है। इस संबंध में शहरी-ग्रामीण अंतर यथेष्ट रूप से कम हुआ है (यथा, वर्ष 1961 में 34 प्रतिशत से वर्ष 2011 में 16 प्रतिशत)। इसके बावजूद, ग्रामीण भारत में प्रगति शहरी साक्षरता स्तरों तक पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं रही है (यथा, वर्ष 2011 में ग्रामीण भारत हेतु 69 प्रतिशत के मुकाबले शहरी साक्षरता दर 85 प्रतिशत रही)। राज्यवार उपलब्धि दर्शाता है कि समग्र साक्षरता में जहाँ केरल (94 प्रतिशत) (मिज़ोरम, लक्षद्वीप एवं त्रिपुरा के साथ) शीर्ष पर बना हुआ है, वहीं बिहार समग्र साक्षरता में सबसे नीचे (61.8 प्रतिशत) है। लक्षद्वीप और केरल में ग्रामीण-शहरी विषमता निम्नतम रही है, जहाँ दोनों की ही गिनती उच्च प्रदर्शन वाले राज्यों में हुई है। उपलब्धि में विषमताएँ कई अन्य मोर्चों पर भी बनी रही हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्त्री-पुरुष विषमता एवं गुणवत्ता के लिहाज से हैं।

6.4.1 स्त्री-पुरुष विषमता

दो ऐसे सूचक हैं जो शिक्षा में स्त्री-पुरुष विषमता आधारित कार्य-प्रदर्शन को उजागर करते हैं। ये हैं– (i) सकल नामांकन अनुपात (GER); और (ii) स्त्री-पुरुष समता

सूचकांक। सही-सही आयु वर्षों द्वारा नामांकन पर आँकड़े उपलब्ध न होने पर 'निर्बल नामांकन अनुपात' के स्थान पर प्रयुक्त उक्त अनुपात (GER) शिक्षा में भागीदारी का सामान्य स्तर उज़ागर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह अनुपात (GER) शिक्षा के स्तर द्वारा ही परिभाषित किया जाता है। उदाहरण के लिए, प्राथमिक शिक्षा के लिए, यह अनुपात (GER) किसी वर्ष में कुल पात्र औपचारिक प्राथमिक विद्यालय.योग्य आयु वाले जनसमुदाय में से वास्तविक नामांकन के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है। कोई अनुपात GER ≥ 1 (100 प्रतिशत) दर्शाता है कि सिद्धांततः कोई राज्य अथवा देश अपने सभी विद्यालय-योग्य आयु वाले जनसमुदाय को शिक्षा संस्थाओं में समायोजित करने में सक्षम है। यह नामांकित पात्र जनसमुदाय का वास्तविक अनुपात नहीं दर्शाता। दूसरे शब्दों में, GER ≥ 1 वाले GER की उपलब्धि वास्तविक उपलब्धि की एक आवश्यक परंतु अपर्याप्त शर्त है। एक विशिष्ट स्थिति जहाँ GER 1 से अधिक हो सकता है, तब होगी जब 'अधिक-वय' एवं 'पुनरावर्तक' भी शामिल कर लिए जाएँ। उक्त अनुपात (GER) इसी व्याख्या की अपेक्षा करता है। पहले बालक और बालिकाओं के लिए अलग-अलग परिकलित, 'बालकों के प्रति बालिकाओं हेतु GER' के अनुपात को फिर 'स्त्री-पुरुष समता सूचकांक' (GPI) के रूप में परिभाषित किया जाता है। हाल की अवधि 2007-13 के लिए यह सूचकांक दर्शाता है कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा हेतु यह 1 के स्तर को पार कर चुका है। इसके अलावा ड्रॉपआउट (बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने) की दर के लिहाज से भी शिक्षा के चार में से तीन स्तरों, यथा प्राथमिक, माध्यमिक एवं वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए स्त्री-पुरुष समता सूचक में महत्त्वपूर्ण सुधार आया है (उदाहरण के लिए, वर्ष 2013-14 में यह प्राथमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 4.1 एवं बालकों हेतु 4.5 रहा, माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 17.8 एवं बालकों हेतु 17.9 रहा तथा वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 1.6 एवं बालकों हेतु 1.5 रहा)। तुलनात्मक रूप से, इसीलिए, शिक्षा के केवल 'उच्चतर प्राथमिक' स्तर पर बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर बालकों से ऊँची रही, यथा– बालिकाएँ (4.5) और बालक (3.1) (2013-14)। यह देखते हुए कि वर्ष 1960-61 में ड्रॉपआउट दर 65 प्रतिशत तक ऊँची थी, इस संबंध में एक बड़ा सुधार आया है। एक पहलू जिस पर कि बालिकाओं के बढ़ते नामांकन संबंधी उपलब्धि निर्भर कर सकती है, 'अध्यापिकाओं की संख्या प्रति 100 अध्यापक' है। यह संख्या वर्ष 1951 में लगभग 20% तक नीची थी (तीन में से प्रत्येक विद्यालयी स्तर पर)। वर्ष 2011-12 तक यह शिक्षा के विभिन्न स्तरों हेतु 65-80 के स्तर तक क्रमिक रूप से बढ़ी है। यद्यपि, इस लिहाज़ से सुधार आया है, फिर भी शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्यापिकाओं की संख्या बढ़ाने के लिए गुंजाइश है, वृहत्तर लिंग समता लाने की दिशा में भी और विद्यालयों से बालिकाओं की ड्रॉपआउट दरों को न्यूनतम करने के लिए भी।

6.4.2 गुणवत्ता

एक ग़ैर-सरकारी संगठन 'प्रथम' द्वारा ग्रामीण भारत में बच्चों की पठन एवं अंकगणितीय क्षमताओं का एक राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण प्रतिवर्ष करवाया जाता है। अपने मापदंडों और व्यापक कवरेज़ के चलते, इसकी शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट (ASER) एक अनूठी पहल है। कक्षाओं I और VIII के बीच बच्चों की शिक्षा-ग्रहण उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु यह एकमात्र भारतीय राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण है। अंकगणितीय क्षमता मापने के लिए बढ़ती कठिनाई की चार मूल परीक्षाएँ होती हैं और विद्यार्थियों को प्रत्येक परीक्षा के निम्न स्तर को पास कर लेने के बाद ही देने को कहा जाता है। ये हैं– (i) एक से नौ तक यादृच्छिक रूप से चुनी गई संख्याओं को पहचानना; (ii)

11 से 99 के बीच यादृच्छिक रूप से चुनी गई संख्याओं को पहचानना; (iii) हासिल लेकर दो-अंकीय संख्यात्मक प्रश्नों को घटाकर हल करना; और (iv) एक-अंक द्वारा तीन-अंक को भाग वाले संख्यात्मक प्रश्नों को हल करना। वर्ष 2010 में सर्वेक्षण के परिणामों ने दर्शाया कि कक्षा III में केवल 37 प्रतिशत बच्चे ही 100 तक की संख्याएँ पहचान सकते थे। इसके अलावा, मात्र 27 प्रतिशत विद्यार्थी ही अगले स्तर, यथा घटा करना तक पहुँच सके थे। और भी अधिक चिंताजनक यह बात थी कि उच्चतम परीक्षा स्तर तक पहुँचने वाले बच्चों का अनुपात वर्ष 2005, जबकि सर्वेक्षण प्रथम बार करवाया गया, से निरंतर गिरता रहा है। वर्ष 2005 में कक्षा III में कम से 15 प्रतिशत बच्चे सभी परीक्षाएँ पास कर लेते थे, जबकि वर्ष 2010 में यह घटकर मात्र 9 प्रतिशत रह गया। साथ ही, वर्ष 2010 में कक्षा VIII में 67 प्रतिशत बच्चे उच्चतम स्तर तक जा सके थे, जबकि वर्ष 2005 में तद्नुरूप संख्या 70 प्रतिशत थी। स्पष्ट है कि नामांकन बढ़ाने से शिक्षा-प्राप्ति का स्तर स्वतः नहीं सुधर जाता।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता भी भारत में एक प्रमुख सरोकार रहा है। उक्त स्थित को सुधारने के लिए इस दिशा में उठाए गए कुछ नीति उपाय निम्नवत् है– (i) बाज़ार माँगों के साथ तुल्यकालिक बनाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम को पुनराभिकल्पित करना; (ii) सीखने के अंतर्क्रियात्मक तरीकों पर अधिक ज़ोर देना; (iii) मूल्यांकन प्रक्रिया व परीक्षाओं में परिवर्तन; (iv) अर्ध-वार्षिक पाठ्यक्रम व्यवस्था लागू करना; (v) अध्यापकों का मूल्यांकन; (vi) संस्थानों का श्रेणीकरण; (vii) अंतर्संस्थानिक गतिशीलता सामर्थ्य हेतु क्रेडिट प्रणाली शुरू करना; (viii) प्राध्यापक वर्ग विकास कार्यक्रम; (ix) शैक्षिक योग्यताओं का राष्ट्रीय डेटाबेस बनाकर रखना; आदि। भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति ने प्रत्यायन अभिकरणों की स्थापना कर देशभर में उच्चतर शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने पर खास ज़ोर दिया है। इस तथ्य के बावजूद कि हमारे पास उच्चतर शिक्षा के 13 नियामक निकाय हैं, शिक्षा की गुणवत्ता काफ़ी निम्न है और इन कार्यक्रमों में विषय वस्तु 'व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं' के प्रति कम प्रासंगिक है। राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (NAAC) द्वारा मूल्यांकन किए गए 3,674 महाविद्यालयों में से केवल 24.4 प्रतिशत महाविद्यालयों को ही 'ए' ग्रेड दिया गया है। हमारी शिक्षा व्यवस्था एक रोग से ग्रस्त है जिसे 'डिप्लोमा डिसीज़' की संज्ञा दी गई है, अर्थात् यह ज्ञान एवं कौशल अभिहस्तांतरित करने पर अभिलक्षित नहीं है, बल्कि यह प्रमाणन एवं प्रत्यायन से कहीं अधिक संबंध रखती है। दरअसल, मानव पूँजी की वृद्धि में इसका योगदान अत्यल्प है और कुछ व्यावसायों हेतु उठती माँगों को पूरा करने में अक्षम है।

6.5 शिक्षा का वित्तीयन

वित्तीयन और विशेषतः उच्च शिक्षा के अर्थ-प्रबंधन का तरीका, उच्चतर शिक्षा हेतु अभिकल्पित सभी प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अत्यावश्यक है, यथा विस्तारण, समावेशन एवं उत्कृष्टता। यद्यपि लोक वित्तीयन उच्चतर शिक्षा के अर्थ-प्रबंधन का प्रबल स्रोत रहा है, केंद्र व राज्यों दोनों के सम्मुख राजकोषीय संरोध तथा निश्चल राजस्व एवं बढ़ती लागत के बीच चौड़ी होती खाई ने सरकारी रूप से निधिबद्ध विश्वविद्यालयों को मज़बूर कर दिया कि वे निधिकरण के अतिरिक्त एवं वैकल्पिक स्रोत तलाशें। नई आर्थिक नीति के ही एक हिस्से के रूप में, नीतियों को इस प्रकार तैयार किया गया है कि वे उच्चतर शिक्षा के विस्तारण में योगदान देने के लिए उसके हस्तांतरण में निजी क्षेत्र को सम्मिलित करें। सरकारी और निजी निधिकरण के दो अंतर्बिंदुओं के बीच, हाल ही में, सरकार ने निजी क्षेत्र के साथ साझेदारियों की

संभावनाएँ तलाशना शुरू किया है ताकि निधिकरण के दोनों ही तरीकों का लाभ उठाया जा सके (हालाँकि, हमारे पास देश में कार्यरत सरकारी-निजी भागीदारी (PPP) के अनेक रूप पहले ही मौजूद हैं)। हमारे यहाँ अनेक सरकारी स्कूल, सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल और प्राइवेट स्कूल हैं। इसी प्रकार, उच्च शिक्षा स्तर पर यहाँ सरकारी कॉलेज, अंशतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) से निधिकृत कॉलेज, आदि हैं।

6.5.1 राज्य बनाम बाज़ार निधिकरण हेतु तर्क

निधिकरण के स्रोत स्वरूप बाज़ार की भूमिका 'नब्बे के दशकोपरांत तब शुरू हुई जब विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा संरचनात्मक समंजन कार्यक्रमों में सुझाया गया कि शिक्षा जैसे सामाजिक क्षेत्रों में सरकारी खर्च कम किया जाए। बाज़ार समर्थकों ने माना कि सरकार द्वारा प्रदत्त अर्थसहाय्य प्रतिगामी हैं क्योंकि मुख्य रूप से संभ्रांत वर्ग ही उच्चतर शिक्षा के लिए पहुँचता है और इस कारण वही इन परिदानों का प्रमुख लाभार्थी होता है। निधियाँ इस प्रकार ग़रीब वर्ग से अमीर वर्ग की ओर हस्तांतरित हो जाती हैं क्योंकि वह राशि जो ग़रीबों पर खर्च की जा सकती थी, घट जाती है। इसी को ठीक करने के लिए उनका कहना था कि सरकारी निधिकरण को उच्च शिक्षा से स्कूल-स्तर की शिक्षा की ओर मोड़ दिया जाए। बाज़ार समर्थकों द्वारा रखा गया एक अन्य तर्क यह था कि शिक्षा का राज्यीय निधिकरण शिक्षण संस्थानों को परतंत्र बनाएगा और इस कारण उन्हें कुशलतापूर्वक कार्य करने हेतु नितांत आवश्यक सांस्थानिक स्वायत्तता से वंचित करेगा। इससे बचने के लिए, यह सुझाव दिया गया कि निजी निधिकरण के सृजन को प्रोत्साहित किया जाए। यह भी तर्क दिया गया कि लागत वसूली उपाय शिक्षा की गुणवत्ता सुधारेंगे। विद्यार्थियों को अधिक कर्मठ बनाकर भी और अध्यापकों के बीच उत्तरदेयता का गुण मन में बैठाकर भी। निजी लाभ चूँकि सामाजिक लाभों की अपेक्ष अधिक होते हैं, माना गया कि लाभार्थीजन अपनी शिक्षा हेतु स्वयं भुगतान करने के इच्छुक होंगे ही।

बाज़ार प्रस्तावकों के इस तर्क का कि शिक्षा में निवेश पर सामाजिक लाभदर निजी लाभदर से कम होती है, 'राज्य निधिकरण समर्थकों हेतु' द्वारा निम्नलिखित आधारों पर उत्तर दिया जाता है। प्रथम, सामाजिक लाभ केवल उच्चतर शिक्षा के लिए कम होते हैं जबकि स्कूली शिक्षा हेतु एक सर्वसम्मति होती है कि इसे एक सार्वजनिक हित के रूप में लिया जाए। इसके अलावा, जब सकारात्मक बाह्यताएँ ध्यान में रखी जाती हैं तो परिणामित सामाजिक लाभदर निजी लाभदर से कहीं आगे निकल जाती है। इससे शिक्षा के निधिकरण में राज्य की भूमिका निर्णायक बन जाती है। दूसरे, उपभोक्तागण प्रायः उन लाभों से अनभिज्ञ होते हैं जिन्हें वे शिक्षा में निवेश करके प्राप्त करेंगे। इसके अलावा, वे समाज पर अपनी शिक्षा के सकारात्मक अधिप्लव प्रभावों पर भी संभवतः ध्यान न दें (जैसे– सुधरता परिवार स्वास्थ्य, उत्पादकता, ग़रीबी की दरों में गिरावट, आदि)। चूँकि सरकार को इस प्रकार के निर्णय लेने में अधिक विवेकी माना जाता है, शिक्षा के प्रावधान में राज्य निधिकरण अवसर की समानता सुनिश्चित करने हेतु वांछित होता है। इसके अतिरिक्त, चूँकि हर कुटुंब/व्यक्ति शिक्षा में निवेश हेतु वांछित संसाधन संपन्न नहीं होता, राज्य परिदानों के अभाव में, केवल भुगतान में सक्षम ही स्कूल व कॉलेजों में नाम लिखवा पाएँगे। दूसरे शब्दों में, वे जो गुणवान हैं परंतु संसाधन विहीन हैं, बाहर ही रह जाएँगे।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

समता के परिणाम प्राप्त करने के लिए बाज़ार प्रस्तावकों का तर्क था कि शिक्षा ऋणों की सुलभता सुधारी जा सकती है। तथापि, चूँकि पूँजी बाज़ार अपनी ही अपूर्णताओं से पीड़ित है, इस प्रकार के उपाय यथेष्ट नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त, चूँकि मानव पूँजी लोगों में ही सम्मिलित होती है, इसे द्रव संपत्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। भावी आय अवसरों की अनिश्चितता के कारण ऐसे ऋणों का पुनर्भुगतान प्रारंभ होने के लिए एक लंबी विकसन अवधि भी होती है। इस प्रकार के कारक लोगों द्वारा ऐसे ऋण प्राप्त किए जाने के साथ-साथ संस्थाओं को भी ऋण प्रस्तुत करने से रोकेंगे। इस प्रकार, अपूर्ण पूँजी बाज़ार की विद्यमानता एक ऐसा बड़ा कारण बन जाता है जिसकी वजह से शिक्षा में निवेश करने के लिए राज्य की भूमिका को जारी रखने की आवश्यकता है। एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि विपन्न वर्ग को शैक्षणिक ऋण समावेशन एवं समता के उद्देश्य पूरे नहीं करते क्योंकि ये ऋण केवल चुनिंदा पाठ्यक्रमों/संस्थाओं के लिए ही उपलब्ध होते हैं और इस प्रकार समावेशन का उद्देश्य पूरा होना प्रायः असंभव ही होता है।

6.5.2 शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

यदि हम सकारात्मक बाह्यताओं के रूप में अधिप्लव प्रभावों पर विचार करें तो शिक्षा किसी भी स्तर पर केवल प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों पर ही नहीं, एक 'लोकहित' के रूप में लिए जाने के योग्य है। अपने नियमनिष्ठ अर्थ में, शिक्षा को एक विशेष 'गुण वस्तु' के रूप में लिया जाता है। परिभाषा के अनुसार, 'शिक्षा' जैसी कोई भी वस्तु जिसे समाज अथवा सरकार द्वारा लोक वित्त के योग्य माना जाता है, विशेष गुण वस्तु के रूप में ली जाती है। अधिक सामान्य रूप से, विशेष गुण वस्तुओं को उन वस्तुओं (अथवा सेवाओं) के रूप में लिया जाता है जो कि सरकार नहीं चाहती कि लोग महज इसलिए अल्प-उपभोग करें कि उनका उपभोग उनकी 'भुगतान करने की क्षमता' पर निर्भर करता है। ऐसे अल्प-उपभोग को रोकने के लिए सरकार या तो ऐसी सेवाओं को आर्थिक सहायता देने का विकल्प चुनती है या फिर उन्हें उनके उपभोग बिंदु पर एकदम मुफ़्त उपलब्ध कराती है। शिक्षा के सार्वजनिक के साथ-साथ विशेष गुण वस्तु के मिश्रित अभिलक्षणों की दृष्टि से शिक्षा को प्रायः 'सार्वजनिक विशेष गुण वस्तु' भी कहा जाता है। शैक्षणिक सेवाएँ प्रदान करने हेतु निवेश पर प्रभाव डालते हुए, कोई विशाल प्रतिष्ठान अथवा निर्धारित लागत और साथ ही एक पुनरावर्तक परिचालन. लागत, सरकार के निवेश सरोकारों पर प्रभाव डालते अभिलक्षण निम्नवत् हैं– (i) उपभोक्ता अनभिज्ञता; (ii) पैमाने की तकनीकी मितव्ययताएं; (iii) उत्पादन एवं उपभोग में बाह्ताएँ; तथा (iv) बाज़ार में अंतर्निहित अपूर्णताएँ (जैसे ऋण संस्थाओं का अभाव)। शिक्षा में सार्वजनिक निवेश के मुद्दे पर, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के प्रतिशत के रूप में व्यय बताने की एक परंपरा सी है (तालिका 6.1)। इस संबंध में भारत के लिए रुझान दर्शाता है कि वर्ष 1961-81 के बीच शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय 1.5 प्रतिशत से 3 प्रतिशत अर्थात् दोगुना हो गया। तदोपरांत, यह वर्ष 1981 व 2001 के बीच यह मात्र 1 प्रतिशत और बढ़ पाया (वर्ष 2001 में 4.1 प्रतिशत)। सन् 2000 के पश्चात् के वर्षों में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय कम हुआ है (उदाहरणार्थ, 2005-06, 3.3 प्रतिशत)। वर्ष 2005-06 से 2007 तक 3.5 प्रतिशत से वर्ष 2010 में यह बढ़कर 4 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) (वर्ष 2014 में) के मात्र 4.1 प्रतिशत के आस-पास रहकर शिक्षा में सार्वजनिक व्यय की गतिहीनता अन्य देशों के साथ तुलनात्मक वर्णन में नितांत विषमता दर्शाती है (नेपाल 4.7 प्रतिशत, जर्मन 4.9 प्रतिशत, अमेरिका 5.2 प्रतिशत, यूनाइटेड किंग्डम 5.7 प्रतिशत, तथा दक्षिण अफ्रीका 6.1 प्रतिशत)। जैसा कि

ऊपर बताया गया है, भारत में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय में गिरावट राजकोषीय संरोधों के कारण है, जहाँ प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के लिए अपेक्षाकृत अधिक संसाधन आबंटित किए जाते हैं, परंतु उच्च शिक्षा के लिए लागत वसूली की दिशा में रुझान नज़र आता है।

तालिका 6.1 : सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत स्वरूप शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

वर्ष	प्रतिशत
1960.61	1.5
1970.71	2.1
1980.81	3.0
1990.91	3.8
2000.01	4.1
2010.11	4.1

स्रोत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

6.5.3 वित्तीयन के वैकल्पिक स्रोत

शिक्षा संबंधी वित्त के बोझ को घटाने की दृष्टि से अनेक वैकल्पिक विधियाँ अपनाई गई हैं। इस उद्देश्य को पूरा करने का एक तरीका संस्थानों को दिए जाने वाले अर्थसहाय्य कम किए जाना है। इससे लागत साझा करने की विधियों का सहारा लेकर लागतों की वसूली आवश्यक हो जाएगी। लागत-साझेदारी एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा वित्तीयन का बोझ लाभार्थियों पर डाल दिया जाता है, यथा कुटुंब, उद्योग एवं स्वयं छात्र पर। लागत-साझेदारी मुख्यतः उच्च/व्यावसायिक शिक्षण कार्यक्रमों के संदर्भ में लोकप्रिय रूप से कार्यान्वित की जा रही है। इसके अंतर्गत अपनाई जाने वाली कुछ विधियों में शामिल हैं— (i) फ़ीस बढ़ाना; (ii) विभेदी फ़ीस प्राधार अपनाना; (iii) स्नातक कर; और (iv) छात्र ऋण।

फ़ीस बढ़ाने की विधि के अनेक रूप हैं— (i) समस्त स्नातक एवं स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में एकसमान वृद्धि; (ii) पाठ्यक्रमों की निवेश लागत के आधार पर फ़ीस वृद्धि; तथा (iii) वसूल की जाने वाली फ़ीस निर्धारित करने के लिए महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करना। इन सभी मामलों में, एकसमान पाठ्यक्रम पढ़ने वाले छात्रों से एकसमान ही फ़ीस वसूली जाती है। दूसरे शब्दों में, यहाँ भुगतान करने में सक्षम और भुगतान करने में अक्षम के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। यह दृष्टिकोण, तद्नुसार, समता के सरोकारों का उल्लंघन करता है। इसके निदान स्वरूप विभेदात्मक फ़ीस प्राधार की विधि का सुझाव दिया जाता है; यथा परिवार के आय-स्तर अथवा भुगतान क्षमता से संबद्ध पाठ्यक्रम फ़ीस। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर से आने वालों से कम फ़ीस वसूली जाती है और उच्च-आय समूहों से आने वालों से अधिक भुगतान करने को कहा जाता है। 'स्नातक कर' विधि में शिक्षित कार्यबल नियुक्त करने वाले नियोक्ताओं पर एक कर लगाया जाता है। इस विधि हेतु इस मामले को आधार बनाया जाता है कि ये जिन शिक्षित लोगों का लाभ उठा रहे हैं, उनके प्रशिक्षण पर ख़र्च नहीं कर रहे। यह विधि इस बात में अलाभकारी है कि इससे

नियोक्ता कम शिक्षित कर्मचारियों को रखने की ओर प्रेरित हो सकते हैं, जिससे शिक्षित वर्ग के बीच बेरोज़गारी की समस्या बढ़ सकती है। बहरहाल, चूँकि केवल शिक्षित कार्यबल ही उन विशिष्ट प्रकार के कार्यों को कर सकता है जो ज्ञान गहन होते हैं, इसका प्रतिस्थापन प्रभाव कम ही होने की अपेक्षा की जाती है। 'छात्र ऋण' की विधि लाभार्थियों को सीधे लक्ष्य बनाती है। जबकि सरकार द्वारा गठित अनेक समितियों ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है, यह भी कहा जाता है कि इसने समता के सरोकारों को प्रतिकूलतः प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, यह विधि उन पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहन दिए जाने की ओर प्रवृत्त कर सकती है जो उच्चतर रोज़गार बाज़ार वाले हों और साथ ही उन पाठ्यक्रमों को अनदेखी कर सकती है जो किसी सामाजिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हो सकते हों। इस विधि के साथ एक अन्य समस्या अपर्याप्त रूप से विकसित ऋण बाज़ार और ऋणों की वसूली संबंधी समस्या भी है, जो कि अनिश्चित भावी रोज़गार बाज़ारों पर निर्भर करती है।

शिक्षा के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर हेतु एक सामान्यतः अपनाई जाने वाली विधि 'पूर्व आबंटन' है। इसका अर्थ है कि किसी उद्देश्य विशेष से किसी विशेष उपकर की उगाही। सर्वशिक्षा अभियान (SSA) नामक कार्यक्रम ने इस विधि से अपने धन का बड़ा भाग सृजित किया है। अनेक देशों (विकसित एवं विकासशील दोनों) ने इस विधि को सफलतापूर्वक अपनाया है। एक अन्य विधि जो स्कूल स्तर पर सफलतापूर्वक क्रियान्वित की जा चुकी है, वह है– 'प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण' (DBT) विधि। सरकारी स्कूलों की बड़ी समस्या है– शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव डालती उत्तरदेयता। उक्त विधि (DBT) को इस समस्या का निदान बताया जाता है क्योंकि इससे ग़रीब कुटुंब/माता.पिता को अपनी पसंद के ही किसी स्कूल को चुनने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। यह एक प्रमाणक व्यवस्था है जिसमें कोई भी माता अथवा पिता किसी बच्चे को उस स्कूल में दाख़िला दिला सकता है जो उस प्रमाण-पत्र की राशि तक फ़ीस वसूल सकता हो। माता-पिता किसी भी प्रकार का संस्थान (निजी, सहायता प्राप्त अथवा सरकारी) चुन सकते हैं, जहाँ वसूली गई फ़ीस यदि प्रमाण-पत्र राशि से अधिक हुई तो परिवार द्वारा स्वयं वह अधिक राशि चुकाई जाएगी। प्रमाण-पत्र का मूल्य चूँकि 'पारिवारिक आय के प्रतिलोम' द्वारा निर्धारित किया जाता है (यथा, दरिद्रतर परिवारों को उच्चतर मूल्य के प्रमाण-पत्र मिलेंगे), इस विधि को वृहत्तर समता का साधन बन जाने की संभावना के रूप में देखा जाता है। इस विधि की एक आलोचना यह कहकर की जाती है कि यह विधि पिछड़े/ग्रामीण क्षेत्रों में कारगर सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि ऐसे इलाकों में संभवतः जाने.माने प्राइवेट स्कूल न हों। तथापि, वर्ष 2014-15 हेतु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) से प्राप्त आँकड़े दर्शाते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में निजी ग़ैर-सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों द्वारा वसूली गई प्रति माह माध्यमिक फ़ीस रु. 292/- रही जबकि शहरी क्षेत्रों में यह रु. 542/- थी। इस तथ्य के आलोक में, यह तर्क दिया जाता है कि रु. 500/- प्रति माह का एक अपेक्षाकृत कम मूल्य का प्रमाण-पत्र भी सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों तक में कुल खर्च का एक महत्त्वपूर्ण अंश निरूपित कर सकता है। उक्त विधि (DBT) के विषय में एक अन्य सरोकार यह है कि वर्तमान 'अनुदान सहायता' व्यवस्था से कैसे छुटकारा पाया जाए, जो कि अध्यापकों की वेतन अपेक्षाएँ पूरा करने के समतुल्य रखी जाती है। यह अनुदान व्यवस्था, विद्यालयों को प्राथमिकता देती है, न कि शिष्यों/छात्रों को। इस प्रकार का अनुदान छात्रों की संख्या को ध्यान में नहीं रखता है। यह अध्यापकों का उनकी उत्तरदेयता के प्रति रवैये को ठीक कर पाने के प्रयास में विफल ही रहा है। उक्त विधि (DBT) के साथ, यह कहा जाता है कि अध्यापकों को आकृष्ट करने,

प्रतिधारित करने व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करना होगा। इस विधि को लागू करने की दिशा में, सरकार 'विद्यालय समेकन' पर विचार कर रही है, जिसमें अति लघु विद्यालयों का नज़दीक के बड़े विद्यालयों के साथ विलय कर दिया जाता है और अध्यापकों को अधि-नामांकित विद्यालयों से अल्प-नामांकित विद्यालयों में पुनर्परिनियोजित कर दिया जाता है। अनेक देश (जैसे– कोलंबिया, चिली, नीदरलैंड, न्यूज़ीलैंड, अमेरिका) उक्त विधि (DBT) को उत्तर प्रभाव के साथ प्रयोग कर चुके हैं।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) शिक्षा में निकृष्ट कार्य-प्रदर्शन सुधारने के लिए किन विशिष्ट नीतियों की आवश्यकता है?

....

....

....

....

....

2) स्त्री-पुरुष समता सूचकांक (GPI) को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है?

....

....

....

....

....

3) विद्यालयों में बालिकाओं का नामांकन अनुपात किस प्रकार सुधारा जा सकता है?

....

....

....

....

....

4) इस बात को सिद्ध करने के लिए कि हाल के वर्षों में गुणवत्ता के लिहाज़ से स्कूल-स्तरीय शिक्षा व्यवस्था अवनत हुई हैं, उपलब्ध संसूचक क्या हैं?

....

....

....

....

....

5) जब बाज़ार प्रस्तावकों ने शिक्षा के सरकारी निधिकरण का विरोध किया तो कौन-से तर्क देकर इस व्यवस्था का पक्ष लिया गया?

....

....

....

....

6) शिक्षा को सार्वजनिक वस्तु कहना उचित होगा कि एक विशेष गुण वस्तु? अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए।

....

....

....

....

....

6.6 सार-संक्षेप

भारत में शिक्षा क्षेत्र के परिमाणात्मक विस्तार में भारी प्रगति हुई है। फिर भी, शिक्षा हेतु माँग उपलब्ध आपूर्ति की सीमा से बाहर विस्तारित हो चली है। इसके कारण, शिक्षा प्राप्ति में विषमता परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही मोर्चों पर दिखाई पड़ती है। हमारे नीति-निर्माताओं का एक प्रमुख चिंत्य विषय यह रहा है कि उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली रूप से, समता संबंधी सरोकारों से समझौता किए बिना, किस प्रकार किया जाए। संसाधन के मोर्चे पर औचित्य स्थापन की दिशा में, स्कूल स्तरीय शिक्षा हेतु सार्वजनिक निधिकरण और शिक्षा के उच्च स्तर हेतु लागत-साझेदारी पर विचार किया जा रहा है। स्कूल स्तर पर अध्यापकों की उत्तरदेयता संबंधी जटिल समस्या को दूर करने के लिए प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण, विद्यालय समेकन, आदि विधियाँ अपनाई जा रही हैं।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Varghese N.V. and G. Mallik, Eds. (2017). India Higher Education Report 2015, Routledge, 2017.

2) Romer, Paul M. (1990). “Human Capital and Growth: Theory and Evidence”, *Carneige- Rochester Series on Public Policy* 32: 251-86.

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) इसे जनसमुदाय द्वारा धारित ज्ञान भंडार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है और इसके दायरे में आते हैं– जानकारी, प्रतिभाएँ, कौशल, क्षमताएँ, अनुभव, प्रज्ञा, प्रशिक्षण, निर्णय, आदि। प्रो. थियोडोर डब्ल्यू. शुल्ज़।

2) लोगों के अधिकारों एवं अवसरों को शामिल करने और उसे समग्र मानव क्षेम से जोड़कर। यह, तद्नुसार, एक वृहत्तर संकल्पना है जो मानव मात्र को स्वयं में साध्य मानता है।

3) व्यापक सुलभता, व्यापक नामांकन, व्यापक धारण, व्यापक उपलब्धि तथा समता।

4) संस्थाओं के लिहाज से 6 गुना और नामांकन के लिहाज से 9 गुना (क्रमशः 2 लाख से 13 लाख और 2.2 करोड़ से 19.8 करोड़)।

5) 'समान स्कूल प्रणाली' के तहत, किसी क्षेत्र विशेष में स्थित स्कूलों के लिए यह आवश्यक है कि वे पड़ोस में रह रहे निम्न-आय परिवारों से विद्यार्थियों को प्रवेश दें।

6) महाविद्यालय 38 गुना तक, विश्वविद्यालय 28 गुना तक और महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में नामांकन 86 गुना तक।

7) नहीं। कारण : त्वरित विस्तार, उच्चतर, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षण क्षेत्रों में लंबे समय से लंबित सुधारों के साथ नहीं हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) स्कूल में हाज़िरी के लिए प्रोत्साहन, मिडिल/हाई स्कूल पाठ्यक्रम को रोज़गारोन्मुखी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए सरल बनाना, आदि।

2) इसे 'बालिकाओं एवं बालकों के सकल नामांकन के सापेक्ष अनुपात' के रूप में परिभाषित किया जाता है।

3) विद्यालयों में अध्यापिकाओं का अनुपात (प्रति 100 अध्यापक) बढ़ाने पर ध्यान देकर (उपभाग 6.4.1)।

4) शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट, जिसने ऐसे बच्चों के गिरते अनुपात की रिपोर्ट दी जो वर्ष 2005-2010 के दौरान एक स्तर से दूसरे स्तर के लिए पात्रता दर्शा सकते थे (उपभाग 6.4.2)।

5) सकारात्मक बाह्यताओं को विचारार्थ लिए जाने पर सामाजिक लाभ उच्च शिक्षा में भी ऊँचे माने गए। शिक्षा के निम्नतर स्तर (किसी भी स्थिति में), सार्वजनिक वस्तु की भाँति माने जाते हैं जो कि समग्र समाज को लाभ पहुँचाएंगे।

6) चूँकि शिक्षा के लाभ समग्र समाज को पहुँचते हैं, न कि सिर्फ़ उसको जो शिक्षित होता है, इसमें एक सार्वजनिक वस्तु का अभिलक्षण है। तथापि, ठीक इसी कारण, चूँकि इसके ग़ैर-सरकारी निधिकरण के कारण कुछ लोग इससे अल्प-लाभान्वित हो सकते है, इसे अधिक सटीक रूप से 'विशेष गुण वस्तु' के रूप में स्वीकार किया जाता है।

इकाई 7 स्वास्थ्य तथा पोषण*

संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 विषय प्रवेश

7.2 स्वास्थ्य एवं पोषण का मापदंड : अवधारणाएँ

7.2.1 कुपोषण

7.2.2 सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष/अशक्तता-समंजित जीवन वर्ष

7.3 स्वास्थ्य व्यय

7.3.1 स्वास्थ्य व्यय के स्रोत

7.4 भारत में जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली

7.4.1 निवारक एवं रोगहर स्वास्थ्य परिचर्या

7.4.2 स्वास्थ्य वित्तीयन

7.5 भारत में स्वास्थ्य नीति

7.5.1 राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति

7.6 सार-संक्षेप

7.7 शब्दावली

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी अवधारणाओं को स्पष्ट कर सकें;
- प्रमुख संकेतकों के आधार पर स्वास्थ्य एवं पोषण की स्थिति स्पष्ट कर सकें;
- स्वास्थ्य व्यय बढ़ाने में योगकारी कारकों को पहचान सकें;
- भारतीय जन स्वास्थ्य प्रणाली की संरचना समझा सकें;
- निवारक एवं रोगहर स्वास्थ्य परिचर्या आवश्यकताओं में भेद कर सकें;
- भारत में स्वास्थ्य रक्षा वित्तीयन में रुझानों पर चर्चा कर सकें; और
- भारत में सरकार द्वारा लाई गई विभिन्न स्वास्थ्य नीतियों के अभिलक्षणों की रूपरेखा बना सकें।

7.1 विषय प्रवेश

अंग्रेज़ी में एक आम कहावत है– 'हैल्थ इज़ वैल्थ' अर्थात् 'स्वास्थ्य ही धन है'। एक मानव विकास के दृष्टिकोण से उत्तम स्वास्थ्य एवं पोषण किसी व्यक्ति के शारीरिक एवं संज्ञानात्मक विकास में अपना अमूल्य योगदान करते हैं। कुपोषण संक्रमण के प्रति

---

* डॉ. स्मृतिकन घोष, सहायक आचार्य, स्कॉटिश कॉलेज, कोलकाता

संवेदनशीता बढ़ा देता है और स्वास्थ्य लाभ विलम्बित करता है, जिससे देश के लिए रोग और रुग्णता का बोझ विशाल रूप ले लेता है।

कुपोषण असंसर्गजनित रोगों से जुड़े मामलों की संख्या बढ़ा भी देता है, जिससे स्वास्थ्य परिचर्या संबंधी लागत बेतहाशा बढ़ जाती है। तथापि, अधिकांश विकासशील एवं अल्प-विकसित देशों में, दुर्भाग्यवश, अस्वस्थता या बुरे स्वास्थ्य को एक दीर्घकालिक समस्या है, जहाँ भारत अपने स्वास्थ्य एवं पोषण पदानुक्रम की दृष्टि से बहुत निचले स्थान पर है। विशेष रूप से, बच्चों के मामले में स्थिति कहीं अधिक संवेदनशील है क्योंकि विश्व बैंक के अनुसार, भारतीय बच्चों का 22 प्रतिशत रोग प्रभाव तो कुपोषण के कारण ही है।

वैचारिक रूप से, **स्वास्थ्य** का अर्थ है – 'रोग-व्याधियों से मुक्ति'। आनुभविक रूप से, इसे रोग-व्यापकता दरों और प्रकार्यात्मक अशक्तता मापदंडों के द्वारा मापा जाता है। किसी व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है यदि वह उसकी निम्न रोग-व्याप्ति दर और शून्य प्रकार्यात्मक अशक्तता हो। दूसरी ओर, **पोषण**, पोषाहार का एक मापदंड है। यह उस प्रक्रिया से संबंध रखता है जिससे होकर हमारा शरीर हमारे द्वारा ग्रहण किए गए भोजन में विद्यमान पोषक तत्वों की वांछित मात्रा अवशोषित करता है। स्वास्थ्य स्थिति तद्नुसार किसी व्यक्ति अथवा समुदाय की पोषण की स्थिति से अभिन्न रूप से जुड़ी होती है।

7.2 स्वास्थ्य एवं पोषण का मापदंड : अवधारणाएँ

भारत के विकास के वर्तमान स्तर पर दृष्टि डालें तो उसका स्वास्थ्य परिदृश्य भी सुधर रहा है। शिशु मृत्यु दर (IMR) और पाँच-पूर्व (पाँच वर्ष पूर्ण करने से पहले) मृत्यु दरों के लिहाज से भारत में महत्त्वपूर्ण रूप से सुधार आया है। पिछले दो दशकों की अवधि में (1992-93 से 2015-16 तक), शिशु मृत्यु दर 86 से 41 पर और पाँच-पूर्व मृत्यु दर 119 से 50 पर आ गई (तालिका 7.1)। हमारे लिए यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि ये प्रमुख संकेतक किस प्रकार मापे और आकलित किए जाते हैं।

तालिका 7.1 : भारत की स्वास्थ्य स्थिति : (1993.2016)

स्वास्थ्य स्थिति	NFHS I (1992-93)	NFHS II (1998-99)	NFHS III (2005-06)	NFHS IV (2015-16)
शिशु मर्त्यता	86.3	73	57	41
पाँच-पूर्व मर्त्यता	118.8	101.4	74	50
नवजात मर्त्यता	52.7	47.7	NA	NA
उत्तर-नवजात मर्त्यता	33.7	25.3	NA	NA
मातृ मर्त्यता दर	437	530	NA	NA
अशोधित मृत्यु दर	9.7	9.7	NA	NA

स्रोत : *राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण*–I, II, III और IV उपलब्ध नहीं।

शिशु मर्त्यता – किसी नवजात शिशु की मृत्यु उसके प्रथम जन्मदिवस से पूर्व ही हो जाने की संभावना को शिशु मर्त्यता कहा जाता है। संख्यात्मक रूप से, यह किसी वर्ष में शिशु मृत्यु संख्या प्रति 1000 नवजात संख्या है। संक्षेप में, IMR के रूप में लिखे जाने पर : IMR = (शिशु मृत्यु संख्या / जीवित जन्में शिशुओं की संख्या) × 1000. उदाहरण के लिए, मान लीजिए वर्ष 2016 में, किसी राज्य के निवासियों के बीच शिशु मृत्यु संख्या 1300 है और राज्य में जीवित जन्में शिशुओं की संख्या 150000 है। तब

IMR= (1300 / 150000)×1000 = 8.7. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, विश्व की पांच-पूर्व मृत्यु संख्या का 75 प्रतिशत शिशु जीवन के प्रथम वर्ष के भीतर ही है।

पाँच-पूर्व मर्त्यता इसे 'बाल मर्त्यता' भी कहा जाता है। यह प्रथम और पाँचवें जन्मदिवस के बीच मरने की प्रायिकता है, जिसे मृत्यु संख्या प्रति 1000 प्रति वर्ष के रूप में मापा जाता है। इसे इस रूप में मापा जाता है : बाल मर्त्यता (CMR) = (D/N)×1000 जहाँ D = आकलन वर्ष के दौरान 0-4 वर्ष के बीच मृत्यु संख्या तथा N = आकलन वर्ष के दौरान जीवित जन्मी संख्या। परिकलन के उद्देश्य से आँकड़े नवजात पंजीकरण के लिए जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, विश्व में लगभग 90 लाख बच्चे अपना 5वाँ जन्मदिन मनाने से पूर्व ही मर जाते हैं। इस प्रकार की मृत्यु के कारण होते हैं– निमोनिया, अतिसार व कुपोषण।

नवजात मर्त्यता – यह जन्मोपरांत किसी शिशु के जीवन के प्रथम माह अथवा प्रथम 28 दिनों के भीतर ही मर जाने की प्रायिकता है।

तद्नुसार, नवजात मर्त्यता = (नवजात मृत्यु संख्या / कुल जीवित जन्मी संख्या) × 1000. यूनिसेफ (UNICEF) के अनुसार, नवजात मर्त्यता वर्ष 1990 में 36 मृत प्रति 1000 जीवित जन्म की संख्या वर्ष 2015 में घटकर 19 मृत प्रति 1000 जीवित जन्म रह गई।

उत्तर-नवजात मर्त्यता – यह शिशु और नवजात मर्त्यता के बीच अंतर है अर्थात् किसी भौगोलिक क्षेत्र विशेष में निवासी जीवित नवजात संख्या द्वारा (उसी क्षेत्र में) विभाजित 28 दिन व 364 दिनों के बीच मरने वाले नवजातों की संख्या है। मर्त्यता दर प्रति 1000 जीवित नवजात दर्शाने के लिए उक्त मान को 1000 से गुणा कर दिया जाता है। तद्नुसार, उत्तर.नवजात मर्त्यता = (निवासी उत्तर जन्म मृत्यु संख्या / कुल निवासी जीवित जन्म संख्या) × 1000.

मातृ मर्त्यता दर – यह दर उन स्त्रियों की संख्या बतलाता है जो प्रति 1,00,000 जीवित प्रसव एवं गर्भधारण संबंधी जटिलता के परिणामस्वरूप मर जाती हैं। यह इस प्रकार, गर्भधारण से जुड़े जोखिम की ओर संकेत करती है। तद्नुसार, मातृ मर्त्यता दर (MMR) = (किसी संदर्भ अवधि के दौरान प्रसव मृत्यु संख्या / उसी संदर्भ अवधि के दौरान जीवित जन्मों की कुल संख्या) × 1,00,000। यूनिसेफ (UNICEF) के अनुसार, वर्ष 1990 और 2015 के बीच मातृ मर्त्यता दर घटक लगभग आधी अर्थात् 50 प्रतिशत रह गई।

उपर्युक्त संकेतकों के अनुसार भारतीय स्वास्थ्य परिदृश्य तालिका 7.1 में इंगित किया गया है। यह दर्शाता है कि सिवाय मातृ मर्त्यता दर और अशोधित मृत्यु दर के, अन्य सभी दरें गिर रही हैं। अशोधित मृत्यु (प्रतिवर्ष प्रति 1000 मृत्यु संख्या के रूप में परिभाषित) प्रथम दो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षणों (NFHS) में अचर रही किंतु मातृ मर्त्यता दर उसी अवधि में बढ़ी है।

7.2.1 कुपोषण

कुपोषण अति-पोषण भी हो सकता है और न्यून-पोषण भी। न्यून-पोषण निम्न-भार अर्थात् कम वज़न, रुद्ध विकास एवं दुबलापन आदि सूचकों से मापा जाता है। **दुबलापन** सर्वेक्षण से तत्काल पूर्व अवधि में पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता को

दर्शाता है और कुपोषण के विस्तार का संकेत देता है। यह अपर्याप्त भोजन लेने अथवा किसी हालिया बीमारी से कम वज़न हो जाने और कुपोषण प्रारंभ हो जाने के फलस्वरूप हो सकता है। ऐसे व्यक्ति जिनकी लम्बाई-भार का अनुपात Z-मान –3SD (संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से ऋण तीन मानक विचलन) से नीचे हो तो उन्हें 'गंभीर रूप से कुपोषित' और जो –2SD से नीचे हों, उन्हें 'कुपोषित' कहा जाता है। तद्नुसार, यदि ऐसे 10 व्यक्ति हों जिनका Z-मान क्रमशः इस प्रकार हो– यथा, –4.1SD, –3.9SD, –31SD, –2.8SD, –2.1SD, –2.0SD, –1.1SD, 1.5SD, 1.9SD और 2.5SD, तो प्रथम तीन व्यक्ति गंभीर रूप से कुपोषित हैं, अगले तीन व्यक्ति कुपोषित हैं और अंतिम चार पोषित हैं। ध्यान दें कि ऋणात्मक पक्ष में, –1SD तक, एक सीमांत व्यक्ति को कुपोषित श्रेणी में न रखे जाने के लिए छोड़ा गया है। इसी प्रकार आयु लम्बाई अनुपात 'सेंटीमीटर में लम्बाई और महीनों में आयु' का अनुपात है। इस अनुपात को Z-मान 'रैखिक वृद्धि मंदन' एवं 'संचयी वृद्धि न्यूनता' के एक संकेतक के रूप में लिया जाता है। कुपोषण की सीमा में आने वाले, वे लोग जिनकी आयु–लंबाई का Z-मान संदर्भ समुदाय की माध्यिका से –2 SD से कम है, अपनी आयु के लिए 'रुद्ध विकसित' माने जाते हैं और उन्हें 'कुपोषित' की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार, जब यह Z-मान –3SD से कम होता है तो व्यक्ति को 'गंभीर रूप से रुद्ध' विकसित अथवा 'दीर्घकालिक रूप से कुपोषित' कहा जाता है। रुद्ध विकास एक लम्बी अवधि तक पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता दर्शाता है। इस प्रकार की विफलताएँ पुनरावर्त्तक एवं दीर्घकालिक अस्वस्थता द्वारा भी प्रभावित होती हैं।

आयु–भार अनुपात : आयु-लंबाई और लंबाई-भार का एक संश्लिष्ट संसूचक है जो प्रचंड और दीर्घावधिक कुपोषण दोनों का ध्यान रखता है। ऐसे व्यक्ति जिनकी आयु–भार संदर्भ समुदाय की माध्यिका से –2SD नीचे हो, **न्यून-भार** श्रेणी में आते हैं। कभी-कभी रक्ताल्पता स्तर भी न्यून-पोषण के सूचक के रूप में लिया जाता है। पोषण संबंधी साहित्य में वयस्क कुपोषण तथा बाल कुपोषण के बीच भेद इस प्रकार किया जाता है :

वयस्क कुपोषण शरीर-संहति-सूचक (BMI), रक्ताल्पता स्तर एवं भाराधिक्य से मापा जाता है। उक्त सूचक (BMI) लम्बाई-वर्ग द्वारा विभाजित भार' के रूप में मापा जाता है (यथा, किलोग्राम/मीटर^2, जहाँ भार किलोग्राम में और लम्बाई मीटर में व्यक्त है)। इस सूचक का मान मानक से नीचे होता है तो वह 'कुपोषित' कहलाता है। दूसरी ओर, जब यह सूचक 25 से अधिक होता है तो व्यक्ति 'मोटा' कहलाता है। रक्ताल्पता के शिकार लोगों में, उक्त सूचक (BMI) स्त्रियों के लिए 12 और पुरुषों के लिए 13 लिया जाता है। भारत में, कालान्तर में न्यून-भार स्त्रियों और पुरुषों के अनुपात में ह्रासमान रुझान देखा गया है (तालिका 7.2)। तथापि, गत 15 से 20 वर्षों में अति-भार स्त्री-पुरुषों के प्रतिशत महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़े हैं। यह बहुत भयप्रद है। इसी काल वितान में रक्ताल्प स्त्री-पुरुषों के प्रतिशत में कोई महत्त्वपूर्ण गिरावट नहीं आई। यह भी एक मुख्य चिंतनीय विषय है। भारत में **न्यून-भार** बच्चों हेतु रुझान लगातार गिर रहा है (यह 1992-93 में 52 प्रतिशत से घटकर 2015-16 में 38 प्रतिशत रह गया)।

तालिका 7.2 : वयस्क एवं बाल कुपोषण : 1993.2016

वयस्क कुपोषण (BMI)	NFHS I (1992-93)	NFHS II (1998-99)	NFHS III (2005-06)	NFHS IV (2015-16)

सामान्य (18.5) से कम, स्त्रियों का BMI	NA	35.8	35.5	22.9
सामान्य (18.5) से कम पुरुषों का BMI	NA	NA	34.2	20.2
स्त्रियों का रक्ताल्पता स्तर (आयु 15–49) (12)	NA	51.8	55.3	53
पुरुषों का रक्ताल्पता स्तर (आयु 15–49)(13)	NA	NA	24.2	22.7
अति-भार स्त्रियाँ (>25)	NA	10.6	12.6	20.7
अति-भार पुरुष (>25)	NA	NA	9.3	18.6
न्यून-भार बच्चे (%)	53.4	47	42.5	35.7
दुबले बच्चे (%)	7.5	5.5	9.8	21
रुद्ध-विकास ग्रस्त बच्चे (%)	52	45.5	48	38.4

स्रोत : राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) –I, II, III और IV, उपलब्ध नहीं।

बहरहाल, दुबले बच्चों का प्रतिशत जो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-II (NFHS-II) तक घट रहा था, 2015-16 में अब तक का सर्वाधिक, यानी 21 प्रतिशत, तक पहुँच गया है। रुद्ध.विकास ग्रस्त बच्चों का प्रतिशत भी उक्त सर्वेक्षण (NFHS-II) तक गिर रहा था, परंतु वह भी तृतीय सर्वेक्षण (NFHS-III) में बढ़कर 48 प्रतिशत हो गया किन्तु जो चतुर्थ सर्वेक्षण (NFHS-IV) में पुनः घटकर 38.4 प्रतिशत रह गया।

7.2.2 सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष/अशक्तता-समंजित जीवन वर्ष

उपर्युक्त मापदंडों के अलावा, लोगों का स्वास्थ्य मानक निर्धारित करने हेतु दो और लोकप्रिय मापदंड हैं। ये हैं– सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष (QALY) और अशक्तता. समंजित जीवन वर्ष (DALY)। पूर्ववर्ती (QALY) एक रोगभार का मापदंड है जिसमें जिए गए जीवन की गुणवत्ता एवं आयु दोनों शामिल होते हैं। एक QALY का अर्थ है – संपूर्ण स्वास्थ्य का एक वर्ष। दूसरी ओर; परवर्ती (DALY) में मापा जाता है कि खराब स्वास्थ्य, अशक्तता अथवा अल्पायु मृत्यु के कारण कितने वर्षों की हानि हुई। अतः, परवर्ती (DALY) स्वास्थ्य हानि दर्शाता है और पूर्ववर्ती (QALY) स्वास्थ्य लाभ दर्शाता है (यथा, QALY और DALY परस्पर विपरीत हैं)। इस प्रकार, व्यवहार में, परवर्ती (DALY) और पूर्ववर्ती (QALY) के बीच अंतर इस बात पर निर्भर करता है कि जीवन की गुणवत्ता हानि (DALY) के रूप में दर्शाई गई है अथवा लाभ (QALY) के रूप में। इसके अतिरिक्त किसी भी अंतर पर विचार उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार, रोग-भार निर्दिष्ट हों।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) स्वास्थ्य एवं पोषण को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है?

....

....

....

....

....

....

2) पाँच प्रमुख स्वास्थ्य सूचक कौन-से हैं? इनमें से किनमें 1990 और 2015 की अवधि में अंतर्राष्ट्रीय रूप से लगभग 50 प्रतिशत तक की गिरावट आई है?

....

....

....

....

....

3) न्यून-पोषण के तीन उप-संघटक कौन-से हैं? उन्हें कैसे मापा जाता है?

....

....

....

....

4) 'वयस्क कुपोषण' किस प्रकार मापा जाता है? भारत के लिए इस संबंध में क्या उल्लेखनीय रुझान हैं?

....

....

....

....

....

5) भारत में न्यून-भार बच्चों के संबंध में क्या रुझान रहा है?

....

....

....

....

....

6) सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष और अशक्तता-समंजित जीवन वर्ष की अवधारणाओं के बीच भेद कीजिए।

....

....

....

7.3 स्वास्थ्य व्यय

विगत वर्षों में, विश्वभर में, स्वास्थ्य परिचर्या पर व्यय निरंतर बढ़ा है। आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD) के सदस्य देशों में चिकित्सा व्यय को समर्पित सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का अंश 1979 में 5.1 प्रतिशत से बढ़कर 2006 में 8.9 प्रतिशत हो गया। भारत में जन-स्वास्थ्य व्यय पर अनुरूप आँकड़े 1995 में सकल घरेलू उत्पाद के 1.1 प्रतिशत से मामूली रूप से बढ़कर 2014 में सकल घरेलू उत्पाद का 1.4 प्रतिशत हो गए। स्वास्थ्य परिचर्या को समर्पित सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत, खासकर जन.स्वास्थ्य व्यय, सभी देशों के समक्ष जन-वित्तीयन की चुनौती बना है। इसके लिए, उत्तरदायी कारकों को मोटे तौर पर निम्नलिखित दो शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

माँग कारक

क) जनसमुदाय की वृद्धता : जनसमुदाय की औसत आयु में वृद्धि के साथ चिकित्सा रक्षा हेतु माँग भी बढ़ रही है।

ख) आय : यह आमतौर पर माना जाता है कि प्रति व्यक्ति सकल-घरेलू-उत्पाद संवृद्धि और स्वास्थ्य व्यय के बीच एक मज़बूत संबंध है। तथापि, स्वास्थ्य परिचर्या व्यय हेतु माँग की आय सुगम्यता भौगोलिक स्थिति, समय-सीमा आदि अनेक कारकों पर निर्भरता के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है।

ग) बीमा बाज़ार का प्रसार : वर्धमान स्वास्थ्य बीमा बाज़ार भी स्वास्थ्य परिचर्या व्यय हेतु माँग बढ़ा रहा है क्योंकि बीमा बढ़ती स्वास्थ्य परिचर्या लागत के जोखिम को संरक्षण देने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

आपूर्ति कारक

क) आपूर्तिकर्ता-प्रेरित माँग : कभी-कभी स्वास्थ्य-सेवा आपूर्तिकर्ता अपना बाज़ार भाग बढ़ाने के लिए स्वास्थ्य परिचर्या सुविधाओं की माँग का सृजन करते हैं। इसे आपूर्तिकर्ता-प्रेरित माँग कहा जाता है। ऐसा विभिन्न प्रकार से किया जाता है, जैसे– नई चिकित्सा प्रौद्योगिकी अपनाकर, ऐसी दवाएँ एवं उपचार प्रदान करके जो रोगी की दशा से कतई संबंध नहीं रखते, आदि।

ख) सामान्य-आर्थिक संवृद्धि : देश की आर्थिक संवृद्धि जनसमुदाय का जीवनस्तर सुधार रही है जिसने उन्नत चिकित्सा प्रौद्योगिकी की उपलब्धता को भी बढ़ा दिया है। इससे स्वास्थ्य परिचर्या व्यय की माँग उत्प्रेरित होती है।

7.3.1 स्वास्थ्य व्यय के स्रोत

स्वास्थ्य परिचर्या पर व्यय हेतु दो वृहद् मार्ग हैं – (i) सार्वजनिक व्यय के माध्यम से राज्य (यथा, जन-स्वास्थ्य व्यय– PHE); और (ii) अपने व्यक्तिगत व्यय के माध्यम से लोग/परिवार (यथा, जेब-से-व्यय– OPE)। सार्वजनिक व्यय में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संबंधी सभी सरकारी खर्च आते हैं। इसमें चिकित्सा शिक्षा, अनुसंधान, अस्पताल, जन-स्वास्थ्य केंद्रों आदि पर होने वाले व्यय के साथ-साथ सरकार द्वारा दिए जाने वाले विभिन्न प्रकार के साहाय्य भी शामिल होते हैं (जैसे– देशभर में उत्तर

से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम कार्यरत प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों PHCs का विशाल संजाल, ईएसआई/सीजीएचएस जैसी सरकारी योजनाएँ, चिकित्सा पुनर्पूतियाँ, आदि)। स्वास्थ्य व्यय, आमतौर पर, इन कारणों से बढ़ रहा है—(i) बढ़ी जीवन.प्रत्याशा; (ii) वृद्ध आबादी का अंश बढ़ने के साथ जनांकीय परिवर्तन; और (iii) दीर्घकालिक रोगों में वृद्धि। जबकि भारत में प्रति-व्यक्ति जन-स्वास्थ्य व्यय 1995-2014 की अवधि में लगभग पाँच गुना बढ़ा है, जैसा कि हमने ऊपर देखा, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के प्रतिशत के रूप में यह 1995-2014 की अवधि में 1.1 से अंशतः बढ़कर मात्र 1.4 प्रतिशत ही हो पाया है (तालिका 7.3)। जेब-से-व्यय (OPE), दूसरी ओर (जो कि परिभाषा से लागत सहयोग व रोगियों और उनके परिवारों द्वारा स्वयं उठाए गए अन्य खर्चों का संदर्भ देता है), बहुत ऊँचा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के आकलन के अनुसार, भारत में स्वास्थ्य परिचर्या पर कुल जेब-से-व्यय 2005 में 76 प्रतिशत से बढ़कर 2012 में लगभग 90 प्रतिशत हो गया है। दरअसल, इस खर्च (OPE) में इसी प्रकार का रुझान इस काल में अनेक देशों में देखा गया है।

तालिका 7.3 : भारत में स्वास्थ्य व्यय की रूपरेखा—1995-2014

भारत	प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य व्यय (अमेरीकी $)	जन-स्वास्थ्य व्यय (स.घ.उ. केरूप में)	जन-स्वास्थ्य व्यय—कुल सरकारी खर्च के रूप में)	जन-स्वास्थ्य व्यय—कुल स्वास्थ्य व्यय के रूप में)
1995	16	1.1	4.3	26.2
2014	75	1.4	4.4	30

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)

तालिका 7.4 : कुल स्वास्थ्य व्यय (THE) में जेब-से-व्यय (OPE) का अंश

देश	THE में OPE का अंश (2005)	THE में OPE का अंश (2015)
भारत	76.1	89.2
पाकिस्तान	80.9	86.8
बांग्लादेश	62.6	92.9
नेपाल	62.6	79.9

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)

7.4 भारत में जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली

जन-स्वास्थ्य समाज में संगठित प्रयासों एवं जानकारी के आधार पर चयनों के माध्यम से रोग निवारण, जीवन प्रवर्धन एवं मानव स्वास्थ्य संवर्धन की प्रक्रिया है। स्वास्थ्य परिचर्या में न केवल चिकित्सा परिचर्या आती है, बल्कि निवारक परिचर्या के अनेक पहलू भी आते हैं। भारतीय स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली पश्चगामी है क्योंकि निजी जेब-से-व्यय स्वास्थ्य परिचर्या वित्तीयन की लागत पर भारी रहता है। एक आदर्श स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली वित्तीय लागत के निष्पक्ष वितरण एवं सक्षम सेवा-प्रदायकों के साथ सभी को सुलभ होनी चाहिए।

स्वास्थ्य परिचर्या व्यय को सार्वजनिक और निजी व्यय में विभाजित किया जा सकता

है। सरकार द्वारा अपनाई गई अनेक विकासोन्मुखी नीतियों के बावजूद आर्थिक/क्षेत्रीय/और स्त्री-पुरुष विषमताएँ भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए चुनौतियाँ ही बनी रही हैं। उदाहरण के लिए, 75 प्रतिशत स्वास्थ्य संसाधन शहरी क्षेत्रों में संकेंद्रित हैं, जहाँ केवल 27 प्रतिशत जनसंख्या ही रहती है। इस विषमता को दूर करने के लिए जन-स्वास्थ्य नीति को स्वास्थ्य संबंधी सामाजिक निर्धारकों को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य संवर्धन तथा रोग निवारण एवं नियंत्रण पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जन-स्वास्थ्य नीति का ध्यान-केंद्र न सिर्फ रोग की रोकथाम करने पर होना चाहिए, बल्कि सामाजिक स्तर पर संगठित कार्रवाई के माध्यम से स्वास्थ्य को प्रोत्साहन देना भी होना चाहिए।

भारत एक व्यापक रूप से विविध सामाजिक-राजनीतिक जनांकिकीय एवं रुग्णता प्रतिमानों वाला विश्व का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है। भारत के अधिकांश राज्यों के सामने गंभीर स्वस्थ जन-शक्ति का अभाव है। इस अभाव को दूर करने के लिए बड़ी संख्या में स्वास्थ्य सेवा-प्रदाताओं, प्रबंधकों एवं सहायक कर्मियों की आवश्यकता है। अनेक राज्य किसी संगत रीति से मूलभूत, न्यूनतम जीवन-रक्षक सेवाएँ मुहैया कराने तक में अक्षम हैं। भारत में, जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली की चुनौतियाँ, इस प्रकार, संक्षेप में प्रस्तुत की जा सकती हैं– (i) जन-स्वास्थ्य परिचर्या हेतु अपर्याप्त संसाधन उपलब्धता; (ii) गंभीर भौगोलिक एवं सामाजिक विषमता; (iii) स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बीच अपर्याप्त एकीकरण; (iv) सामुदायिक संकेंद्रण का अभाव; (v) खंडित प्रकार्यात्मक दायित्व; (iv) प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या पर अपर्याप्त ध्यान; (vii) अपर्याप्त जन-स्वास्थ्य उन्मुखता; आदि।

7.4.1 निवारक एवं रोगहर स्वास्थ्य परिचर्या

निवारक स्वास्थ्य परिचर्या का तात्पर्य रोगोपचार के विपरीत रोग की रोकथाम हेतु किए जाने वाले उपायों से है। इसमें रोग होने से रोकना अथवा उसे टालना अथवा रोग का और अधिक प्रसार अथवा प्रकरण घटाना शामिल होता है। इसके लिए उठाए गए अनेक कदमों में शामिल हैं– (i) मद्य दुरुपयोग परामर्श; (ii) रक्तचाप जाँच; (iii) कोलेस्ट्रॉल जाँच; (iv) अवसाद जाँच; (v) मधुमेह एवं आहार परामर्श; (vi) हैपटाइटिस (पीलिया) 'बी' और 'सी' की जाँच; (vii) उपदंश जाँच; (viii) रक्ताल्पता जाँच; (ix) स्तनपान के महत्त्व के प्रचार का अभियान; (x) फॉलिक एसिड अनुपूरक; (xi) मूत्रमार्ग संक्रमण जाँच; (xii) स्वलीनता जाँच (18–24 माह); (xiii) प्रतिरक्षाकरण/टीकाकरण; (xiv) लौह अनुपूरक; (xv) दृष्टि जाँच; आदि।

रोगहर या आरोग्यकर स्वास्थ्य परिचर्या से अभिप्राय है– किसी रोग के उपचार हेतु मरीज़ों की मदद करने के लिए अस्पताल में भर्ती कराना। वर्तमान में भारत में 5 लाख से अधिक प्रशिक्षित डॉक्टर, 7 लाख सहायक आय प्रसाविकाएँ (AWMs), 22,975 जन-स्वास्थ्य केंद्र (PHCs) एवं 2,935 बाल स्वास्थ्य परिचर्या केंद्र (CHCs) हैं। कुल 22,000 औषधालय तथा 2,800 अस्पताल भी हैं। इसके बावजूद सुविधाओं, आपूर्ति एवं कर्मचारियों का अभाव बना ही हुआ है। विभिन्न राज्य-संचालित इकाइयों की मुख्य समस्या आय-अभाव अर्थात् बजट की कमी है। पुनरावर्ती लागतों के लिए न्यून-प्रावधान एक अन्य समस्या है। निजी अस्पतालों को किसी सामाजिक दायित्व की पूर्ति हेतु शर्तों के साथ उदार कर संरचना वाली रियायती ज़मीन दी जाती है। तथापि, यह सुनिश्चित करने के लिए कोई उचित जाँच-पड़ताल व्यवस्था नहीं है कि वे इन दायित्वों का पालन कर भी रहे हैं या नहीं। बड़ी संख्या में निजी डॉक्टरों और डॉक्टर.

अभिकरणों द्वारा चलाए जा रहे उपचार गृहों पर कोई समुचित गुणवत्ता नियंत्रण भी नहीं है।

7.4.2 स्वास्थ्य वित्तीयन

एक विचार से स्वास्थ्य परिचर्या व्यय अधिकांशतः स्वतंत्र रूप से चुने जाने की बजाय लोगों पर थोपे जाते हैं। एक और भी गंभीर आवश्यकता यह है कि वित्त प्रबंध 'चुकाने की क्षमता' के अनुसार होना चाहिए। एक प्रगतिशील वित्तीयन प्राधार स्वास्थ्य परिचर्या व्यय का बड़ा हिस्सा ग़रीबों की बजाय अमीरों की आय से लेता है। यदि स्वास्थ्य परिचर्या व्यय का नितांत स्तर अमीर और ग़रीब के लिए लगभग एक-सा ही हो तो यह व्यय गरीबों की आय के अधिकांश भाग के समान (समस्त से अधिक भी) हो सकता है। अनेक अध्ययन दर्शाते हैं कि प्रयोक्ता शुल्क विकासशील देशों की स्वास्थ्य परिचर्या वित्तीयन प्राधार में एक सशक्त पश्चगामी कदम ही है।

स्वास्थ्य वित्तीयन दो भागों में विभाजित है– लोक वित्तीयन और निजी अथवा व्यक्तिगत वित्तीयन। सरकार के समक्ष (i) कितना निवेश कहाँ किया जाए, और (ii) स्वास्थ्य निवेश में दक्षता एवं निष्पक्षता के बीच संतुलन बनाए रखने में ये मुख्य चुनौतियों आती हैं : (क) बढ़ता जन-स्वास्थ्य व्यय (जिसकी वजह से सरकार, बजट बढ़ाने के अतिरिक्त, कभी-कभी सेवाएँ प्रदान करने के लिए निजी क्षेत्र के साथ साझेदारी करती है। जैसे, पल्स पोलियो टीकाकरण); (ख) उपलब्ध अपर्याप्त संसाधनों का अधिक कुशल और प्रभावी प्रयोग; (ग) बढ़ती स्वास्थ्य परिचर्या लागत से ग़रीबों को संरक्षण प्रदान करना।

उपर्युक्त में से प्रथम, अर्थात् जन-स्वास्थ्य व्यय के उद्देश्य पर हम भाग 7.3 में संक्षिप्त चर्चा कर चुके हैं। बजट के कुशल प्रयोग विषयक दूसरे उद्देश्य के संबंध में सरकार ने अभी हाल ही में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) के तहत अपनी आधारिक संरचना को पुनर्व्यवस्थित किया है। इसके बाद वह उद्देश्य आता है जो ग़रीब और ज़रूरतमंदों को बढ़ता स्वास्थ्य परिचर्या लागत चुका पाने में वित्तीय सहायता से संबद्ध है। यह उद्देश्य, कम से कम अंशतः एक ऐसा स्वस्थ स्वास्थ्य बीमा बाज़ार स्थापित करने की संस्थागत कार्यप्रणाली से संबद्ध है जिसमें सरकार की विनियामक भूमिका का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होगा।

विगत दो दशकों में, केंद्र व राज्य सरकारें समाज के अभावग्रस्त वर्गों की स्वास्थ्य लागतों को चुकाने के लिए बीमा की किश्त भी देती रही है। इन प्रयासों के साथ भी स्वास्थ्य बीमा किश्त के मुख्य स्रोतों का वर्तमान वितरण इस प्रकार है – घर या अपनी जेब से (49.5 प्रतिशत), सरकार (27 प्रतिशत) व अन्य कर्मचारी वर्ग (23.5 प्रतिशत)। इस प्रकार का स्वास्थ्य बीमा संरक्षण अधिकांशतः अंतरंग (वे रोगी जो अस्पताल में दाखिल हैं) की देखभाल हेतु होता है। सर्वसमावेशी स्वास्थ्य बीमा (यथा, अंतरंग/बहिरंग रोगी, निवारक, प्राथमिक एवं अस्पताल भर्ती-उपरांत देखभाल) सरकार की मात्र कुछ चुनी हुई सामाजिक स्वास्थ्य बीमा योजनाओं, जैसे कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ESI), केंद्र सरकार स्वास्थ्य योजना (CGHS), आदि, द्वारा ही प्रदान किया जाता है जो कुल जनसंख्या के केवल एक छोटे.से वर्ग की ही ज़िम्मेदारी लेता है। कुछ निजी बीमा कंपनियाँ अस्पताल भर्ती पूर्व और भर्ती उपरांत अनुवर्तन सेवा प्रदान कर रही हैं जिसका लाभ उठाने में समाज का एक सुसंपन्न वर्ग ही सक्षम होता है। सर्वव्यापी स्वास्थ्य संरक्षण, इसीलिए, भारत के नीति-निर्माताओं और सरकार के लिए एक दूरस्थ चुनौती ही बना हुआ है।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में भारतीय जन-स्वास्थ्य व्यय किस प्रकार हाल की समयावधि में आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD) देशों से तुलनीय रहा है?

....

....

....

....

....

2) 'माँग पक्ष' से कौन-से तीन कारक स्वास्थ्य परिचर्या पर अधिक खर्च करने के सरकार के निर्णय को प्रभावित करते हैं? क्यों?

....

....

....

....

....

3) 'आपूर्ति पक्ष' से जनता के लिए उच्चतर स्वास्थ्य परिचर्या व्यय को प्रभावित करने में कौन-से कारक योगदान देते हैं?

....

....

....

....

....

4) 'स्वास्थ्य व्यय' के दो मुख्य स्रोत कौन-से हैं? इनमें से कौन-सा एशियाई देशों पर प्रभावी है? भारत में इसका वर्तमान स्तर क्या है?

....

....

....

....

....

5) क्या आप भारतीय स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली को पश्चगामी मानते हैं? क्यों?

....

....

....

....

....

6) भारत में जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली के समक्ष कौन-सी प्रमुख चुनौतियाँ हैं?

....

....

....

....

....

7.5 भारत में स्वास्थ्य नीति

जब हम भारत में स्वास्थ्य और उससे संबद्ध नीतियों पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, बाल वर्ग आदि हेतु राष्ट्रीय नीतियों के लिहाज से हमारे पास सुनियोजित नीति दिशा-निर्देश हैं। ये नीतियाँ राजनीतिक प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए स्वास्थ्य एवं विकास हेतु एक व्यापक प्राधार प्रदान करती हैं। देश का संविधान (निदेशक सिद्धांत) और राष्ट्रीय नीतियाँ संसाधनों के संकलन और वितरण हेतु विस्तृत दिशा-निर्देश इस प्रकार देते हैं कि आम जनता की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें। समय-समय पर संविधान संशोधन एवं राज्य-विधानसभाओं द्वारा उनका अनुमोदन भी आयोजकों और प्रशासकों को व्यापक दिशा-निर्देश देते हैं। विगत वर्षों में देश ने अपनी स्वास्थ्य परिचर्या वितरण व्यवस्था को विस्तीर्ण किया है और उसके पास मात्र कुछ श्रेणियों व विशेषीकृत प्रशिक्षण सुविधाओं को छोड़कर, अधिकांश स्वास्थ्य कर्मियों की पर्याप्त उपलब्धता है।

एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन 2012.17 की अवधि में विशिष्ट लक्ष्यों के साथ आरंभ किया गया। इस मिशन के मुख्य उद्देश्य हैं – (i) गरीबों के स्वास्थ्य की रक्षा करना; (ii) जन-स्वास्थ्य प्रणाली को सुदृढ़ करना; (iii) उच्चतम स्वास्थ्य मानक प्राप्त करने हेतु समुदाय को सशक्त करना; और (iv) उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग को इष्टतम करने की क्षमता बढ़ाना। इस मिशन के तहत अनेक योजनाएँ शुरू की गई हैं। इनमें कुछ हैं–

क) **राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम** : यह चार D, अर्थात् जन्मजात दोष (defects), रोग (diseases), अभाव (deficiency) व विकासात्मक विलम्ब (developmental delay), के लिहाज से बच्चों (जन्म से लेकर 18 वर्ष की आयु तक) में 'शीघ्र ज्ञान, शीघ्र निदान' अपनाने हेतु एक पहल है।

ख) **जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम** : यह गर्भवती महिलाओं व नवजात रोगियों के लिए है। इस योजना के माध्यम से रोग निदान, उपचार, आहार, व अधिकांश औषधियाँ निःशुल्क प्रदान की जाती हैं। घर से उपचार-गृह तक परिवहन भी निःशुल्क प्रदान किया जाता है। इसके अलावा, गर्भवर्ती महिलाओं के लिए शल्य-प्रसव भी मुफ्त किया जाता है।

ग) **प्रजनन, मातृत्व, नवजात, बाल एवं किशोर स्वास्थ्य** : वर्ष 2013 के आरंभ में इस योजना में वर्ष 2017 तक निम्नलिखित दरें घटाने के मुख्य लक्ष्य हैं – (i) शिशु मर्त्यता दर 25 प्रति 1000 जीवित नवजात; (ii) मातृ मर्त्यता दर 100 प्रति 100,000 जीवित नवजात; तथा (iii) कुल प्रजनन क्षमता दर 2.1.

घ) **राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम** : वर्ष 2014 में आरंभ इस योजना का उद्देश्य है– पोषण, मानसिक स्वास्थ्य व अन्य स्वास्थ्य-प्रोत्साहन प्रस्तावों के माध्यम से हस्तक्षेप कर देश में 25.3 करोड़ किशोर-किशोरियों तक पहुँचना।

ङ) **भारत नवजात कार्य योजना** : यह भी वर्ष 2014 में शुरू की गई, जिसके मुख्य उद्देश्य हैं– नवजात शिशुओं का स्वास्थ्य सुधारना और मृत प्रसव संख्या घटाना।

7.5.1 राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2002) ने माना कि देश के रुग्णता एवं मर्त्यता स्तर असाधारण रूप से ऊँचे हैं और इस कारण सशक्त निवारक एवं आरोग्यकर उपाय करना आवश्यक है। उसने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि महिलाओं व बच्चों में वृहद् एवं सूक्ष्म पोषक तत्व अभाव बहुत अधिक है। यहाँ मलेरिया, तपेदिक एवं एचआईवी जैसे प्रमुख रोगों पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इस परिदृश्य में उक्त नीति के मुख्य आग्रह ये हैं–

1) अपने क्षेत्रों में नीतियाँ लागू करने के लिए राज्य जन-स्वास्थ्य प्रबंधों को अधिक लचीलापन;

2) रोग नियंत्रण कार्यक्रमों हेतु ऊर्ध्वस्थ क्रियान्वयन संरचना;

3) देश के पिछड़े क्षेत्रों का दायित्व लेने हेतु पराचिकित्सा कर्मियों को अधिक प्रशिक्षण;

4) देशभर में चिकित्सा महाविद्यालयों का असमान वितरण सुधारना;

5) आणविक जीव-विज्ञान आदि कुछ चिकित्सा शास्त्र-विधाओं को विकसित अवसंरचना मुहैया कराना;

6) परिवार औषधि एवं जन-स्वास्थ्य में विशेषज्ञता प्राप्त लोगों की संख्या बढ़ाना;

7) सामान्य औषधियों एवं टीका-द्रव्यों के प्रयोग को बढ़ावा देना;

8) जन-स्वास्थ्य के क्षेत्र में मानसिक स्वास्थ्य शामिल करना;

9) चूँकि कॉलेज व स्कूल जाने वाले बच्चे निवारक स्वास्थ्य परिचर्या सिद्धांत मन में बैठाने हेतु सर्वाधिक संवेदनशील लक्ष्य होते हैं, यह नीति स्वास्थ्य-प्रोत्साहन व्यवहार संबंधी जागरूकता बढ़ाने के लिए इन युवाओं को ही लक्ष्य बनाने का सुझाव देती है; तथा

10) ग़ैर-सरकारी सेवा प्रदाताओं के बीच स्वास्थ्य-संबंधी अनुसंधान को प्रोत्साहन देना।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति (2014) के लक्ष्य हैं– (i) मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या आरंभिक रूप से सुलभ कराना; (ii) मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा देश के कमज़ोर

तबके तक पहुँचाना; (iii) मानसिक रोग का जोखिम और कलंक घटाना; (iv) मानसिक रुग्णता से ग्रस्त लोगों के उपचार हेतु कुशल संसाधनों की आपूर्ति सुनिश्चित करना; और (अ) मानसिक स्वास्थ्य विकार के सामाजिक, जैविक एवं मनोवैज्ञानिक निर्धारकों की पहचान करना। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 भी सतत् विकास लक्ष्यों से जुड़ी आम गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं (बिना वित्तीय विपत्ति के) की सार्वत्रिक सुलभता सुनिश्चित कर स्वास्थ्य एवं आरोग्य का यथासंभव उच्चस्तर लब्ध करने के लक्ष्य को ही दोहराती है। सर्वव्यापी स्वास्थ्य संरक्षण सुलभ करने के लिए इसके तहत पहचाने गए विशिष्ट सोपान इस प्रकार हैं– (i) सरकारी अस्पतालों और लाभार्थ इतर निजी रक्षा प्रदाताओं के माध्यम से मातृ, बाल एवं किशोर स्वास्थ्य हेतु एक व्यापक एवं निःशुल्क प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा शुरू करना; और (ii) एक उत्तम गुणवत्ता वाली द्वितीयक एवं तृतीयक सेवा प्रदान करना। उक्त नीति विशेष रूप से स्वास्थ्य परिचर्या आवश्यकताओं पर जेब-से-व्यय घटाने की आवश्यकता पर बल देती है। इस नीति के अन्य मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं– (i) वर्ष 2025 तक जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा 67.5 से बढ़ाकर 70 करना; (ii) वर्ष 2025 तक पाँच-पूर्व मर्त्यता घटाकर 23 पर लाना और वर्ष 2020 तक मातृ मर्त्यता घटाकर 100 पर लाना; (iii) वर्ष 2019 तक शिशु मर्त्यता दर घटाकर 28 पर लाना; (iv) वर्ष 2025 तक नवजात मर्त्यता घटाकर 16 पर लाना और मृत प्रसव को इकाई के अंक तक गिराना; (v) वर्ष 2018 तक कुष्ठरोग का निराकरण करना; (vi) वर्ष 2025 तक 90 प्रतिशत नवजात शिशुओं का संपूर्ण टीकाकरण; (vii) वर्ष 2025 तक उच्च-प्राथमिकता ज़िलों में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्वास्थ्य परिचर्या हेतु पराचिकित्सा कर्ताओं एवं स्वास्थ्य कर्मियों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करना; (viii) वर्ष 2020 तक स्वास्थ्य प्रणाली विषयक जानकारी का राज्य-स्तरीय इलेक्ट्रॉनिक डेटाबेस सुनिश्चित करना; आदि।

उक्त 2017 की नीति, तद्नुसार, एक वर्धमान आश्वस्ति आधारित दृष्टिकोण प्रस्तुत करने पर अभिलक्षित है। तथापि, यह नीति दो प्रकार की आलोचनाओं हेतु कारण देती है : (i) अभिकरण-पणधारी समालोचना; और (ii) साध्यता समालोचना। प्रथम में, जबकि नीति पहचानता है कि क्या किया जाना चाहिए, वह उसके क्रियान्वयन के 'कौन, क्या और कैसे' पक्ष को नहीं पहचानती। ऐसा शायद इस कारण है कि स्वास्थ्य परिचर्या राज्य का विषय है परंतु वितरण व्यवस्थाओं की जाँच-पड़ताल व्यवस्था भी सुधारी जानी ज़रूरी है।

दूसरी, साध्यता समालोचना में, यह नीति जन-स्वास्थ्य परिचर्या सुविधाओं के वित्तीयन में सुधार हेतु आह्वान करता है जहाँ प्रचालन लागतें प्राथमिक देखभाल के लिए एक प्रतिव्यक्ति आधार पर देखरेख प्रावधान हेतु प्रतिपूर्ति के रूप में होंगी। परंतु यह नीति इस विषय पर मौन है कि ये वित्तीय सुधार किस प्रकार होंगे और इन्हें कौन संचालित करेगा। इस प्रकार, जब यह नीति भारत की स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली के तीन । अर्थात् सुलभता (Access), क्रय-सामर्थ्य (Affordability), उत्तरदेयता (Accountability) के लिहाज से समस्याओं को निपटाने की आवश्यकता कहीं अधिक स्पष्ट रूप से पहचानती है, यह इनमें से किसी भी A से, खासकर जब जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली व्यष्टिक और समष्टिक प्रबंधकीय अदक्षताओं के तहत अवनति पर है, और प्रशिक्षित एवं क्षमता-निर्माण प्रयासों से संबद्ध समस्याओं पर कोई भी सुसंगत, साकार कार्य योजना प्रदान करने में विफल है।

बोध प्रश्न 3 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन : 2012.2017 के कोई चार विशिष्ट लक्ष्य बताइए।

....

....

....

....

....

2) राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 के अंतर्गत 'सर्वव्यापी स्वास्थ्य संरक्षण' हासिल करने हेतु पहचाने गए दो विशिष्ट सोपान क्या है?

....

....

....

....

....

3) राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति, 2014 के पाँच प्रमुख लक्ष्य बताइए।

....

....

....

....

....

4) किन मोर्चों पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 की समालोचना की जाती है?

....

....

....

....

....

7.6 सार- संक्षेप

भारत जैसे एक विकासशील देश के लिए अपने जन-समुदाय की पौषणिक एवं सामान्य स्वास्थ्य स्थिति सुधारना सरकार का महत्त्वपूर्ण सरोकार है। बेशक भारत के लिए अनेक प्रमुख स्वास्थ्य संसूचकों में समय के साथ एक क्रमिक सुधार हुआ है, यह सुधार बहुत ही धीमी दर से हुआ है। विशेष रूप से, पाँच-पूर्व मर्त्यता दर अब भी 50 प्रतिशत बनी ही हुई है। पोषण स्थिति के प्रसंग में, दुबलापन और रुद्ध-विकास के मामले बढ़े

रहे हैं, जो कि भयप्रद है। उक्त स्थिति को सुधारने के लिए भारत सरकार ने अनेक नीतियाँ एवं कार्यक्रम शुरू किए हैं। फिर भी, स्वास्थ्य पर इसका समग्र सरकारी खर्च, जो कि सकल घरेलू उत्पाद के 1.5 प्रतिशत से भी कम है, बहुत ही कम है। परिणामतः कुल व्यय में जेब-से व्यय का औसत अंश न सिर्फ़ बहुत अधिक रहा (वर्ष 2012 में 90 प्रतिशत), बल्कि इसने एक बढ़ता रुझान निरंतर जारी भी रखा है। इसके अलावा, अधिकांश जन-स्वास्थ्य परिचर्या अवसंरचना शहरी क्षेत्रों में ही संकेंद्रित है। स्वास्थ्य कार्यबल की पर्याप्त आपूर्ति का अभाव भी एक सरोकार का क्षेत्र रहा है। स्वास्थ्य बीमा समाज के साथ-साथ सरकारी विभागों में भी महत्त्व प्राप्त करता जा रहा है। सरकार विभिन्न नीतियों के माध्यम से और उन्नत निरोधक एवं रोगहर सेवाएँ प्रदान करके स्थिति सुधार रही है। विभिन्न नीतियों में से कुछ महत्त्वपूर्ण इस प्रकार हैं– राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, भारतीय राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति (2014), राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2002, 2017), आदि।

7.7 शब्दावली

Z-मान : Z-मान 'वास्तविक मान (अथवा प्रेक्षित मान) एवं माध्यिक मान के बीच अंतर' तथा निदर्श के मानों के 'मानक विचलन' का 'अनुपात' है। चूँकि अनुपात का अंश किसी जन-समुदाय के लिए वास्तविक एवं माध्यिक मान के बीच कोई अंतर होता है, कुछ Z-मान धनात्मक होते हैं तो कुछ ऋणात्मक। जब वास्तविक मान माध्यिक मान से अधिक होगा तो वह धनात्मक होगा। यह उत्तर स्वास्थ्य का सूचक है। इसके विपरीत, जब Z-मान ऋणात्मक होता है अर्थात् जब वास्तविक मान माध्यिका से कम होता है तो Z का ऋणात्मक मान निकृष्ट स्वास्थ्य का सूचक होगा

शरीर संहति सूचक (BMI) : यह लोगों की लम्बाई हेतु समंजित शारीरिक मोटापे का माप है। यह ऊँचाई वर्ग मीटर द्वारा विभाजित शरीर के किलोग्राम भार के रूप में मापा जाता है। तद्नुसार, यदि लम्बाई 175 सेमी. है और भार 70 किग्रा., तो BMI = 70 / (1.75 x 1.75)= 22.86 (चूँकि 1 मीटर =100 सेमी., 175 सेमी. = 1.75 मीटर)।

मृत प्रसव : मृत प्रसव का अर्थ है – किसी शिशु की 28 सप्ताह गर्भस्थ रहने के बाद मृत्यु, यह वर्ष के दौरान मृत प्रसव संख्या प्रति 1000 जन्म (जिसमें जीवित व मृत प्रसव शामिल हैं) के रूप में मापा जाता है।

कुल प्रजनन क्षमता दर : कुल प्रजनन क्षमता दर (TFR) उन बच्चों की औसत संख्या है जो किसी स्त्री के प्रजनन काल में जन्म लेते है यदि वह अपने पूरे प्रजनन काल में जीवित रहती। TFR का मान 2.1 लिया जाता है क्योंकि यह किसी स्त्री के उन बच्चों की औसत संख्या है जिन्हें वह यदि वह प्रचलित प्रजनन क्षमता दरों के

अधीन जन्म दे सकती है।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Neun and Santerre: *Health Economics: Theories, Insights and Industry Study*.

2) Ministry of health and family welfare, Government of India: National Family Health Survey (I,II,III and IV).

3) Government of India: RBI Bulletin.

4) Ministry of health and Family Welfare, Government of India: National Health Policy.

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) स्वास्थ्य का अर्थ है– 'रुग्णता से मुक्ति'। पोषण का अर्थ है– वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से शरीर किसी के द्वारा खाए गए भोजन में विद्यमान पोषक तत्वों की वांछित मात्रा अवशोषित कर लेता है। तद्नुसार, यह पोषाहार का एक मापदंड है।

2) शिशु मर्त्यता, पाँच-पूर्व मर्त्यता, नवजात मर्त्यता तथा मातृ मर्त्यता दर। मातृ मर्त्यता दर वर्ष 1990 और 2015 के बीच लगभग आधी हो गई है।

3) कम-वज़न, दुबलापन और रुद्ध-विकास न्यून पोषण के तीन उप-घटक हैं। ये किसी Z-स्कोर से विचलन के संदर्भ में मापे जाते हैं।

4) शरीर भार संहति, रक्ताल्पता स्तर व भाराधिक्य द्वारा कालांतर में न्यून-भार का महिलाओं व पुरुषों का घटता रुझान देखा गया।

5) भारत में न्यून-भार बच्चों हेतु रुझान लगातार गिर रहा है (यह 1992.93 में 52 प्रतिशत से घटकर 2015.16 में 38 प्रतिशत रह गया।

6) QALY रोग भार का मापदंड है जबकि DALY स्वास्थ्य हानि दर्शाता है। विलोम के रूप में लिए जाने पर QALY भी स्वास्थ्य मापता है।

बोध प्रश्न 2

1) OECD देशों के लिए, वर्ष 1979-2006 में, यह GDP के 5.1 प्रतिशत से 8.9 प्रतिशत तक। भारत में, 1995-2014 में, यह सकल घरेलू उत्पाद के 1.1 प्रतिशत से घटकर 1.4 ही रही।

2) जन-समुदाय का बूढ़ा होना, आय और बीमा बाज़ार का प्रसार।

3) आपूर्ति-प्रेरित माँग और सामान्य आर्थिक वृद्धि।

4) PHE और OPE एशियाई देशों के लिए OPE 80 प्रतिशत से अधिक है। भारत के लिए, इसका अनुमान वर्ष 2012 में 89.2 प्रतिशत आकलित हुआ।

5) हाँ, ऊँचे निजी जेब-से-व्यय के चलते एक आदर्श स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली

सरकारी एवं निजी स्वास्थ्य परिचर्या व्यय के बीच वित्तीय लागत के वितरण के साथ सभी के लिए सुलभ है।

6) जन-स्वास्थ्य परिचर्या, गंभीर भौगोलिक एवं सामाजिक विषमता, स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बीच अपर्याप्त एकीकरण, सामुदायिक संकेंद्रण का अभाव, आदि।

बोध प्रश्न 3

1) ग़रीबों के स्वास्थ्य की रक्षा करें, जन-स्वास्थ्य प्रणाली सशक्त करें, अधिकतम स्वास्थ्य मानक लब्ध करने के लिए समुदाय को सशक्त बनाएँ, उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग इष्टतम करने के लिए दक्षता बढ़ाएँ।

2) सरकारी अस्पतालों तथा उत्तम गुणवत्ता वाले द्वितीयक एवं तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा के माध्यम से मातृ, बाल एवं किशोर स्वास्थ्य हेतु व्यापक एवं निःशुल्क प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा की शुरुआत।

3) मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या प्रदान करने के लिए, देश के कमज़ोर तबके को मानसिक स्वास्थ्य सेवा सुलभ कराना, आदि (उपभाग 7.5.1)

4) दो आधारों पर : एक, अभिकरण पणधारी समालोचना; और दूसरे, साध्यता आधारित समालोचना (उपभाग 7.5.1)।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 ग़रीबी*

संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 विषय प्रवेश

8.2 गरीबी का मापन

8.2.1 मापन विधियाँ

8.2.2 भारत में गरीबी मापन

8.3 गरीबी से जुड़े आयाम

8.3.1 पोषण

8.3.2 ऋण

8.3.3 बीमा

8.3.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

8.3.5 भेदभाव

8.4 गरीबी निवारण हेतु किये गये उपाय : वर्ष 2010 तक

8.4.1 कृषिक संवृद्धि

8.4.2 मध्याह्न भोजन योजना

8.4.3 मनरेगा (MNREGA)

8.5 गरीबी निवारण के अभिनव उपाय : वर्ष 2010-उपरांत

8.5.1 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013

8.5.2 प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण

8.5.3 सबके लिए आवास, 2016

8.6 सार-संक्षेप

8.7 शब्दावली

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि:

- गरीबी और गरीबी की रेखा संबंधी संकल्पनाओं को परिभाषित कर सकें;
- गरीबी मापन की विधियों पर चर्चा कर सकें;
- गरीबी मापन हेतु भारत में अपनाए गए दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकें;
- गरीबी निवारण को प्रभावित करते कारकों के साथ उसके सहलग्नता का विश्लेषण कर सकें;
- वर्ष 2010 तक भारत में गरीबी घटाने हेतु शुरू किए गए महत्त्वपूर्ण उपायों का वर्णन कर सकें; तथा

* डॉ. स्मृतिकन घोष, सहायक आचार्य, स्कॉटिश कॉलेज, कोलकाता

- वर्ष 2010-उपरांत वर्षों के दौरान भारत में गरीबी से संघर्ष करने हेतु शुरू किए गए उपायों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें।

8.1 विषय प्रवेश

वर्ष 2015 में, विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के एक अनुमानानुसार, विश्व में 87.2 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे थे, जिनमें से 18 करोड़ भारत में रह रहे थे। इसका अर्थ है कि भारत में गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों की प्रतिशतता 20 प्रतिशत के आस-पास थी। गरीबी को सक्रामक दुर्लभता या अपर्याप्तता की संज्ञा दी जा सकती है। यह ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति के पास भौतिक सम्पत्ति या धन की 'न्यूनतम' राशि का अभाव होता है। गरीबी निरपेक्ष अथवा सापेक्ष हो सकती है। निरपेक्ष गरीबी का अर्थ है– रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने हेतु आवश्यक साधनों का अभाव। सापेक्ष गरीबी में शेष समाज की तुलना में व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को भी ध्यान में रखा जाता है। सापेक्ष अर्थ में, विचार किए जाने पर, यह एक बहुफलकित संकल्पना दृष्टिगत होती है। इस दृष्टिकोण से, केवल आय पर आधारित गरीबी का कोई भी मापदंड उसके सभी आयामों का प्रग्रहण नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, गरीबी के मूल मापदंड जानने के अलावा, हमें गरीबी की एक बहुआयामी संकल्पना की भी आवश्यकता होगी। भारत में, गरीबी अनुमान गरीबी रेखा संबंधी संकल्पना के आधार पर दो विधियों से विकसित किए गए हैं– एक मूल आवश्यकताएँ क्रय करने हेतु वांछित आय को सामने रखकर (आय दृष्टिकोण) तथा दूसरा, परिवारों द्वारा किए गए वास्तविक उपभोग को ध्यान में रखकर (उपभोग दृष्टिकोण)। गरीबी रेखा एक न्यूनतम जीवन-स्तर दर्शाती है जो कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इस स्तर से नीचे आने वाले लोगों को गरीबी में रह रहे लोगों में गिना जाता है। आय दृष्टिकोण में, इसे मूलभूत आवश्यकताएँ क्रय करने हेतु प्रतिदिन वांछित रुपयों की संख्या के रूप में बताया जाता है।

8.2 गरीबी का मापन

गरीबी के विभिन्न मापदंड हैं। इस भाग में, हम गरीबी मापन की कुछ महत्त्वपूर्ण विधियों का अध्ययन करेंगे।

8.2.1 मापन विधियाँ

हम व्यक्ति गणना अनुपात (Head Count Ratio) से आरंभ करेंगे, जो परिकलन में सरल है, और इसलिए व्यापक प्रयोग में है, किंतु यह दो तुल्य समूहों के बीच गरीबी की सापेक्ष गहनता ज्ञात करने में हमारी कोई मदद नहीं करता। एक मापदंड, जिसे गरीबी अंतर सूचकांक (Poverty Gap Index) कहा जाता है, दो क्षेत्रों अथवा समूहों के बीच गरीबी अर्थात् दरिद्रता की गहनता संबंधी अवधारणा प्रस्तुत करता है। तथापि, यह परवर्ती विधि भी गरीबी की प्रचंडता का कोई मापदंड प्रदान नहीं करती। यह अभाव वर्गित गरीबी अंतर अनुपात (Squared Poverty Gap Ratio) विधि से दूर किया जाता है। इस भाग में, स्वयं को गरीबी के उक्त मापदंडों से अवगत कराने के अलावा, हम दो अन्य मापदंडों के विषय में भी सीखेंगे, जिनमें एक हैरॉल्ड वॉट्स (1964) द्वारा और दूसरा अमर्त्य सेन (1976) द्वारा विकसित किया गया है और दोनों को सैद्धांतिक गुणधर्म संतुष्ट करने वालों के रूप में जाना जाता है।

जनगणना अनुपात (H) : इसे कुल जनसंख्या की प्रतिशतता के रूप में परिभाषित किया जाता है अर्थात् इसे $H = \frac{q}{n}$ के रूप में परिभाषित किया जाता है, जहाँ q निर्धन जनसंख्या है और n कुल जनसंख्या। उदाहरण के लिए, किसी क्षेत्र में 1000 लोग रहते हैं जिनमें 430 निर्धन हैं। पूर्व-परिभाषित गरीबी रेखा के अनुसार, तब H = 430/1000 = 0.43. तद्नुसार, प्रतिशत के रूप में, अभिव्यक्ति किए जाने पर, इसका अर्थ होता– इस क्षेत्र में 43 प्रतिशत लोग निर्धन हैं। इस मापन में, जबकि गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का अनुपात ज्ञात किया जा सकता है, हम गरीबी का विस्तार (अथवा गहनता) ज्ञात नहीं कर सकते हैं अर्थात् ये 430 लोग कितने ग़रीब हैं, यह निर्धारित नहीं किया जा सकता।

गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) : गरीबी की गहनता का अध्ययन करने के लिए गरीबी अंतर अनुपात का आकलन उपयोगी होता है। इसी से ज्ञात होता है कि किस सीमा लोग, औसतन, किसी गरीबी रेखा से नीचे आते हैं। यह ऐसा सूचकांक है जो हमें यह बताता है कि अत्यंत गरीब लोग गरीबी रेखा से कितना नीचे अवस्थित हैं। उक्त सूचकांक (PGI) ऐसे लोगों पर विचार करता है जो 'शून्य' गरीबी अंतर पाने के लिए ग़ैर-निर्धन हैं। सर्वेक्षण किए गए लोगों के एक समूह पर कुल योग करने पर, अंतर अनुपात ही गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) बन जाता है। तद्नुसार, यदि Y_i किसी व्यक्ति 'i' की आय हो और गरीबी रेखा को Z के रूप में लिया जाए, तो PGI को निम्नवत् परिभाषित किया जाता है –

$$PGI = \frac{1}{N}\sum_{i=1}^{J}\left(\frac{Z-Y_i}{Z}\right) \qquad (8.1)$$

जहाँ, N सर्वेक्षण की गई कुल जनसंख्या है। तद्नुसार, यदि 100 लोग (N) हों जिनमें से $Y_1, Y_2, Y_{3,\ldots\ldots,}Y_{40}$ द्वारा इंगित उनकी अपनी-अपनी आय के साथ 40 निर्धन हों, और रु. 1000/– गरीबी रेखा मान ली जाए, तो PGI निम्नवत् आकलित किया जाएगा–

$$PGI = \frac{1}{100}\left[\left(\frac{1000-Y_1}{1000}\right) + \left(\frac{1000-Y_2}{1000}\right) + \cdots \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots.. + \left(\frac{1000-Y_{40}}{1000}\right)\right] \qquad (8.2)$$

यह समझने के लिए कि गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) जनगणना अनुपात (H) से किस प्रकार श्रेष्ठ है, एक आनुभविक दृष्टांत पर विचार करना उपयोगी होगा। ध्यान देने की बात है कि 8 कुटुंबों के एक प्रतिदर्श हेतु गरीबी का व्यक्ति गणना अनुपात सामान्यतः अन्वेषणाधीन दोनों ही क्षेत्रों के लिए 0.375 (तालिका 8.1) आता है क्योंकि व्यक्ति गणना विधि में केवल रु. 800/– की गरीबी रेखा से नीचे आने वाले लोगों की संख्या पर ही विचार किया जाता है। तथापि, गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) के मामले में (जहाँ हम यदि $Y_i > Z$ तो G_i को '0' के बराबर और यदि $Y_i < Z$ तो $Z - Y_i$ के बराबर मानते हैं), हम देखते हैं कि इन्हीं आँकड़ों के लिए, क्षेत्र.1 हेतु PGI (0.013) , क्षेत्र-2 हेतु PGI (0.119) से कम है। तद्नुसार, PGI मान आयोजकों को यह बताने के लिए कहीं अधिक ज्ञानप्रद है कि क्षेत्र-1 की तुलना में क्षेत्र-2 में गरीबी की उच्चतर गहनता के कारण वहाँ योजनाओं को बेहतर अभिलक्षित किए जाने की आवश्यकता है। उक्त सूचकांक (PGI) की अपनी ही सीमा है क्योंकि इसके (PGI) द्वारा 'डॉल्टन का अंतरण सिद्धांत' नामक एक नियम का उल्लंघन होता है। इस सिद्धांत के अनुसार, किसी भी गरीबी रेखा से ऊपर स्थित कुटुंब से किसी गरीबी रेखा से नीचे स्थित कुटुंब को कुछ धन हस्तांतरित कर (जिसे प्रगामी हस्तांतरण कहा जाता है, अधिक प्रचण्ड क्षेत्र में PGI को नीचे लाया जाना चाहिए। इस सिद्धांत में अपेक्षित

है कि निर्धन कुटुंबों अथवा व्यक्तियों की आय-स्वरूप प्राप्तियों के बीच असमानता की कोटि के प्रति 'संवेदनशील' होना चाहिए। इस सिद्धांत की अवहेलना व्यक्ति गणना अनुपात और उक्त सूचकांक (*PGI*) दोनों द्वारा की जाती है। ऐसा इसलिए है कि उक्त सूचकांक (*PGI*) के मामले में सभी अंतर समान रूप से भारित किए जाते हैं। इस कमी को 'वर्गित गरीबी अंतर अनुपात' द्वारा दूर किया जाता है जहाँ सभी भार स्वयं गरीबी अंतरों के अनुपात में रखे जाते हैं (यथा, '*x*' प्रतिशत की गरीबी अंतर '*x*' प्रतिशत के बराबर भार दिया जाता है)।

तालिका 8.1 : व्यक्ति गणना अनुपात विधि

क्षेत्र	8 प्रतिदर्श कुटुंबों में प्रति व्यक्ति मासिक व्यय (रु. में)								व्यक्ति गणना अनुपात (P_0) Z = रु. 800
	1	2	3	4	5	6	7	8	
क्षेत्र-1	950	1100	1000	975	750	775	790	1400	3/8 = 0. 375
क्षेत्र-2	1250	1150	1400	1100	550	600	490	1200	3/8 = 0. 375

तालिका 8.2 : गरीबी-अंतर अनुपात विधि

क्षेत्र	8 प्रतिदर्श कुटुंबों में प्रति व्यक्ति मासिक व्यय (रु. में)								गरीबी अंतर सूचकांक (P_1)
	1	2	3	4	5	6	7	8	
क्षेत्र-1	950	1100	1000	975	750	775	790	1400	Z = **800**
$G_i = Z - Y_i$	0	0	0	0	50	25	10	0	
G_i/Z	0	0	0	0	0.0625	0.03125	0.0125	0	0.10625/8 = **0.013**
क्षेत्र-2	1250	1150	1400	1100	550	600	490	1200	
$G_i = Z - Y_i$	0	0	0	0	250	200	310	0	
G_i/Z	0	0	0	0	0.3125	0.25	0.3875	0	0.95/8 = **0.119**

नोट : यदि $(Z - Y_i) < 0$ तो G_i को 'शून्य' लिखा जाता है और अन्यथा वास्तविक अंतर।

वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SPGI) : वर्गांकित आनुपातिक गरीबी अंतर के औसत-स्वरूप परिभाषित, यह मापदंड गरीबी की प्रचंडता दर्शाता है और इसलिए 'गरीबी प्रचंडता सूचकांक' भी कहा जाता है। गरीबी अंतरों के एक भारित योगफल-स्वरूप परिभाषित, जहाँ सभी भार स्वयं गरीबी अंतरों के आनुपातिक होते हैं, यह सूचकांक निर्धन वर्ग के बीच असमानता के प्रति संवेदनशील होने के लिए सराहा जाता है। इसका अर्थ है कि 5 प्रतिशत का एक गरीबी अंतर 5 प्रतिशत का भार दिलाएगा, 60 प्रतिशत का एक गरीबी अंतर 60 प्रतिशत का भार दिलाएगा, इत्यादि। यह गरीबी अंतर सूचकांक का एक उन्नत रूप है, जिसमें सभी भार बराबर होते हैं। दूसरे शब्दों में, गरीबी अंतर को वर्गांकित कर उक्त सूचकांक (SPGI) अधिक ज़ोर उन समुक्तियों पर देता है जो महत्त्वपूर्ण रूप से गरीबी रेखा से नीचे अवस्थित होती

हैं। इस सूचकांक को तद्नुसार निम्नवत् निरूपित किया जाता है–

$$SPGI = \frac{1}{N}\sum_{i=1}^{N}\left(\frac{G_i}{z}\right)^2 \quad (8.3)$$

जहाँ N गरीबी सर्वेक्षण में जनसमुदायों अथवा समुक्तियों की कुल संख्या है, G_i iवें व्यक्ति का गरीबी अंतर है और z गरीबी रेखा है। गरीबी की प्रचंडता (अथवा गहनता) का मापन महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि, यही गरीबी के प्रभाव पर संपूरक सूचना प्रदान करती है। इसका अर्थ है कि जबकि कुछ समूह एक उच्च गरीबी प्रभाव से ग्रस्त (यथा, अनेक सदस्य गरीबी रेखा से बिल्कुल नीचे हैं) परंतु एक निम्न गरीबी अंतर दर्शा सकते हैं। अन्य समूह एक निम्न गरीबी प्रभाव से ग्रस्त (यथा, तुलनात्मक रूप से कुछ सदस्य गरीबी रेखा से नीचे हैं) होते हुए भी एक उच्च गरीबी दर्शा सकता है (उदाहरणार्थ, गरीबों के उपभोग के अत्यंत निम्न स्तर)।

सेन का सूचकांक : प्रोफेसर ए.के. सेन (1976) ने किसी समूह के भीतर गरीबों की संख्या, गरीबी की गहनता और गरीबी का वितरण संबंधी तीनों कारकों को जोड़कर एक गरीबी सूचकांक प्रस्तुत किया। यह सूचकांक निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$P_s = P_0[1-(1-G^p)\frac{\mu^p}{z}] \quad (8.4)$$

जहाँ P_0 व्यक्ति गणना सूचकांक है, μ^p गरीब वर्ग की औसत आय है और G^p गरीब लोगों के बीच असमानता का गिनी गुणांक है $(0 \le G^p \le 1)$। सेन का सूचकांक व्यक्ति गणना और गरीबी अंतर मापांकों का भारित औसत होता है। यह सूचकांक विचार किए गए पूर्व तीन मापदंडों की अपेक्षा अपनी दुष्कर संरचना के कारण मुख्यतः सैद्धांतिक चर्चा में प्रयोग किया जाता है और व्यवहार में इतना अधिक नहीं। इस सूचकांक की यह भी सीमाबद्धता है कि यह गरीबी के योगदान को विभिन्न उपसमूहों में विघटित नहीं कर सकता।

वॉट का सूचकांक : यह एक वितरण-संवेदी गरीबी मापक है जिसे निम्नवत् परिभाषित किया जाता है –

$$W = \frac{1}{N}\sum_{i=1}^{q}[log(Z) - log(Y_i)] \quad (8.5)$$

जहाँ N आय (अथवा व्यय) के आरोही क्रम में व्यवस्थित लोगों की संख्या है, जो कि 'q' ऐसे व्यक्तियों पर प्रस्तुत की गई है जिनकी आय Y_i गरीबी रेखा Z से नीचे आती है। यह सूचकांक प्रसिद्धि पा रहा है क्योंकि यह अनेक सैद्धांतिक गुणधर्म संतुष्ट करता है। तथापि, यह सूचकांक भी प्रयोग में अभी लोकप्रिय नहीं है।

8.2.2 भारत में गरीबी मापन

प्रथम दो पंचवर्षीय योजना अवधियों में, भारत में गरीबी को एक सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन जीने में सक्षम करने हेतु न्यूनतम ऊर्जा वांछनीयता के रूप में परिभाषित किया गया था। इसके लिए एक ऊर्जा मानक शहरी क्षेत्रों में 2400 किलो-कैलोरी प्रति व्यस्क प्रतिदिन और ग्रामीण क्षेत्रों में 2900 किलो-कैलोरी प्रति व्यस्क प्रतिदिन तय किया गया था। इस मानक के आधार पर, वर्ष 1960–61 के मूल्यों पर, गरीबी रेखा को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 20 प्रति व्यक्ति प्रति माह और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 25 प्रति व्यक्ति प्रति माह की एक राष्ट्रीय न्यूनतम के रूप में परिभाषित किया गया। अनेक विशेषज्ञों ने स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या के लिए विभिन्न

गरीबी-रेखा व्यय-स्तर सुझाए। यहाँ दिए गए आँकड़े ही वे आँकड़े हैं जो योजना आयोग द्वारा प्रयोग किए गए। ये अनुमान न्यूनतम आवश्यकताओं का एक व्यापक निर्णय प्रस्तुत करते थे और पोषणीय आवश्यकताओं से नहीं जुड़े थे, हालाँकि इनको भी विचारणीय माना गया था।

तदोपरांत, छठी पंचवर्षी योजना (1980—85) के लिए, प्रति व्यक्ति उपभोग-व्यय दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया। ऊर्जा आवश्यकता प्रतिदिन को घटाकर ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 किलो-कैलोरी प्रति व्यस्क प्रतिदिन एवं शहरी क्षेत्रों में 2100 किलो-कैलोरी प्रति वयस्क प्रतिदिन के मानक पर ले आया गया। वर्ष 1973—74 में प्रेक्षित उपभोक्ता व्यवहार के आधार पर, यह आकलित किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों हेतु रु. 49 प्रति व्यक्ति प्रति माह और शहरी क्षेत्रों हेतु रु. 57 प्रति व्यक्ति प्रति माह का औसत उपभोक्ता व्यय 'गरीबी रेखा' है। इस चरण में 'गरीबी रेखा' की संकल्पना का प्रयोग, तद्नुसार, अंशतः नियामक और अंशतः व्यवहारात्मक रहा। इस दृष्टिकोण में पौषणिक प्रस्थिति मापने का प्रयास नहीं किया गया, न ही इसमें जनसमुदाय में कुपोषण एवं न्यून-पोषण की प्रासंगिकता को ध्यान में रखा गया। इस प्रकार, खींची गई गरीबी रेखाएँ उपभोग आवश्यकता पर आधारित थीं, न कि वास्तविक आय पर। इस दृष्टिकोण में, तद्नुसार, 'ऋण, सार्वजनिक संपदा संसाधनों का प्रयोग एवं अनौपचारिक सामाजिक सुरक्षा' पर निर्भरता में भ्रम पैदा कर दिया गया।

गरीबी रेखा मापने हेतु दृष्टिकोण को आगे वर्ष 2004—05 से प्रभावी एक 365 दिवसीय स्मरण अवधि के लिए उपभोक्ता व्यय आँकड़ों के आधार पर (NSSO सर्वेक्षण का 61वाँ दौर) पाँच खाद्येतर वस्तुओं (यथा, वस्त्र, जूते-चप्पल, टिकाऊ वस्तुएँ, शिक्षा एवं संस्थागत चिकित्सा व्यय) को शामिल करने के लिए किंचित् परिवर्तित किया गया। इसके अलावा, 'प्रोटीन कैलोरी आवश्यकता' को शामिल करने हेतु एक अधिक वैज्ञानिक आधार को सहारा देने के लिए, राष्ट्रीय पोषण प्रबोधन ब्यूरो (NNMB) ने वर्ष 1974—75 से 10 राज्यों हेतु ग्रामीण कुटुंबों की आहार एवं पौषणिक स्थिति पर आँकड़े एकत्र करने शुरू कर दिए थे। उक्त ब्यूरो (NNMB) की आवधिक रिपोर्टों से उजागर हुआ है कि वर्ष 1981 तक प्रोटीन कैलोरी पर्याप्तता प्रस्थिति स्थिर रही परंतु तब से गिरती आ रही है। इन रिपोर्टों का दूसरा प्रकरण यह था कि वर्ष 2002 में केवल एक-तिहाई पूर्व-विद्यालयी बच्चे ही प्रोटीन कैलोरी पर्याप्तता मानक पूरा कर रहे थे। परवर्ती इस तथ्य का संसूचक है कि न्यून-पोषण भारत में पूर्व-विद्यालयी बच्चों के बीच एक बड़ी समस्या है। वर्ष 2004—2005 में गरीबी रेखा आकलित करने की कार्य-प्रणाली में एक और परिवर्तन किया गया जो था— 'मिश्रित स्मरण अवधि' दृष्टिकोण अपनाया जाना। इससे पूर्व (वर्ष 2000 के उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण में) खाद्य एवं खाद्येतर दोनों समेत सभी वस्तुओं के लिए एक 30-दिवसीय 'एकसमान स्मरण अवधि' (URP) को अपनाया गया था। वर्ष 2004—05 के दृष्टिकोण (MRP) का किंचित परिवर्तित रूप भी सामने आया, जिसमें खाद्येतर वस्तुओं के लिए 365-दिवसीय स्मरण दृष्टिकोण अपनाया गया और अन्य वस्तुओं के लिए 30-दिवसीय स्मरण दृष्टिकोण अपनाया गया। वर्ष 1999—2000 हेतु गरीबी रेखा के अनुमानों में, ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 27 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन (अथवा रु. 810 प्रति माह) रखा गया और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 24 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन (अथवा रु. 720 प्रति माह) रखा गया। वर्ष 2004—05 हेतु ये अनुमान रहे— ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 28 (रु. 840 प्रति माह) और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 26 (रु. 780 प्रति माह)।

वर्ष 2010–उपरांत किसी समय-बिंदु के आस-पास निर्धारित गरीबी रेखा के अनुमान दो प्रमुख रिपोर्टों से हैं। इनमें प्रथम तेंदुलकर रिपोर्ट (2009) से है जिसमें प्रति व्यक्ति प्रतिदिन आवश्यकता का शहरी क्षेत्रों हेतु सदृश अनुमान रु. 33 के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रु. 27 रखा गया था (यथा, ग्रामीण क्षेत्रों में रु. 810 प्रति व्यक्ति प्रति माह और शहरी क्षेत्रों में रु. 990 प्रति व्यक्ति प्रति माह)। इन तेंदुलकर अनुमानों में ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए एक साझा गरीबी रेखा पिटक (PLB) प्रयोग किया गया था जो कि सभी पूर्व कवायदों में उपभोग के दो अलग-अलग पिटकों पर विचार किए जाने से इतर था। ऐसा तेंदुलकर समिति द्वारा 'उक्त पिटक' (PLB') के संख्यात्मक नामक स्तर को निर्दिष्ट करने में मनमानापन के अंश से बचे जाने के लिए था और इसीलिए उसने ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए सांझा PBL के रूप में किसी निर्धन कुटुंब के अपेक्षाकृत कम विवादास्पद शहरी स्तरी PLB को मान्यता देने का विकल्प चुना। ऐसा 'अंतर्राज्य एवं अंतर्देशीय ग्रामीण-शहरी मूल्य अंतरों' हेतु यथावत समायोजन करने के बाद किया गया। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों हेतु पिछले दो अलग-अलग गरीबी रेखा पिटकों की ओर वापस लौटकर, रंगराजन द्वारा द्वितीय रिपोर्टों (2014) में गरीबी रेखा को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 32 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 47 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के रूप में आकलित किया गया। यह ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 972 और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 1407 के एक मासिक प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का आकलन देती थी। वर्ष 2014 की रिपोर्ट में, वर्ष 2011–13 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की प्रतिशतता अखिल-भारतीय स्तर पर 29.5 प्रतिशत आकलित की गई, जहाँ उसका वितरण ग्रामीण एवं शहरी स्थानों में क्रमशः 30.9 प्रतिशत और 26.4 माना गया था।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) गरीबी को परिभाषित करें।

....

....

....

....

2) निरपेक्ष गरीबी और सापेक्ष गरीबी के बीच अंतर स्पष्ट करें।

....

....

....

....

3) गरीबी मापने के लिए प्रयुक्त दो दृष्टिकोण क्या हैं? ये किस प्रकार परस्पर भिन्न हैं?

....

....

....

4) गरीबी मापने के उपभोग अथवा आय दृष्टिकोण की मूल कमी क्या है?

....

....

....

5) गरीबी मापने का 'व्यक्ति-गणना अनुपात' कैसे परिभाषित किया जाता है? इसकी आधारभूत सीमा क्या है?

....

....

....

....

6) 'गरीबी अंतर सूचकांक' (PGI) मापदंड किस प्रकार 'व्यक्ति-गणना अनुपात/सूचकांक' पर किस प्रकार एक सुधार के रूप में देखा जाता है? उक्त सूचकांक (PGI) किस प्रकार व्यक्ति-गणना अनुपात की तुलना में उपयोगी है? गरीबी के PGI मापदंड की क्या सीमाबद्धता है?

....

....

....

....

7) 'वर्गित गरीबी सूचकांक' (SPGI) किस प्रकार गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) पर एक सुधार है?

....

....

....

....

8) सेन का गरीबी संबंधी सूचकांक क्या है? किस प्रकार यह अन्य विधियों से श्रेष्ठ है?

....

....

....

....

9) वे प्रमुख कारक कौन-से हैं जिन पर भारत में गरीबी आकलित करने हेतु दृष्टिकोणों में ध्यान दिया गया है? किस प्रकार ये कालांतर में बदल गए?

....

....

....

10) भारत में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए तैयार किए गए गरीबी संबंधी विभिन्न अनुमानों का एक कालक्रमानुसार चित्र प्रस्तुत करें।

....

....

....

8.3 गरीबी से जुड़े आयाम

हमने पहले देखा कि गरीबी बहुआयामी होती है। इसका अर्थ है कि यह सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों की सीमाएँ लाँघकर अनेक कारकों से सह-लग्नताएँ दर्शाती हैं। इस भाग में, हम देखेंगे कि ये सह-लग्नताएँ किस प्रकार काम करती हैं– कुछ पक्ष में तो कुछ विरोध में।

8.3.1 पोषण

गरीबी आय सीमित कर देती है और उसके परिणामस्वरूप व्यय भी, जिससे आहारीय वंचन और कुपोषण जन्म लेते हैं। कुपोषण के कारण मानसिक एवं शारीरिक विकास में कमी आती है। भारत में निर्धन वर्ग को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आर्थिक सहायता प्राप्त खाद्य सुलभ रहा है। परिणामतः, खाद्य अल्पता के क्षेत्र में, खाद्य पर घरेलू खर्च में कमी देखी गई है, खासकर निर्धन वर्ग में। ऐसी स्थिति का मुकाबला करने के लिए, वर्ष 1975 से, सरकार ने एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (ICDS) कार्यक्रम शुरू किया, जिसमें देशभर में बच्चों तथा गर्भवती एवं दुग्धपान कराने वाली स्त्रियों को खाद्य अनुपूरक उपलब्ध कराए गए। इसके बावजूद, अब तक 30 प्रतिशत से भी अधिक कम वज़न के बच्चे जन्म ले रहे हैं और लगभग आधे बच्चे न्यून पोषण का शिकार हैं। बच्चों के बीच उच्च न्यून-पोषण दरें मुख्यतः निम्न जन्म-वज़न तथा निकृष्ट शिशु एवं बाल पोषण/देखभाल प्रथाओं के कारण हैं।

8.3.2 ऋण

वित्तीय उदारीकरण के बाद, सूक्ष्म वित्त संबंधी सेवाओं में विस्तार देखा गया है। आरंभतः, इसे एक सकारात्मक विकास माना जाता है, परंतु कालांतर में यह महसूस किया गया कि यह वसूली जाने वाली उच्चतर ब्याज़ दरों के साथ समाज के निर्धनतर वर्गों पर बोझ बन रहा है। बहरहाल, देखा गया है कि निर्धन वर्ग को ऋण की बेहतर सुलभता उन्हें स्वयं को ग़रीबी के दायरे से बाहर लाने में मददगार सिद्ध होती है, जिससे उन्हें मानव पूँजी विकास एवं सूक्ष्म उद्यम स्थापित करने हेतु निवेश करने में मदद मिलती है जो कि उन्हें गरीबी से बाहर की ओर सफलता का मार्ग दिखाता है।

ऋण सेवाओं में सुधार दो संकेतकों द्वारा मापा जा सकता है – (i) निवल राज्य घरेलू उत्पाद में कुल बैंक ऋण का अनुपात, तथा (ii) प्रति व्यक्ति बैंक शाखाओं द्वारा मापित वित्तीय समावेशन अथवा व्यापन (यथा, प्रत्येक राज्य में प्रति दस लाख लोग कार्यरत बैंक शाखाओं की कुल संख्या)। देखा जाता है कि वित्तीय गहनता, भारत में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के साथ एक नकारात्मक एवं महत्त्वपूर्ण सह-संबद्ध रखती है। यह ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर घटे हुए पलायन से संभव हुआ है। इस प्रकार, बैंकिंग क्षेत्र विकास और वित्तीय समावेशन, आय असमानता और गरीबी घटा सकते हैं।

8.3.3 बीमा

तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा प्रायः निम्न आय वाले लोगों के लिए बहुत खर्चीली होती है। परिणामतः, तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा चाहने वाले लोग प्रायः अनुपचारित ही रह जाते हैं अथवा अस्पताल के कमर तोड़ बिल थामे रह जाते हैं; ये दोनों ही गरीबी को बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त, तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा की अपेक्षा रखने वाले हृदय रोग एवं कैंसर के मामले अनेक देशों में बढ़ रहे हैं, खासकर भारत जैसे निर्धनता की उच्चतर प्रासंगिकता वाले देशों में। इस लिहाज से आवश्यकता पूर्ति हेतु भारत में अनेक राज्यों ने सामाजिक बीमा कार्यक्रम शुरू किए हैं जो गरीबी रेखा से नीचे अवस्थित कुटुंबों को निःशुल्क तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, वर्ष 2010 में आरंभ (कर्नाटक में) वाजपेयी आरोग्यश्री योजना (VAS) निःशुल्क अभिलक्षित तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं के लिए लाभार्थियों को हक़दार बनाया, जिनमें शामिल हैं : हृदय संबंधी, रसौली रोग संबंधी, तंत्रिका-तंत्र संबंधी, अग्निक्षत एवं अभिघात संरक्षा। गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम (यथा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना) से भिन्न, उक्त योजना (VAS) में केवल तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या ही शामिल है और इसमें किसी पूर्व नामांकन अथवा वार्षिक बीमा किश्तें चुकाने की आवश्यकता नहीं होती। यह हृदय संबंधी एवं रसौली-संबंधी दशाओं वाले ऐसे रोगियों के स्वास्थ्य परिचर्या सेवा-प्रदाताओं को प्रोत्साहन भी देती है जिनके उपचार में महँगी विशेष संरक्षा वांछित होती है।

8.3.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में लघु अपंजीकृत उद्यमों में स्व-रोज़गार तथा औपचारिक क्षेत्र की असंरक्षित नौकरियों में वेतनिक रोज़गार दोनों शामिल होते हैं। इसका अर्थ है कि सभी अनौपचारिक कर्मचारी निर्धन नहीं है और न ही सभी कार्यरत निर्धन केवल अनौपचारिक क्षेत्र में लगे हैं। दूसरे शब्दों में, विश्वभर में ऐसे कर्मचारियों का एक वर्धमान प्रखण्ड है जो सामाजिक सुरक्षा के कोई भी लाभ लिए बिना औपचारिक क्षेत्र में से अनौपचारिक रोज़गार निकाल लेते हैं। इस प्रवृत्ति में आपाती स्वास्थ्य परिचर्या खर्चों के प्रति अपनी भेद्यता हेतु मान्यता अपेक्षित होती है, जो कि निर्धन वर्ग को और भी अधिक हाशिए पर धकेल देता है।

8.3.5 भेदभाव

गरीबी और भेदभाव प्रायः संबद्ध होते हैं। सजातीयता, जाति, लिंग, आदि पर आधारित भेदभाव परिवारों, विद्यालयों एवं कार्य-प्रतिवेश में संस्थागत प्रभावों की एक जटिल श्रृंखला के माध्यम से आर्थिक अवसर की सुलभता को सीधे प्रभावित करता है। भेदभाव गरीबी का कारण भी बनता है और गरीबी निवारण में बाधक भी। यद्यपि 'सहस्राब्दि विकास लक्ष्य' (MDGs) के अंतर्गत उपलब्धियों ने समुचित प्रगति को सहारा दिया है, ऐसे देशों में भी जहाँ उक्त लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है, असमानताएँ उपजी हैं। इस तथ्य को पहचाने जाने से वर्ष 2015–पश्चात् नवीकृत उक्त लक्ष्य (MDG) प्राधार में बढ़ती आर्थिक असमानताएँ घटाने की दिशा में काम करने के महत्त्व विषयक जागरूकता बढ़ती दिखाई दी है। इसका एक मुख्य अवयव है– भेदभाव दूर करने हेतु सक्रिय रूप से काम करना।

8.4 गरीबी निवारण हेतु किये गये उपाय : वर्ष 2010 तक

किसी भी सुघड़ और संपूर्ण गरीबी-रोधी रणनीति का एक अभिन्न भाग होना चाहिए— धारणीय तीव्र संवृद्धि। संकल्पनात्मक रूप से, धारणीय तीव्र संवृद्धि तेज़ी से गरीबी घटाने के लिए दो माध्यमों के सहारे काम करती है। प्रथम, तीव्र संवृद्धि रोज़गार सृजन करती है और वास्तविक वेतनों में वृद्धि करती है। दूसरे, तीव्र संवृद्धि सरकारी राजस्व में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करती है। बढ़ा राजस्व, बदले में, अपेक्षाकृत तेज़ गति से सामाजिक खर्चों के विस्तार में सहायक बनता है। भारत ने स्वतंत्रता-पश्चात् तीन से भी अधिक दशकों तक अति निम्न आय और निम्न संवृद्धि से शुरुआत की। परिणामतः, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं प्रत्यक्ष गरीबी-रोधी कार्यक्रमों पर प्रति व्यक्ति व्यय का अपेक्षाकृत निम्न स्तर देखा गया। 1990 के दशक में और वर्ष 2003—04 से 2011—12 के दौरान तीव्रतर संवृद्धि से स्थिति बदली, जिससे भारत एक सर्वतोमुखी ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना और एक ऐसी सर्वव्यापी प्रायः सार्वजनिक-वितरण प्रणाली (PD) लागू करने में सक्षम हुआ जो उच्च रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त दामों पर अनाज मुहैया कराती है। इसी परिप्रेक्ष्य में, प्रस्तुत पाठांश में हम तीन *प्रमुख* क्षेत्रों पर चर्चा करेंगे जो कि भारत में गरीबी निवारण की दृष्टि से *महत्त्वपूर्ण* हैं।

8.4.1 कृषिक संवृद्धि

गरीबी घटाने हेतु किसी भी रणनीति को ग्रामीण भारत के समक्ष उन मामलों को निपटाने में सक्षम होना ही चाहिए जिन पर कुल जनसंख्या का लगभग 68.6 प्रतिशत अब भी निर्भर है (यथा, वर्ष 2011 के जनगणना के अनुसार, लगभग 83.3 करोड़ लोग)। इसके अलावा, वर्ष 2011—12 में, भारत के निर्धन वर्ग का लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में ही रहता है, जहाँ अधिकांश की आजीविका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषिक क्षेत्र के कार्य-निष्पादन पर ही निर्भर है। ग्रामीण फार्म एवं ग़ैर-फार्म आमदें इतनी अधिक परस्पर-निर्भर होती हैं कि किसी सशक्त ग़ैर-फार्म ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी एक जीवंत कृषिक संवृद्धि की ज़रूरत होती है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के वर्ष 2011—12 के रोज़गार-बेरोज़गारी सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में कृषि एवं सहबद्ध क्रियाकलापों ने कुल कार्यबल के 49 प्रतिशत को रोज़गार दिया हुआ था। इतने विशाल कार्यबल के कृषि पर निर्भर होने के बावजूद, सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश 15 प्रतिशत से नीचे है। कृषि में श्रमबल के इस विषम वितरण हेतु कारणों में से एक है— ग्राम स्तर पर अथवा निकटवर्ती कस्बों एवं शहरों में वैकल्पिक आजीविका अवसरों का अभाव। परंपरागत कृषि प्रणालियों से जुड़ा अतिरिक्त श्रम बल निम्न फार्म उपज और आय में ही परिणत हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी के इस चक्र को तोड़ने के लिए एक द्विधारी रणनीति की आवश्यकता है— एक, हम कृषि क्षेत्र का निष्पादन सुधारें, और दो, इसके साथ ही, ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में उद्योग एवं सेवाओं में रोज़गार सृजन करें।

8.4.2 मध्याह्न भोजन योजना

मध्याह्न भोजन योजना (MDMS) वर्ष 1995 में एक केंद्र-प्रायोजित योजना के रूप में शुरू की गई, जिसके उद्देश्य थे— (i) स्कूल जाने वाले बच्चों की पौषणिक स्थिति सुधारना, (ii) पढ़ाई के समय लगने वाली भूख से मुक्ति और स्कूल में नामांकन वृद्धि, तथा, (iii) बीच में पढ़ाई छोड़ देना (अर्थात् ड्रॉप-आउट) दरें न्यूनतम कर विद्यालय में उपस्थिति कायम रखना। वर्ष 2008—09 से यह कार्यक्रम उच्चतर प्राथमिक स्तर तक बढ़ाया जा चुका है। सरकार उक्त योजना (MDMS) का विस्तार एक पुरोगामी तरीके

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

से करना चाहती है ताकि इसमें निजी विद्यालयों के बच्चों को भी शामिल किया जा सके (क्योंकि वे आर्थिक रूप से कमज़ोर तबकों के लिए 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित रखते हैं), ख़ासकर, अनुसूचित जाति/जनजाति एवं अल्पसंख्यक-केंद्रित क्षेत्रों में। बहरहाल, स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम के साथ उक्त योजना (MDM) की अभिसृति निकृष्ट ही रहा है। ऐसा लगता है, उक्त योजना के अंतर्गत प्रदान किए जाने वाले पोषण की उन्नत गुणवत्ता एवं सुरक्षा हेतु राज्य-विशिष्ट दिशा-निर्देश क्रमविकसित करने के लिए चिकित्सा महाविद्यालयों, गृह-विज्ञान संकायों एवं राज्य-स्तरीय मिड-डे मील योजना परिचालक एवं प्रबोधन समितियों के संजाल बनाने की आवश्यकता है। अब तब केवल 75 प्रतिशत विद्यालयों में ही रसोई घर है। इसका अर्थ है कि 25 प्रतिशत विद्यालय (3.62 लाख) खुले में अथवा पढ़ाई के कमरों में ही यह भोजन तैयार करवाते हैं। यह छात्रों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा की गुणवत्ता हेतु एक बड़ा चिंतनीय विषय है।

8.4.3 मनरेगा (MGNREGA)

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा–MGNREGA) प्रत्येक ग्रामीण कुटुंब के एक सदस्य को किसी ज्ञात वित्तीय वर्ष में एक विनिर्दिष्ट वेतन पर अकुशल रोज़गार के 100 दिनों की गारंटी देता है। यह योजना 200 चुने हुए ज़िलों में वर्ष 2006–07 में शुरू की गई परंतु धीरे-धीरे पूरे देश में फैला दी गई। इस योजना का अंतर्निहित उद्देश्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन कुटुंबों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। अन्य उद्देश्यों में शामिल हैं– प्राकृतिक संसाधन आधार का कायाकल्प करना, उत्पादशील ग्रामीण परिसम्पत्तियाँ सृजित करना, ग्रामीण निर्धन वर्ग को सुरक्षा जाल प्रदान कर स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देना, महिला सशक्तीकरण सुनिश्चित करना और तृणमूल-स्तरीय लोकतांत्रिक संस्थाओं को मज़बूत करना। मनरेगा के अंतर्गत लिए गए लगभग दो-तिहाई कार्य जल संरक्षण एवं कृषि उत्पादता पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाले अन्य क्रियाकलापों से ही जुड़े हैं। बड़ी संख्या में मनरेगा कार्यकर्ता छोटे व सीमांत किसान हैं। अनुसूचित जातियाँ एवं जनजातियाँ कुल रोज़गार के जनदिवसों के लगभग 47 प्रतिशत का लेखा-जोखा देती हैं। तैंतीस प्रतिशत के मापदंड के मुकाबले, इस योजना में महिला भागीदारी 50 प्रतिशत से भी अधिक है (यथा, वर्ष 2012–13 में 51.3 प्रतिशत, वर्ष 2013–14 में 52.8 प्रतिशत तथा वर्ष 2014–15 में 54.9 प्रतिशत)। औसत मज़दूरी वर्ष 2006–07 में रु. 65 से बढ़कर वर्ष 2014 में (प्रति व्यक्ति प्रतिदिन) रु. 144 हो गया है। एक महत्त्वपूर्ण विकास के रूप में, मनरेगा वित्त मंत्रालय द्वारा देश में सभी ज़िलों के लिए प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) की घोषणा है। नकारात्मक पक्ष में, वार्षिक रूप से प्रत्येक कुटुंब में एक व्यक्ति को रोज़गार के प्रत्याभूत 100 दिनों की तुलना में, मनरेगा की औसत उपलब्धि वर्ष 2009–10 को छोड़कर, जबकि यह लगभग 54 दिनों तक पहुँच गई थी, 50 से भी कम दिन रही है।

8.5 गरीबी निवारण के अभिनव उपाय : वर्ष 2010–उपरांत

वर्ष 2010 के उपरांत वर्षों में तीन महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। ये निम्नवत् हैं :

8.5.1 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013

भारत में सार्वजनिक-वितरण प्रणाली (PDS) का एक लम्बा इतिहास रहा है, जिसके द्वारा सरकार नागरिकों को आर्थिक सहायता प्राप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराती है। मूल

रूप से, यह योजना सर्वजनीन थी परंतु तदन्तर इसे निर्धन वर्ग पर अभिलक्षित चयनात्मक बना दिया गया। वर्ष 2013 का राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA) विनिर्दिष्ट करता है कि ग्रामीण जनसंख्या का 75 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग आर्थिक सहायता प्राप्त कीमतों पर पाँच किलोग्राम खाद्यान्न, प्रति व्यक्ति, प्रति माह हेतु पात्र होगा। अत्यंत निर्धन कुटुंबों का एक लघु उपसमूह इस कार्यक्रम के अंतर्गत सात किलो खाद्यान्न प्राप्त करने का हक़दार है। व्यापक रूप से, उक्त प्रणाली (PDS) देश के चुनिंदा क्षेत्रों में पूर्व-निर्दिष्ट न्यूनतम समर्थन कीमतों (MSP) पर खाद्यान्नों के सरकारी प्रापण के आधार पर काम करती है। इस अन्न को यह फिर राज्यों को उपलब्ध कराती है जो बदले में उसे उचित दर दुकानों पर समाप्त एक विशाल संजाल के माध्यम से लाभार्थियों तक पहुँचाते हैं।

8.5.2 प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण

प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) विधि से विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत लाभों के वर्तमान सदोष वितरण के स्थान पर गरीबी-रोधी कार्यक्रमों में क्रांति लाने पर अभिलक्षित दो प्रमुख साधन हैं— जन धन बैंक खाते और बायोमैट्रिक परिचय-पत्र (आधार)। मनरेगा के अंतर्गत, जिसमें वेतनों का प्रत्यक्ष हस्तांतरण पहले ही शुरू हो चुका है, नियोक्ता आधार पहचान का प्रयोग कर एक केंद्रीय डेटाबेस में किसी भी कर्मचारी का रोज़गार दर्ज़ करता है। इससे वेतन भुगतान का हस्तांतरण किसी केंद्र सरकार के खाते से कर्मचारी के बैंक खाते में हो जाना सुनिश्चित हो जाता है। कर्मचारी फिर अपने मोबाइल अथवा किसी बैंक अभिकर्ता के माध्यम से अपने खाते का लाभ उठा सकता है। सरकार ने आधार से जुड़े बैंक खातों के लिए कुछ बीमा योजनाएँ भी शुरू कीं। उदाहरण के लिए, 10 करोड़ से भी अधिक लाभार्थियों को रु-पे (RuPay) कार्ड जारी किए गए हैं, जो कि रु. 1.00 लाख प्रति कुटुंब व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा का लाभ प्राप्त करायेंगे। इसके अलावा, रु. 30,000 का एक जीवन बीमा संरक्षा का प्रावधान भी है। उक्त हस्तांतरण (DBT) में बड़ा बदलाव यह है कि यह ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में आने वाले कुटुंबों को लक्ष्य बनाता है।

8.5.3 सबके लिए आवास, 2016

वर्ष 2016 में इंदिरा आवास योजना (IAY) और राजीव आवास योजना (RAY) नामक दो ग्रामीण-शहरी आवास योजनाओं का विलय कर एक नया कार्यक्रम 'सबके लिए आवास (ग्रामीण एवं शहरी)' शुरू किया गया। यह कार्यक्रम वर्ष 2022 तक सभी के लिए जल, स्वच्छता प्रबंध, बिजली एवं ब्रॉडबैंड आदि बुनियादी सुख-सुविधाओं वाले पक्के घर मुहैया कराने पर अभिलक्षित है। सफलतापूर्वक क्रियान्वित किए जाने की स्थिति में, यह कार्यक्रम देशभर में अत्यावश्यक शालीन रोज़गार का सृजन करके पहले से अधिक निवेश में परिणत होने की संभावना रखता है। बहरहाल, इस योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ हैं। सर्वप्रथम, आय-अनुकूल आवास, इस उद्देश्य हेतु भूमि उपलब्ध कराए बिना संभव नहीं होगा। इस संबंध में शहरी भूमि सीमा अधिनियम (1976) से जुड़े मुद्दे सुलझाए जाने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 2 (दिये गए स्थान अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) पोषणिक स्थिति गरीबी का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक किस प्रकार हैं?

....

....

....

....

2) गरीबी निवारण में ऋण किस प्रकार उपयोगी होता है?

....

....

....

....

3) गरीबी से संघर्ष में बीमा क्या भूमिका निभाता है?

....

....

....

....

4) धारणीय तीव्र संवृद्धि गरीबी घटाने में किस प्रकार मदद करती है?

....

....

....

....

5) गरीबी से संघर्ष में 'कृषिक वृद्धि' किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है?

....

....

....

....

6) भारत में गरीबी-रोधी कार्यक्रमों में क्रांति लाने पर प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) किस प्रकार अभिलक्षित है?

....

....

....

....

....

....

8.6 सार-संक्षेप

व्यक्ति गणना अनुपात जैसे कुछ गरीबी मापदंड परिकलन में सरल हैं किंतु गरीबी की गहनता का प्रग्रहण करने में कम दक्ष हैं। गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) और वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SQGI) अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे गरीबी की गहनता को ध्यान में रखते हैं। भारत में, गरीबी के आकलन NSSO उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षणों द्वारा प्रस्तुत उपभोग प्रतिमान को ध्यान में रखकर विकसित किए गए हैं। उपभोग आवश्यकताओं के एक न्यूनतम पिटक को लेकर, जिसमें अभी हाल ही में कुछ ग़ैर-खाद्य वस्तुएँ शामिल की गई हैं, गरीबी रेखाएँ बुनियादी ज़रूरतों की सुलभता हेतु वांछित आय के स्तर के समतुल्य निर्धारित की जाती हैं। समय-समय पर किए गए आकलन वर्ष 1961 में ग्रामीण क्षेत्रों हेतु रु- 20/— प्रति व्यक्ति प्रति माह से वर्ष 2010 के आसपास रु. 972/— प्रति व्यक्ति प्रति माह का एक गरीबी-रेखा आय तक भिन्न-भिन्न रहे हैं। अनेक गरीबी निवारण योजनाएँ शुरू की जा चुकी हैं, जिन्होंने जनसंख्या में गरीबी-स्तरीय लोगों का भाग घटाने में योगदान दिया है। अभी हाल ही में, 2000—उपरांत वर्षों में, मनरेगा, प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण, मूल्यवर्धित सेवा, शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मध्याह्न भोजन योजना का क्रमिक विस्तार, आदि कुछ सरकारी पहलकारियाँ हैं जो संसाधनों की चोरी रोकने व अभिप्रेत प्रस्तुति सुनिश्चित करने पर अभिलक्षित हैं।

8.7 शब्दावली

गरीबी रेखा : आधारभूत आवश्यक वस्तुओं को क्रय करने हेतु वांछित आय का न्यूनतम स्तर, जो कि प्रति व्यक्ति आधार पर व्यक्त किया जाता है और इसके नीचे आने वाला कोई भी व्यक्ति गरीब अर्थात् निर्धन माना जाएगा, यथा— गरीबी रेखा से नीचे का व्यक्ति।

व्यक्ति-गणना अनुपात (HCR) : गरीबी मापने की एक विधि जिसमें गरीबी-रेखा आय से नीचे आने वाले लोगों की कुल संख्या को जनसंख्या में सर्वेक्षण किए गए लोगों की कुल संख्या से विभाजित करते हैं।

गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) : यह एक गरीबी की गहनता का मापदंड है जिसमें गरीबी से आने वाले लोगों को संख्यात्मक रूप से 'शून्य' माना जाता है (यथा— गरीबी रेखा से ऊपर) तथा गरीबी-रेखा से नीचे आय वाले लोगों की संख्यात्मक रूप से वास्तविक आय एवं गरीबी रेखा-स्तरीय आय के सैद्धांतिक समतुल्य के बीच अंतर के बराबर माना जाता है।

वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SPGI) : गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) गरीबी रेखा के नीचे के प्रत्येक व्यक्ति को एक समान भार निर्दिष्ट करता है। इससे यह सूचकांक (PGI) गरीबी की कोटि अथवा

गहनता के प्रति असंवेदनशील हो जाता है। वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SPGI) गरीबी के वास्तविक विस्तार के बराबर भार निर्दिष्ट कर इस अभाव को दूर कर देता है, जिससे उनको वृहत्तर भार दिया जाना सुनिश्चित हो जाता है जिनकी गरीबी की प्रस्थिति दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रचण्ड हो।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Datt Gaurav and Martin Ravallion (1992). 'Growth and Redistribution Components of Changes in Poverty Measures: A Decomposition with Applications to Brazil and India in the 1980s." *Journal of development economics* 38, No. 2 (1992): 275-295.

2) Gillis Malcolm, Dwight H Perkins, Michael Roemer and Donald R. Snodgrass (1992). *Economics of Development,* No. 3, WW Norton & Company Inc.

3) Gupta Akhil (2012). *Red Tape: Bureaucracy, Structural Violence and Poverty in India,* Duke University Press.

4) Kohli, Atul (1987). *The State and Poverty in India: The Politics of Reform,* Cambridge University Press.

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) गरीबी का अर्थ है – आय, अथवा भौतिक सम्पत्ति, के न्यूनतम स्तर का अभाव, जिसके कारण व्यक्ति खाद्य, वस्त्र एवं आवास संबंधी अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाता है। तकनीकी रूप से, इसे 'गरीबी रेखा' की संकल्पना द्वारा परिभाषित किया जाता है जो कि ऐसी रेखा को इंगित करती है जो स्वयं को उत्पादनक्षम रूप से सहारा देने हेतु न्यूनतम आवश्यकताओं का द्योतक होती है।

2) सापेक्ष गरीबी व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को समाज में अन्य लोगों की इसी स्थिति के संबंध में ध्यानार्थ लेती है। निरपेक्ष गरीबी का हमने ऊपर उल्लेख किया, यथा– खाद्य, वस्त्र एवं आवाज जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के दाम चुकाने हेतु न्यूनतम आय अथवा सम्पत्ति का अभाव।

3) गरीबी आय दृष्टिकोण अथवा उपभोग दृष्टिकोण द्वारा मापी जाती है। परवर्ती में अनानिवार्य रूप से धन खर्च कर किया गया उपभोग शामिल होता है; यथा, वेतन के बदले में प्राप्त खाद्य। आय दृष्टिकोण में इसे बुनियादी ज़रूरतों का दाम चुकाने हेतु प्रतिदिन वांछित धन के रूप में परिभाषित किया जाता है। दोनों ही कालांतर में परिवर्तन के अधीन हैं।

4) इन दृष्टिकोणों के तहत न्यून पोषण अथवा कुपोषण नहीं मापा गया। इसमें बुनियादी शिक्षा एवं स्वास्थ्य व्यय पूरे करने हेतु आवश्यकता को ध्यान में नहीं रखा गया।

5) इसे गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की संख्या एवं जनसंख्या में कुल लोगों की संख्या के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। अतएव, यह गरीबी की गहनता अथवा विस्तार नहीं प्रकट करता।

6) जबकि गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की एकसमान संख्या दर्शाने वाले दो क्षेत्रों हेतु व्यक्ति गणना अनुपात बराबर होगा, गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) भिन्न होगा। इससे नीति-निर्माता क्षेत्र में अभिलक्षित सहायता पर ध्यान केंद्रित कर पाएँगे। इस सूचकांक (PGI) की एक सीमाबद्धता यह है कि यह निर्धन कुटुंबों अथवा लोगों की आमदों के बीच असमानता की कोटि के प्रति संवेदनशील नहीं है।

7) गरीबी अंतरों के समानुपात भार प्रयोग कर, SPGI PGI की कमी से उबर जाता है, जो कि उन सभी को समान भार निर्दिष्ट करता है जो ग़रीब हैं। व्यवहारतः, आप उक्त अंतर को इस तथ्य से देख सकते हैं कि उन सभी के लिए PGI हेतु अनुपात सामान्यतः '1' से गुणा किया जाता है ख्यथा, $\left(\frac{Z-Y_i}{Z}\right)$ को '1' से गुणा किया जाता है जो गरीब हैं जबकि SPGI में, यह होगा– $\frac{G_i}{z}$ की गुणा $\frac{G_i}{z}$ से।

8) सेन के मापदंड में सभी तीन मापदंडों पर समन्वित रूप से विचार किया जाता है; यथा, व्यक्ति गणना अनुपात (गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की संख्या), PGI (गरीबी की गहनता) तथा SPGI (किसी समूह के भीतर गरीबी का वितरण)। यह, दरअसल, व्यक्ति गणना और गरीबी अंतर मापांकों का भारित औसत होता है।

9) जबकि पिछले सर्वेक्षणों में केवल खाद्य वस्तुओं पर विचार किया गया था, वर्ष 2000–पश्चात् ग़ैर-खाद्य वस्तुओं पर भी विचार किया गया।

10. मासिक प्रति व्यक्ति व्यय के रूप में व्यक्त, ग्रामीण गरीबी हेतु आकलन वर्ष 1961 में रु. 20 से वर्ष 1974 में रु. 49 और वर्ष 2000 में रु. 810 तक भिन्न-भिन्न हैं। वर्ष 2010 पश्चात्, ग्रामीण गरीबी रु. 972 पर आकलित की गई, जबकि शहरी गरीबी स्तर रु. 1407 पर रखा गया है।

बोध प्रश्न 2

1) नवजात शिशुओं के मानसिक एवं शारीरिक विकास के अभाव में परिणत होकर; न्यून पोषित माताओं द्वारा बच्चों का निम्न जन्म भार; बच्चों के लालन-पालन एवं देखभाल संबंधी प्रथाओं का अभाव, आदि।

2) इससे निर्धन परिवार को बेहतर स्वास्थ्य रक्षा एवं बाल शिक्षा में निवेश करने में मदद मिल सकती है। यह सूक्ष्म उद्यम लगाने में भी मददगार हो सकती है।

3) सामाजिक सुरक्षा बीमा, पूर्व नामांकन की आवश्यकता एवं बीमा-किश्त बोझ के बिना प्रस्तुत, प्रमुख तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा हेतु संरक्षा प्रदान कर एक उपयोगी भूमिका निभा सकते हैं जो कि महँगी और निर्धन कुटुंबों के बूते से बाहर होती हैं।

4) दो परिप्रेक्ष्यों में : (i) रोज़गार सृजन कर व वास्तविक वेतन बढ़ाकर; तथा (ii) बढ़े सामाजिक क्षेत्र निवेशों हेतु सरकारी राजस्व में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करके।

5) दो तरीके से – (i) कृषिक क्षेत्रों का निष्पादन सुधार कर; और (ii) ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में उद्योग एवं सेवाओं में रोज़गार सृजन कर।

6) देशव्यापी प्रसार पर अभिलक्षित और भुगतान एवं आर्थिक परिदान निर्धन कर्मचारियों के बैंक खातों से सीधे जोड़कर; प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण के माध्यम से सार्वजनिक धन की चोरी संबंधी प्रमुख कमी को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 विषमता*

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 विषय प्रवेश

9.2 विषमता के प्रकार

9.2.1 क्षैतिज विषमता एवं अनुलम्ब विषमता

9.3 भारत में आय, उपभोग एवं पोषण में विषमता

9.3.1 आय विषमता

9.3.2 उपभोग विषमता

9.3.3 पोषणिक विषमता

9.4 क्षेत्रीय विषमता

9.4.1 जीवन-स्तर

9.4.2 क्षेत्रीय अपसरण

9.5 सार-संक्षेप

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- विषमता को परिभाषित कर सकें;
- विषमता के प्रकारों का वर्णन कर सकें, विशेषकर क्षैतित विषमता एवं अनुलम्ब विषमता के बीच भेद करते हुए;
- किन्हीं साधारण आँकड़ों में अपने परिकलन हेतु प्रयुक्त निष्पीड़न के साथ गिनी (गिनी गुणांक) द्वारा दी गई आय में विषमता का मापदंड इंगित कर सकें;
- भारत में 'आय, उपभोग एवं पोषण' के संदर्भ में विषमता में रुझानों का विश्लेषण कर सकें;
- भारत में 'जीवन-स्तर' एवं 'कार्यक्षेत्रीय संवृद्धि' वर्णन के शब्दों में विषमता में क्षेत्रीय अपसरण के विषय पर चर्चा कर सकें; तथा
- भारत में सुधारपूर्व एवं सुधारोपरांत वर्षों में एक तुलनात्मक वर्णन में 'क्षेत्रीय अपसरण' की संकल्पना पर विचार कर सकें।

9.1 विषय प्रवेश

विषमता का शब्दकोशीय अर्थ है– 'समाज में एक अन्यायपूर्ण स्थिति जिसमें कुछ लोगों के पास दूसरों की अपेक्षा अधिक अवसर, आय, आदि होते हैं।' यही लोगों अथवा समूहों के बीच सामाजिक प्रस्थिति एवं धन अथवा अवसर में अंतर है। अर्थशास्त्र में

*डॉ. स्मृतिकन घोष, सहायक प्रोफेसर, स्कॉटिश कॉलेज, कोलकाता

विषमता का अर्थ होता है– व्यक्तिजन, समूहों अथवा देशों के बीच आर्थिक क्षेम में अंतर। इस प्रकार की विषमता लोगों की अक्षमता, सजातिविषयक पृष्ठभूमि एवं लिंग पर निर्भर करती है। एक स्पष्ट भेद, तद्नुसार, 'परिणाम में विषमता' और 'अवसर में विषमता' के बीच किया जाता है। पूर्ववर्ती तब होता है जब लोगों के पास द्रव्यात्मक धन का समान स्तर नहीं हो पाता, जो कि ऐसी स्थिति को इंगित करता है जिसमें लोग असदृश आर्थिक दशाओं में रहते हैं। अवसर में विषमता, दूसरी ओर, कोई सामान्य आरंभ-बिंदु सुनिश्चित करने से संबद्ध होती है। अपने योग्यता-क्षमता दृष्टिकोण के माध्यम से प्रो. अमर्त्य सेन द्वारा प्रस्तुत अवसर की विषमता को 'चुनने व कार्य करने हेतु लोगों की स्वतंत्रता' के रूप में परिभाषित किया जाता है। जहाँ ये दोनों राज्य द्वारा 'सामाजिक न्याय सिद्धांत' के तहत 'अधिकार' के विषय स्वरूप प्रदान किए जाने ही चाहिए। इन दो आधारभूत भेदों के अलावा, विषमता के अन्य कई विशिष्ट प्रकार होते हैं। उदाहरण के लिए, विषमता आय, उपभोग और पोषण के संदर्भ में परिभाषित की जा सकती है। यह 'समूहों के बीच विषमता' (जिसे क्षैतिज विषमता कहते हैं) और 'लोगों के बीच विषमता' (जिसे अनुलम्ब विषमता कहते हैं) के शब्दों में भी परिभाषित की जा सकती है। विषमता के विभिन्न प्रकारों को समझने के लिए हमारे पास अनेक मापदंड होते हैं। इस इकाई में हम इन्हीं संकल्पनाओं एवं विषयों पर चर्चा करेंगे।

9.2 विषमता के प्रकार

मोटे तौर पर, विषमता को आर्थिक विषमता और सामाजिक विषमता के रूप में पहचाना जाता है। आर्थिक विषमता का अधिकांशतः अर्थ होता है– 'आय विषमता', जो कि उपभोग, पोषणिक एवं जीवन दशाओं में रूपायित होती है। सामाजिक विषमता, दूसरी ओर, अनेक आयाम दर्शाती है, जिनमें प्रमुख हैं– (i) राजनीतिक विषमता, और (ii) अवसरों में विषमता (जो कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच के अवसरों से जन्म लेती है)।

आय विषमता वह सीमा दर्शाती है जहाँ तक कि जनसमुदाय के बीच आय असमान रूप से वितरित होती है। यह कुटुंब अथवा व्यक्ति की आय का असमान वितरण हो सकता है। आय विषमता प्रायः जनसमुदाय की किसी प्रतिशतता को प्राप्त आय की प्रतिशत के रूप में प्रस्तुत की जाती है। उदाहरणार्थ, किसी देश की आय के 70 प्रतिशत पर देश की जनसंख्या के 20 प्रतिशत का नियंत्रण है। इस दृष्टिकोण से, आय विषमता 'निष्पक्षता' अथवा 'न्याय' की अवधारणा से जुड़ी होती है क्योंकि यदि किसी देश की आय का असंगत रूप से वृहद् भाग अमीर वर्ग के पास ही हो तो आमतौर पर इसे 'अनुचित' माना जाएगा। आय विषमता के कारण क्षेत्र, लिंग, शिक्षा व सामाजिक प्रस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अर्थशास्त्रियों के बीच आय विषमता के निहितार्थों के विषय पर और इस विषय पर कि यह अंततोगत्वा सकारात्मक होता है अथवा नकारात्मक, सर्वसम्मति का अभाव है।

भारत में, आय विषमता सन् 1980 के दशक से बढ़ी है; 1980 के दशक में राष्ट्रीय आय का 30 से 35 प्रतिशत अर्जकों के शीर्ष 10 प्रतिशत के पास ही था, परंतु हाल ही में (वर्ष 2016), शीर्ष 10 प्रतिशत की आय का अंश 55 प्रतिशत तक बढ़ गया है (विश्व विषमता रिपोर्ट, 2018)। इस प्रकार का रुझान 'उच्च आय विषमता' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सामाजिक विषमता को अनेक तरीकों से देखा जा सकता है। यह आय बढ़ाने हेतु आवश्यक अवसरों के प्रकार (यथा, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ

उठाने हेतु अवसरों में समानता लाने) अथवा अपनी बात सुनी जाने हेतु संघटित होने में असमर्थता (यथा, राजनीतिक विषमता) से जुड़ी हो सकती है। उक्त अवसर उन परिस्थितियों से संबद्ध होते हैं जो किसी मनुष्य विशेष के नियंत्रण से बाहर होती हैं, परंतु राज्य द्वारा अथवा आयोजित संघटन द्वारा अनुकूल बनाई जा सकती हैं।

9.2.1 क्षैतिज विषमता एवं अनुलम्ब विषमता

विषमता में अंतर्समूह (यथा, समूहों के बीच) अथवा अंतःसमूह (यथा, किसी समूह के भीतर) के परिप्रेक्ष्य से भिन्नता दर्शाई जा सकती है। इसके आधार पर दो प्रकार की विषमताएँ सामने आती हैं (यथा क्षैतिज विषमता और अनुलंब विषमता)। क्षैतिज विषमता का अर्थ है– सांस्कृतिक रूप से परिभाषित अथवा गठित समूहों (यथा, अंतर्समूह; उदाहरणार्थ, सजाति, धर्म द्वारा) के बीच विषमता। इस बात के वर्धमान साक्ष्य हैं कि क्षैतिज विषमता की प्रकृति एवं स्तर 'हिंसक संघर्ष के जोखिम' संबंधी महत्त्वपूर्ण निर्धारक होते हैं। समूह विषमता सशक्त शिकायतों को जन्म देती है जो नेता वर्ग राजनीतिक विरोध हेतु लोगों को संघटित करने में प्रयोग कर सकता है। जबकि इस प्रकार के संघटन आयोजित विरोध-प्रदर्शनों के प्रत्युत्तर में सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले लाभों के माध्यम से विषमता घटाने हेतु साधनों के रूप में स्वयं काम कर सकते हैं, एक आर्थिक दृष्टिकोण से क्षैतिज विषमता घटाने पर ध्यान देना संघर्ष-प्रवण समाजों में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होता है। ऐसा इसलिए है कि हिंसक संघर्ष विकास को क्षति पहुँचाने व ग़रीबी बढ़ाने वाले के रूप में ही जाने जाते हैं।

अनुलंब विषमता का अर्थ है, व्यक्तियों अथवा कुटुंबों के बीच विषमता। अनुलंब विषमता की प्रकृति एवं विस्तार अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण है। इनमें से एक है– *पहले,* न्यायसंगत समाज का निर्माण, क्योंकि किसी भी समतावादी अथवा अपेक्षाकृत अधिक समान समाज में प्रसन्नता कहीं अधिक दिखाई देती है। *दूसरे,* विषमता का प्रसार, किसी भी प्रदत्त प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय के लिए, ग़रीबी के स्तर को निर्धारित करता है। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (MDGs) सकल जगत में ग़रीबी में रहने वाले लोगों की संख्या से संबद्ध है। *तीसरे,* इस बात के प्रमाण हैं कि एक अपेक्षाकृत अधिक समान अर्थव्यवस्था तीव्रतर विकास करती है। अतः, अनुलंब विषमता को घटाना एक आर्थिक लक्ष्य बन जाता है। *चौथे,* उच्चतर विषमता आमतौर पर आपराधिकता की उच्चतर दरों से जुड़ी होती है। इन्हीं सब बातों के मद्देनज़र, अनुलंब विषमता घटाने हेतु विकासशील नीतियाँ आवश्यक हैं।

अतएव, जबकि दोनों ही प्रकार की विषमताओं को दूर किया जाना आवश्यक है, संघर्ष का खतरा झेल रहे देशों के लिए, क्षैतिज विषमता घटाने पर ध्यान दिया जाना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर वहाँ जहाँ संघर्ष का कोई प्रमुख भूतपूर्व स्रोत रहा हो। जबकि अनुलंब विषमता विशिष्टतः आय एवं आवसरिक रूप से परिसंपत्तियों के शब्दों में मापी जाती है, क्षैतिज विषमता का मापदंड राजनीतिक, आर्थिक एवं समाजिक चरों की एक विस्तृत श्रृंखला तक विस्तीर्ण है।

9.3 भारत में आय, उपभोग एवं पोषण में विषमता

भारत सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं ताकि गरीब कुटुंबों को 'सवेतन रोज़गार' प्रदान कर उनकी आय बढ़ाने में मदद की जा सके और इस प्रकार, आय विषमता के दुष्प्रभाव कम किए जा सकें। इस तथ्य के साथ कि बड़ी संख्या में दरिद्रजन अशिक्षित और अकुशल हैं, इस प्रकार के कार्यक्रम रोज़गर की निर्धारित

दिवस-संख्या सुनिश्चित करने के लिए चलाए जाते हैं, जो कि प्रायः 'काम के बदले अनाज' आधार पर, खासकार ग़रीबी की रेखा से नीचे गुज़र-बसर करने वाले गरीब परिवारों के सहायतार्थ होते हैं। इस दिशा में किए गए प्रयासों का एक विस्तृत लेखा-जोखा 'रोज़गार एवं बेरोज़गारी' (भाग 10.3) विषय अगली इकाई में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान इकाई में इस भाग के प्रयोजन हेतु हम देखेंगे कि पिछले सात दशकों में भारत में 'आय, उपभोग एवं पोषक' संबंधी विषमताओं के लिहाज से क्या रुझान (यथा, कालांतर में किए गए प्रयासों का प्रभाव) रहा।

9.3.1 आय विषमता

भारत अपनी धन-संपत्ति (5600 अरब डॉलर के बराबर) के 54 प्रतिशत पर नियंत्रण रखने वाले लखपतियों के साथ वैश्विक रूप से दूसरा सर्वाधिक असमान देश है। यह विश्व में 10 सम्पन्नतम देशों में एक है और फिर भी औसत भारतीय अपेक्षाकृत गरीब है। इस आय विषमता के पीछे प्रमुख कारण, आमतौर पर किसी भी देश के लिए होते हैं– (i) उच्च रूप से असमान परिसंपत्ति वितरण; (ii) अपर्याप्त रोज़गार सृजन; और (iii) विभेदीय क्षेत्रीय संवृद्धि। विशेष रूप से, भारत के लिए आय विषमता के प्रमुख कारण निम्नवत् पहचाने जा सकते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया, अनुलंब विषमता विशिष्टतः आय एवं परिसंपत्तियों के पदों में मापी जाती है। परिसम्पत्तियों के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों में, कृषि भूमि अर्थात् जोतों पर विशिष्ट रूप से विचार किया जाता है। भारत में कृषि भूमि के वर्ग (स्वामित्व वाली भूमि के आकार के आधार पर, जहाँ 1 हेक्टेयर 2.47 अथवा स्थूलतः 2.5 एकड़ के बराबर होता है) निम्नलिखित छह रूपों में देखें जा सकते हैं – (i) भूमिहीन (0.002 हेक्टेयर से कम); (ii) सीमांत (0.002 से 1 हेक्टेयर); (iii) लघु (1–2 हेक्टेयर); (iv) अर्ध-मध्यम (2–4 हेक्टेयर); (v) मध्यम (4–10 हेक्टेयर); और (vi) वृहद् (10 हेक्टेयर से अधिक)। इसके अलावा, इस वर्गीकरण के उद्देश्य से, जनसमुदाय का सामाजिक वर्ग एक द्वितीयक चर के रूप में लिया जाता है। सामाजिक वर्ग को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है– (i) अनुसूचित जाति (SC), (ii) अनुसूचित जनजाति (ST), (iii) अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC), तथा (iv) अन्य। विभिन्न सामाजिक वर्गों के एक छोर से दूसरे छोर तक जोत विषयक आँकड़े राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा एकत्र एवं प्रकाशित किए जाते हैं। वर्ष 2010-11 हेतु इस संबंध में उपलब्ध नवीनतम आँकड़े (वर्ष 2013 में NSSO के 70वें दौर में प्रकाशित) निम्नलिखित रुझान दर्शाते हैं :

- कुल कार्योत्पादक जोतों का 75 प्रतिशत सीमांत जोते हैं, जहाँ अन्य 10 प्रतिशत कृषि भूमि लघु वर्ग में आती है। लगभग 7 प्रतिशत भूमिहीन हैं (यथा, 0.0002 हेक्टेयर से कम)। तद्नुसार, कुल 85 प्रतिशत कार्योत्पाद कृषि भूमि एक एकड़ से भी कम कृष्य भूमि के कार्यशील 'लघु एवं सीमांत' खण्ड के पास है। कुल परिचालित क्षेत्र के लिहाज़ से, वे लगभग 44 प्रतिशत का ही लेखा-जोखा देते हैं। इस प्रकार, औसत कृषि भूमि विशिष्ट रूप से बहुत कम है। दूसरी ओर, बड़ी जोतें (यथा, 10 हेक्टेयर से ऊपर का क्षेत्र) कुल जोतों के 1 प्रतिशत (0.7 प्रतिशत) से भी कम हैं परंतु कुल कृष्य क्षेत्र के लगभग 11 प्रतिशत के समान हैं। भू-जोतों में विषमता की विस्तार तो प्रत्यक्ष है परंतु, यह गिनी जैसे किसी संकेतक द्वारा भी मापी जा सकती है।

- स्वामित्व की सामाजिक श्रेणी द्वारा भूमि के संकेंद्रण हेतु गिनी-गुणांक अनुसूचित जाति हेतु 0.8, अन्य पिछड़ा वर्ग हेतु 0.7 और अनुसूचित जनजाति हेतु 0.6 है। चूँकि गिनी का मान 1 के निकट होने का अर्थ अधिक विषमता होता है, यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक सोपान से नीचे के लोगों का वर्ग भी वही है जो जोतों के स्वामित्व के लिहाज से नितांत अलाभान्वित है।

- बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थानों से वित्त की सरल सुलभता के कारण निजी निगमित क्षेत्र से संबद्ध बड़े पूँजीपतियों ने परिसंपत्तियों/धन-संपत्ति के संकेंद्रण की उच्च कोटि हासिल की हुई है।

इस प्रकार की उच्च आय विषमता के परिणाम हैं– (i) वर्ग संघर्ष; (ii) राजनीतिक प्रभुत्व; (iii) शोषण; (iv) एकाधिकार का सृजन; (v) अलोकतांत्रिक साधनों से प्रतिभा का दमन; (vi) नैतिक अपकर्ष; तथा (vi) असमान पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन।

9.3.2 उपभोग विषमता

उपभोग विषमता किंचित्-परिवर्तित मिश्रित संदर्भ अवधि (MMRP) स्तरों पर रुपयों में मासिक प्रतिव्यक्ति व्यय (MPCE) विषयक आँकड़ों द्वारा मापी जाती है। वर्ष 1993-94 तक, गरीबी की रेखा एकरूप संदर्भ अवधि (URP) आँकड़ों पर आधारित थी, जिनमें लोगों से किसी 30-दिवसीय अवधि के एक छोर से दूसरे छोर तक उनके उपभोग व्यय के विषय में पूछना शामिल था। वर्ष 1999-2000 से यह विधि बदलकर 'मिश्रित संदर्भ अवधि' (MRP) के अनुसार, आँकड़े एकत्र करना हो गई। इस विधि (MRP) के अंतर्गत, *अल्प-प्रायिक रूप से प्रयुक्त 5 मदों* पर आँकड़े किसी एक वर्ष की अवधि तक एकत्र किए जाते हैं और अन्य मदों के लिए 30 दिवसीय विधि ही अपनायी जाती है। निम्न-प्रायिकता मदों में स्वास्थ्य, शिक्षा, वस्त्र, टिकाऊ वस्तुएँ आदि पर व्यय शामिल होता है। वर्तमान में, सभी गरीबी की रेखा संबंधी आँकड़े उक्त विधि (MRP) का प्रयोग कर ही संकलित किए जाते हैं। पूर्ववर्ती (MMRP) विधि में, कुछ खाद्य वस्तुओं के लिए, किसी 30 की बजाय एक 7-दिवस ही अपनाया जाता है। माना जाता है कि यह उपभोग संबंधी खर्चों का कहीं अधिक सटीक चित्र प्रस्तुत करता है। नई विधि से आँकड़े एकत्र करके देखा गया है कि ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में उपभोग व्यय 10 प्रतिशत से 12 प्रतिशत बढ़ गया है। यह दर्शाता है कि लोग 30 दिन की लंबी अवधि की बजाय 7 दिन की छोटी-सी अवधि में हुए अपने खाद्य व्यय को बेहतर याद कर बता सकते हैं। गरीबी की रेखा के इर्द-गिर्द उच्च जनसंख्या घनत्व के साथ पहले से अधिक खर्च का अर्थ है कि भारत में गरीबी की दर (वर्ष 2011-12 हेतु) तेज़ी से नीचे आई है। राज्यों के हिसाब से, झारखंड, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल व ओड़िशा के लिए उपभोग में ग्रामीण-शहरी अंतर अधिक है। अंतर ग्रामीण MPCE के 90 प्रतिशत से अधिक है), जबकि बिहार, केरल व पंजाब में अंतर 35 प्रतिशत से भी कम है। समस्त भारत हेतु औसत ग्रामीण-शहरी अंतर भी 82 प्रतिशत है। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि ग्रामीण भारत हेतु मासिक प्रतिव्यक्ति व्यय (MPCE) वर्ष 1993-94 में रु.160/- से वर्ष 2011-12 में रु.220/- तक बढ़ा है (स्थिर 1987–88 कीमतों पर)। शहरी भारत के ये आँकड़े 265 व 400 हैं। ग्रामीण-शहरी अंतर, तद्नुसार, वर्ष 1993-94 में 65 प्रतिशत 2011-12 में 82 प्रतिशत तक बढ़ा है।

गिनी गुणांक : आय एवं उपभोग की विषमताएँ मापने हेतु यही व्यापक रूप से प्रयुक्त विधि है। यह अपने अवयवों के वितरण में किसी भी चर की विषमता में संकेंद्रण की कोटि को मापता है। यह अपनी सीमाओं में 0 से 1 के बीच क्रमबद्ध होता है, जहाँ यह

समाज में संपूर्ण समानता होने पर 'शून्य' मान धारण कर लेता है। गिनी-गुणांक लॉरेंज़ वक्र हेतु संक्षिप्त आँकड़े देता है, जो कि पहले उपभोग/आय के विभिन्न स्तरों के अनुसार जनसमुदाय को श्रेणीबद्ध करता है और फिर 'उपभोग/आय के उस स्तर का लाभ उठा रहे जनसमुदाय के संचयी अनुपात के सामने उपभोग/आय का संचयी अनुपात' अंकित करता है (चित्र 9.1)। गिनी-गुणांक उस समय 1 का सैद्धांतिक अधिकतम मान ले लेता है जब किसी जनसमुदाय में एक को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति का आय स्तर शून्य हो। गिनी-गुणांक निम्नवत् आकलित किया जाता है– ***G***= **क्षेत्रफल** *AEDF*/**क्षेत्रफल** *AEDB* चूँकि यह शून्य और एक के बीच अवस्थित होता है, सूचंकाक के शून्य से एक तक विचलन करने पर विषमता बढ़ती है। आनुभविक अभ्यास-कार्यों में गिनी-गुणांक निम्नलिखित सूत्र द्वारा आकलित किया जाता है–

$$G = \frac{1}{n}\left[n + 1 - 2\left(\frac{\sum_{i=1}^{n}(n+1-i)Yi}{\sum_{i=1}^{n}Yi}\right)\right]$$

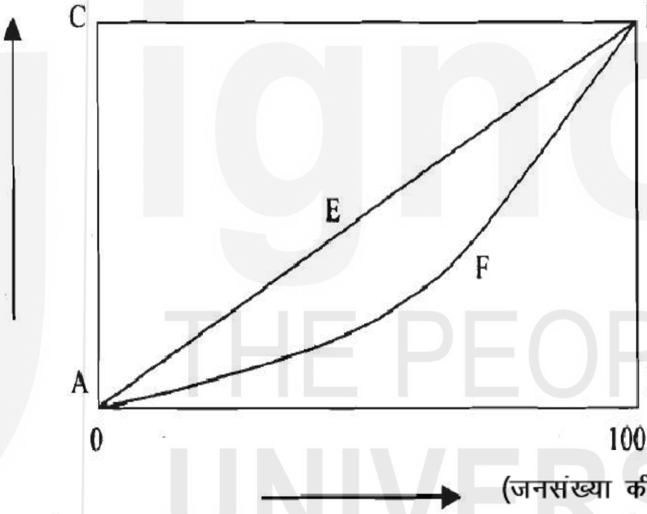

चित्र 9.1 : लॉरेंज़ वक्र

9.3.3 पोषणिक विषमता

शरीर की पोषणिक आवश्यकताओं और शरीर द्वारा पोषण के अवशोषण के बीच अंतर कुपोषण के विस्तार के रूप में लिया जाता है। कुपोषण व उसके मापन में अंतर्निहित संकल्पनाओं पर हम इकाई 7 (उपभाग 7.2.1) में पहले ही चर्चा कर चुके हैं। स्मरण करें, न्यून-पोषण कम वज़न, रुद्ध विकास एवं क्षय रोग जैसे संकेतकों से मापा जाता है *क्षयरोग* पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता को ही दर्शाता है। वे बच्चे जिनका कदवार वज़न (WAZ) संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से ऋण तीन मानक विचलन (–3 SD) नीचे हो, *गंभीर रूप से क्षयरोग ग्रस्त* माने जाते हैं और वे जो –2 SD से नीचे हों, *क्षयरोग ग्रस्त*। उम्रवार कद (HAZ) सूचकांक रैखिक वृद्धि मंदन एवं संचयी वृद्धि न्यूनता का संकेतक होता है। वे बच्चे जिनका उम्रवार कद Z-समंक संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से –2 SD नीचे हो, *रुद्ध विकसित* अथवा अतीव कुपोषित माने जाते हैं। इसी प्रकार, जब यह Z-समंक –3 SD से नीचे तो बच्चे को गंभीर रूप से रुद्ध विकसित अथवा दीर्घकालिक रूप से कुपोषित माना जाता है। रुद्ध विकास एक

लंबी अवधि तक पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता दर्शाता है और पुनरावर्त्तक एवं दीर्घकालिक रोग से प्रभावित होता है। उम्रवार वज़न उम्रवार क़द और क़दवार वज़न का एक संश्लिष्ट सूचकांक है जो अतीव एवं दीर्घकालिक, दोनों प्रकार के कुपोषण को दर्शाता है। वे बच्चे जिनका उम्रवार वज़न संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से –2 SD नीचे हो, *कम वज़न* माने जाते हैं। बच्चों के बीच दीर्घावधि कुपोषण पर नियंत्रण करने के लिए, *रुद्ध विकास* को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मापदंड माना जाता है। विभिन्न राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) रिपोर्टों के अनुसार, *रुद्ध विकास* को छोड़कर, भारत में कुपोषण स्तर वर्ष.दर.वर्ष अन्य सभी पहलुओं से गिरता जा रहा है। यह स्थिति भयप्रद है क्योंकि यह कुपोषण का दीर्घावधि प्रभाव इंगित करता है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) 'परिणाम में विषमता' और 'अवसर में विषमता' के बीच भेद दर्शाते हुए विषमता को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

....

....

2) क्या आप मानते हैं कि भारत में हाल के वर्षों में विषमता बढ़ी है? क्यों?

....

....

....

....

....

3) 'क्षैतिज विषमता' और 'अनुलंब विषमता' के बीच अंतर स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

4) इस बात के कारण दें कि क्यों क्षैतिज एवं अनुलंब प्रकार की विषमताओं को कम किए जाने पर ध्यान देना ज़रूरी है।

....

....

....

....

5) भारत को एक सर्वाधिक विषमताग्रस्त अर्थव्यवस्था के रूप में क्यों देखा जाता है? इस स्थिति के लिए दोषी कारण कौन-से हैं?

....

....

....

....

....

6) वे छह वर्ग बताइए जिनमें भारत के भूमिहीनों को बाँटा गया है। सामाजिक समूहों द्वारा इन छह वर्गों का वितरण क्या इंगित करता है? इसके क्या परिणाम हुए हैं?

....

....

....

....

....

7) भारत में उपभोग विषमता कैसी मापी जाती है? इसका रुझान क्या दर्शाता है?

....

....

....

....

8) उपभाग 9.3.2 में आपने कर्नाटक जैसा कि प्रगतिशील राज्य देखा जो कि झारखंड, पश्चिम बंगाल व ओड़िशा जैसे अपेक्षाकृत मंद प्रगतिशील राज्यों के साथ सहभागी है तथा बिहार जैसा एक अपेक्षाकृत मंद प्रगतिशील राज्य जो केरल व पंजाब जैसे अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील राज्यों के साथ सहभागी है। आपके अनुसार, इसके लिए क्या संभावित कारण हो सकता है?

....

....

....

....

9) बच्चों के बीच दीर्घावधि कुपोषण पर कैसे नियंत्रण किया जाता है? भारत में इस संबंध में क्या रुझान रहा है?

....

....

....

....

....

9.4 क्षेत्रीय विषमता

नव-प्रतिष्ठित संवृद्धि सिद्धांत के अनुसार, पूँजी की वृद्धि के आरंभिक चरणों में पूँजी की सीमांत उत्पादकता श्रम अवशोषण में अनुकूल गिरावट के साथ बढ़ रही होगी। तथापि, अंततोगत्वा, यदि यह श्रमवर्धक तकनीकी प्रगति में परिणत होता हो तो श्रम अवशोषण का ह्रासमान प्रभाव विपरीतगामी हो जाएगा। परिणामतः, विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिव्यक्ति आय बढ़ेगी और यदि सभी राज्य/क्षेत्र संवृद्धि की अग्रसक्रिय नीतियों का अनुसरण करते हों तो संवृद्धि दरें किसी स्थिर अवस्था की ओर अभिसरित होने की प्रवृत्ति दर्शाएगी। दूसरे शब्दों में, यह कालांतर में उन क्षेत्रों के बीच आय विषमता में गिरावट में परिणत होगा इससे उस स्थिति में 'अपसरण अथवा अभिसरण' की प्राक्कल्पना की परीक्षण संबंधी प्रश्न सामने आएगा जहाँ विभिन्न राज्य अनुसरण की जा रही अपनी नीतियों की प्रबलता के कारण अपने राज्य घरेलू उत्पाद (SDP) में भिन्न.भिन्न संवृद्धि दरों का अनुभव कर रहे होंगे। इस संदर्भ में, चिंताएँ व्यक्त की गईं है कि भारत में क्षेत्रीय विषमता वर्ष 1991 में आर्थिक सुधार लागू होने के बाद बढ़ी है। कुछ अध्ययन इन चिंताओं का समर्थन करते हैं, कुछ अन्य समर्थन नहीं करते। इस प्रकार की स्थिति में, इस संबंध में क्या निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं? इस भाग में, क्षेत्रीय विषमता में अपसरण के विषय पर 'जीवन-स्तर' और 'कार्य क्षेत्रीय संवृद्धि' के लिहाज़ से चर्चा की जाएगी।

9.4.1 जीवन-स्तर

परिकलित गिनी गुणांकों के परिणामों का प्रयोग कर अनेक अध्ययनों से यह रिपोर्ट सामने आई है कि 1980 व 1990 के दशकों जैसी किसी भी दीर्घावधि हेतु राज्यों में तमाम ग्रामीण एवं शहरी कुटुंबों के बीच भारत में राज्य घरेलू उत्पाद के लिहाज़ से विषमता बढ़ने का कोई निर्णायक साक्ष्य नहीं मिलता। तथापि, आर्थिक सुधार लागू होने के बाद के वर्षों (1993–2000) जैसी छोटी-सी समयावधि में, कुछ राज्यों ने बढ़ी शहरी विषमता दर्ज की है। खासकर ग्रामीण कुटुंबों में, आय के लिहाज से भी, जबकि कुछ अध्ययनों ने राज्य घरेलू उत्पाद के लिहाज से कुछ राज्यों के बीच अभिसरण दर्शाया है, ऐसे अध्ययन भी हैं जिनमें विपरीत अर्थात् अपसरण की रिपोर्ट है। स्पष्ट रूप से, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम विकसित राज्यों की तुलना प्रगतिशील राज्यों से कर रहे हैं अथवा हम तीव्र विकासमान राज्यों की तुलना मंद विकासमान राज्यों से कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, केवल प्रतिव्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (SDP) का अध्ययन कर प्रस्तुत किए गए असमान परिणाम ही कुछ राज्यों के बीच अभिसरण और कुछ अन्य के बीच अपसरण दर्शाते असमान रुझान प्रस्तुत करने वाले होते हैं। इसके अलावा, यह केवल आय को ही संवृद्धि का एकमात्र मापदंड मानने पर आधारित होगा। दूसरी ओर, यदि कोई संसूचकों के किसी संश्लिष्ट समुच्चय के पदों में मापित क्षेत्रीय विषमता को प्रतिव्यक्ति व्यय, जनगणना गरीबी अनुपात, साक्षरता दर, औपचारिक शिक्षा नामांकन, शिशु मर्त्यता दर, जीवन-प्रत्याशा, पेयजल की सुलभता एवं अपेक्षाकृत स्थायी सामग्रियों से बनाए गए आवास की सुलभता के रूप में देखता हो तो परिणाम अधिक विश्वसनीय होंगे। जैसा कि हम जानते हैं, वर्तमान में, तीन संसूचकों, यथा जीवन-प्रत्याशा, शिक्षा एवं प्रतिव्यक्ति आय का प्रयोग कर तैयार किया गया मानव विकास सूचकांक (HDI), लोगों के 'जीवन-स्तर' के मापदंड स्वरूप प्रयोग किया जाता है। यही इसके लिए सर्वोत्तम विकल्प होता है। उक्त सूचकांक (HDI) पर आधारित विश्लेषण दर्शाता है कि 1990 के दशक के पश्चात् भारत में, जीवन-स्तर राज्यों में

आमतौर पर गिरा नहीं है। तथापि, क्षेत्रों के बीच, अपसरण निम्नलिखित के संदर्भ में देखा जाता है–

- उदारीकरण के बाद पूर्व-पश्चिम अपसरण दिखाई दिया है, जहाँ देश के पश्चिमी भाग ने आय का अपना अंश बढ़ाया है। परंतु, सापेक्ष आय अंशों के लिहाज से कोई सशक्त उत्तर-दक्षिण विभाजन देखने में नहीं आया है;
- अधिकांश क्षेत्र जो बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं, देश के शहरी भागों में हैं; यथा, ग्रामीण भारत सापेक्ष पदों में कम लाभान्वित हुआ है;
- उदारीकरण ने वर्षा-सिंचित कृषिगत क्षेत्रों में सुधार नहीं किया है; और
- जबकि कुछ राज्य सभी क्षेत्रों में निरंतर अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं (यथा, कर्नाटक, केरल, पंजाब एवं हरियाणा), अन्य ऐसे भी हैं जो अपने प्रदर्शन में विषमताओं से पहचाने जाते हैं (यथा, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र)।

9.4.2 क्षेत्रीय अपसरण

प्रमुख क्षेत्रों (यथा, कृषि, उद्योग एवं सेवा) के जरिए विश्लेषण करते हुए, कुछ अध्ययनों में सामने आया है कि सुधारों में कृषि क्षेत्र हेतु क्षेत्रीय विषमता पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ा है। परंतु, जहाँ तक उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों का संबंध है, सुधारों ने 1980 के दशक के दौरान देखे गए नियत रुझानों से 1990 के दशक के दौरान देखे गए तीव्रता से बढ़ते रुझानों तक सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में उनके योगदानों के लिहाज से पूरी तरह उन रुझानों को बदल दिया है। कृषि क्षेत्र के लिए, दूसरी ओर, क्षेत्र के ही भीतर क्षेत्रीय विषमता में एक किंचित् परिवर्तित ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति देखी गई है। इस ऊर्ध्वमुखी रुझान के बावजूद, इसके सापेक्ष आकार में एक सशक्त गिरावट ने यह सुनिश्चित कर दिया है कि क्षेत्रीय विषमता में इस क्षेत्र का योगदान 1980 व 1990 के दोनों ही दशकों में लगभग स्थिर रहा है। इस क्षेत्र में क्षेत्रीय विषमता में वर्धमान रुझान को अंशतः एक प्रबलतर कृषि आधार वाले कुछ राज्यों (जैसे मध्यप्रदेश, आंध्र प्रदेश एवं असम) में कृषि की उच्च संवृद्धि दर के कारण और अंशतः बिहार एवं ओड़िशा जैसे कृषि में पिछड़े राज्यों में इस क्षेत्र की गतिहीनता एवं संकुचन के कारण माना जाता है। चूँकि कृषि उत्पादन की अवस्थिति उर्वर भूमि पर निर्भर होती है, उक्त अपसरण पुस्तकों में चर्चा किए जाने वाले 'संकुलन प्रभाव' के जरिए स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस अपसरण हेतु एक अन्य सत्य-प्रतीयमान व्याख्या यह हो सकती है कि अपेक्षाकृत अधिक संपन्न कृषि-राज्यों के पास सिंचाई, माल-गोदाम, शीत संग्रहागार व अन्य अवसंरचनाओं में आवश्यक निवेश करने के लिए अधिशेष होता है जो इन राज्यों में कृषि की संवृद्धि दर को कायम रखता है, जबकि कुछ गरीब राज्य अधिशेष शून्यता के साथ यथेष्ट निवेश के अभाव में या तो गतिहीन रहे या फिर संकुचित होते गए।

जहाँ तक उद्योग एवं सेवाक्षेत्रों का संबंध है, इन दो क्षेत्रों के सापेक्ष आकार एवं अर्थव्यवस्था से उनके अंतरानुबंधनों के कारण, सुधार पूर्व अवधि में क्षेत्रीय विषमता में कमी देखी गई, परंतु सुधारोपरांत अवधि में स्पष्ट बढ़ोतरी हुई है। दूसरे शब्दों में, उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों ने अपकेंद्री प्रभाव (यथा, तीव्रता संचार) के कारण सुधारों से पूर्व विषमता में गिरावट और सुधारोपरांत अधिकेंद्री प्रभाव (यथा, यशद (जस्ता) लेपन प्रभाव) के कारण उसमें बढ़ोतरी दर्ज़ करवाई। इसके लिए कारण बहुविध कार्य-दिशाओं के माध्यमों से उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों के विस्तार पर ध्यान केंद्रित कर क्षेत्रीय अपसरण पर नियंत्रण रखने हेतु सुधार-पूर्व अवधि में सरकार की नीति को ही माना

जाता है। एक कार्य-दिशा ने सार्वजनिक क्षेत्र में भूमिका निभाई, जहाँ सार्वजनिक निवेशों का एक काफ़ी बड़ा हिस्सा अपेक्षाकृत पिछड़े इलाकों में लगाया गया। दूसरी कार्य-दिशा ने निजी क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाई, जिसे उक्त इलाकों में निवेश करने के लिए, राजकोषीय प्रोत्साहनों एवं औद्योगिक अनुज्ञापन (लाइसेंसिंग) का प्रयोग कर प्रोत्साहित किया गया। दूसरे शब्दों में, जबकि सरकार ने सुधार पूर्व अवधि में, इन दो क्षेत्रों में विषमता घटाने में एक निर्णायक भूमिका निभाई, सुधारोपरांत अवधि में, उद्योग एवं सेवा क्षेत्र के विस्तार से सामने आए इस अपसरण में योगदान दिया, जिसके कारण निम्नलिखित रहे— (i) औद्योगिक अनुज्ञापन प्रणाली का विमोचन, जिसने निजी क्षेत्र को अपना स्थान चुनने और परिवहन लागतें न्यूनतम करने की आज़ादी दी, जिससे उनके उत्पादन आधार का संपन्नतर राज्यों में महानगरीय क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण तेज़ हो गया; (ii) सुधारों में निर्यातोन्मुखी उत्पादन को बढ़ावा दिया, जिसने सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अनुपात में निर्यात का अंश 1980 के दशक में 8.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 1990 के दशक में लगभग 15.5 प्रतिशत कर देने में योगदान दिया; (iii) विनिर्माण निर्यात क्षेत्र ने स्वयं को आम अवसंरचना वाले तटीय क्षेत्रों के निकट अवस्थित करना पसंद करके अपनी परिवहन लागतें अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों के मुताबिक न्यूनतम कर लीं। चूँकि ये सुविधाएँ अधिकांशतः देश के पश्चिमी एवं दक्षिणी भागों में सापेक्ष रूप से विकसित राज्यों में उपलब्ध थीं, अतः, इन राज्यों व इनसे गरीब राज्यों के बीच क्षेत्रीय विषमता को बढ़ावा मिला है।

सेवा क्षेत्र में औसत निर्यात में 1980 के दशक में 4 प्रतिशत से 1990 के दशक में 5.5 प्रतिशत तक की मामूली वृद्धि हुई। सेवा क्षेत्र के ये घटक इन निर्यात गतिविधियों से लाभान्वित हुए थे : सूचना प्रौद्योगिकी एवं वित्त-सेवाएँ। चूँकि इन दोनों क्षेत्रों को उच्च रूप से विकसित दूर संचार अवसंरचना एवं उच्च गुणवत्ता संपन्न मानव पूँजी की आवश्यकता थी, और ये दोनों ही महानगरीय इलाकों में उपलब्ध थे, इन इलाकों में उक्त क्षेत्रों की संवृद्धि ने अपेक्षाकृत अल्पविकसित क्षेत्रों तथा अपेक्षाकृत अधिक संपन्न क्षेत्रों के बीच विषमता में अंतर बढ़ाने में योगदान दिया। इसके अलावा, सुधारों ने निजी क्षेत्र का ध्यान जनोपयोगी सेवाएँ एवं अवसंरचना प्रदान करने की ओर मोड़ने में योगदान दिया। इससे कुल औद्योगिक सकल घरेलू उत्पाद में बिजली, गैस व जल (यथा, जनोपयोगी सेवाएँ) का औसत अंश बढ़ गया, जो कि 1980 के दशक में लगभग 24 प्रतिशत से बढ़कर 1990 के दशक में लगभग 32 प्रतिशत तक चला गया। इसी प्रकार, बैंकिंग एवं बीमा (अर्थव्यवस्था की वित्तीय अवसंरचना का एक भाग) का औसत अंश 1980 के दशक में लगभग 13 प्रतिशत से बढ़कर 1990 के दशक में लगभग 20 प्रतिशत हो गया। चूँकि जनोपयोगी सेवाएँ एवं अवसंरचना की मांग विकसित क्षेत्रों में अधिक होती है, इन सेवा क्षेत्रों की ओर सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश के अंतरण ने सार्वजनिक निवेशों के माध्यम से क्षेत्रीय अपसरण पर नियंत्रण रखने को सरकार की क्षमता को कम कर दिया।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) राज्य घरेलू उत्पाद (SDP) पर आधारित क्षेत्रीय कार्य-प्रदर्शन का विश्लेषण क्या दर्शाता है? क्या यह विश्वसनीय है? यदि नहीं, तो विभिन्न राज्यों द्वारा की गई क्षेत्रीय कार्य-निष्पत्तियों का अध्ययन करने का क्या विकल्प है?

....

....

....

....

....

2) किन पहलुओं से भारतीय राज्यों के बीच विषमता में अपसरण पाया जाता है?

....

....

....

....

3) क्षेत्रीय वर्णनों के संदर्भ में, सुधारपूर्व एवं सुधारोपरांत अवधियों की तुलना करते हुए, क्षेत्रीय विषमता के लिहाज से कृषि क्षेत्र का क्या अनुभव रहा है?

....

....

....

....

4) भारत में राज्यों के बीच कृषि विकास में देखी गई विषमता हेतु सामने आए कोई कारण बताइए।

....

....

....

....

5) अंतर्क्षेत्रीय विषमता (बढ़ाने अथवा हटाने) के प्रत्याशित अपसरणकारी अथवा अभिसरणकारी स्वभाव पर 'उद्योग एवं सेवा' क्षेत्रों के लिहाज से राज्यों के बीच क्या रुझान देखा गया है?

....

....

....

....

6) वे तीन कारण बताइए जिन्होंने उन राज्यों के बीच क्षेत्रीय विषमता बढ़ाने में योगदान दिया जिन्होंने उच्च वृद्धि दर्ज़ करवाई और जिन्होंने निम्न वृद्धि दर्ज़ करवाई।

....

....

....

....

....

7) सेवा क्षेत्र के वे तीन घटक कौन-से हैं जिन्होंने ऐसी उच्चतर संवृद्धि में योगदान दिया जिसके परिणामस्वरूप अंतर्क्षेत्रीय विषमता बढ़ी? इन तीन घटकों ने सुधार-पूर्व एवं सुधारोपरांत वर्षों के बीच अपने सापेक्ष सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अंशों के पदों में कितना लाभ पहुँचाया?

....

....

....

....

....

....

9.5 सार-संक्षेप

विषमता अनेक प्रकार की हो सकती है। स्थूलतः, इसे आर्थिक और सामाजिक विषमता में वर्गीकृत किया जा सकता है। पूर्ववर्ती के संबंध में, आय, उपभोग एवं पोषण में विषमताएँ देखी जाती हैं। परवर्ती के संबंध में, राजनीतिक एवं अवसर विषमताएँ देखी जाती हैं। विशिष्ट रूप से, अवसरों में विषमताएँ, जो परिणाम में विषमता के रूप में परिणत होती हैं, 'शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं' की सुलभता अथवा अभाव के रूप में पहचानी जा सकती हैं और अधिक विभेद क्षैतिज विषमता तथा अनुलंब विषमता के बीच किया जा सकता है। पूर्ववर्ती का अर्थ है– जाति, धर्म, सजाति आदि सरीखे कारकों के आधार पर समूहों के बीच विषमताएँ, जबकि परवर्ती का अर्थ है– कुटुंबों अथवा व्यक्तिजन में विषमता। उपभोग एवं पौषणिक विषमताएँ अविकसित वृद्धि वाली जनसंख्या की ओर प्रवृत्त करती हैं, जो कि राष्ट्र की उत्पादनशीलता एवं संवृद्धि पर भारी प्रभाव डालता है। कुल मिलाकर, विभिन्न प्रकार की विषमताएँ जनसमुदाय के जीवन-स्तर अथवा सामाजिक-आर्थिक क्षेम को प्रभावित करती हैं। भारत में, हाल के वर्षों में, आय-विषमता में अपसरण के साक्ष्य मिले हैं, परंतु उपभोग-विषमता में अभिसरण भी दिखाई दिया है। इसका अर्थ है कि सभी क्षेत्र फले-फूले परंतु कुछ दूसरों से अधिक तेज़ी से फले-फूले। इसके परिणामस्वरूप देखा गया है कि भारतीय राज्यों के बीच क्षेत्रीय विषमता में 'अपसरण' अनुभव किया गया है। यह समुक्ति सुधारोपरांत वर्षों में सामने आई, जिसने औद्योगिक अनुज्ञापन नीतियों में छूट के कारण निजी क्षेत्र की उत्पादनशील ऊर्जा को निर्मुक्त कर दिया। सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश में भी एक मोड़ देखा गया। सुधारपूर्व वर्षों में कृषि एवं पिछड़े क्षेत्र से हटकर सुधारोपरांत वर्षों में 'अवसंरचना एवं जनोपयोगी सुविधाओं' के क्षेत्र में निवेश। चूँकि इस प्रकार के निवेश भौगोलिक अथवा अवसंरचनात्मक आधारों के पदों में कुछ राज्यों/क्षेत्रों में बेहतर प्रदान किए गए हैं, पिछड़े तथा प्रगतिशील राज्यों के बीच विषमता हाल के दो दशकों में बढ़ा ही है। भारतीय अर्थव्यवस्था की यही विशेषता है जिसे अंतर-क्षेत्रीय दृष्टिकोण से 'विषमता में अपसरण' की संज्ञा दी जाती है।

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Ahluwalia, Montek S (2000). "Economic Performance of States in Post-Reforms Period." *Economic and Political Weekly*: 1637-1648.

2) Kar, Sabyasachi, and S. Sakthivel (2007). "Reforms and Regional Inequality in India." *Economic and Political Weekly*: 69-77.

3) Piketty, Thomas (2015). *The Economics of Inequality,* Harvard University Press.

4) Rao, M. Govinda, Richard T. Shand, and Kali P. Kalirajan (1999). Convergence of Incomes Across Indian States: A divergent view, *Economic and Political Weekly*: 769-778.

5) Ravallion, Martin (1997). Can High-Inequality in Developing Countries Escape Absolute Poverty?, *Economics Letters* 56, No. 1: 51-57.

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक प्रस्थिति और धन-संपत्ति में अंतर के रूप में परिभाषित, पूर्ववर्ती लोगों की अक्षमता, सजातीय पृष्ठभूमि एवं लिंग पर निर्भर करता है जबकि परवर्ती सरकार द्वारा 'सही' या 'उपयुक्त' होने के रूप में एक सर्वमान्य आरंभ.बिंदु सुनिश्चित करने से ताल्लुक रखता है।

2) 'अस्सी के दशक में, कुल राष्ट्रीय आय का लगभग एक-तिहाई उच्च-आय उपार्जकों में 10 प्रतिशत के ही स्वामित्व में था। परंतु, हाल के वर्षों में, यह अनुपात 50 प्रतिशत से भी ऊपर चला गया है।

3) क्षैतिज विषमता का अर्थ है– सांस्कृतिक रूप से परिभाषित अथवा निर्मित समूहों के बीच विषमता। अनुलंब विषमता का अर्थ है– व्यक्तिजन अथवा कुटुंबों के बीच विषमता।

4) माना जाता है कि क्षैतिज विषमता का पोषण जनसमुदाय में गरीबी के स्तर बढ़ाना विकास करता है। अनुलंब विषमता एक न्यायोचित समाज के निर्माण, गरीबी के स्तरों में कमी लाने, अर्थव्यवस्था की तीव्रतर संवृद्धि में मदद करने, समाज में अपराध-वृत्ति की कोटि नीचे लाने, आदि पर प्रभाव डालती है।

5) करोड़पतियों के पास देश की आधे से भी अधिक राष्ट्रीय आय है, जबकि औसत भारतीय अपेक्षाकृत गरीब है। आमतौर पर प्रमुख कारण हैं – (i) उच्च रूप से असमान परिसम्पत्ति वितरण; (ii) अपर्याप्त रोज़गर सृजन; तथा (iii) विभेदीय क्षेत्रीय विकास।

6) भूमिहीन, सीमांत, लघु, अर्ध-मध्यम, मध्यम एवं वृहद् अर्थात् बड़े किसान। सामाजिक श्रेणी के अंदर भूमि.वितरण 0.6 से 0.8 तक एक उच्च गिनी श्रृंखला दर्शाता है जो कि SC, ST एवं OBC जैसे कमज़ोर तबकों के बीच उच्च विषमता इंगित करती है। ऐसी उच्च आय विषमता के परिणाम होते हैं– (i) वर्ग संघर्ष; (ii) राजनीतिक अधिपत्य; (iii) शोषण; (iv) एकाधिकार का जन्म; आदि।

7) रुपयों में मापे गए मासिक प्रतिव्यक्ति व्यय (MPCE) के माध्यम से। समय-समय पर स्थिर कीमतों में मापे गए उक्त व्यय (MPCE) में एक स्थिर वृद्धि देखी गई है। परिणामतः, गरीबी की रेखा से नीचे बसर करने वाले लोगों के अनुपात में एक बड़ी गिरावट आई है। तथापि, ऐसे राज्य भी हैं जहाँ शहरी और ग्रामीण

उक्त व्यय (MPCE) के बीच अंतर 90 प्रतिशत से भी अधिक भिन्नता दर्शाता है। अखिल भारतीय स्तर पर भी यह अंतर 84 प्रतिशत है।

8) कर्नाटक में, शहरी उक्त व्यय (MPCE) बहुत अधिक है। इसी प्रकार, बिहार में, ग्रामीण एवं शहरी दोनों उक्त व्यय (MPCE) बहुत निम्न हैं। इसके परिणामस्वरूप, ये राज्य ऐसे राज्यों की गिनती में शामिल हैं जिनके साथ इनको तलाश कर पाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। परंतु यह अभिलक्षण अंतर को विश्वासोत्पादक ढंग से स्पष्ट करता है और इस प्रकार उनका स्थान कहीं खोता नहीं है। यह उदाहरण आनुभविक आँकड़ों की व्याख्या से पूर्व सावधानीपूर्वक प्रेक्षण किए जाने की आवश्यकता की ओर संकेत करता है।

9) 'रुद्ध विकास' को एक संकेतक के रूप में प्रयोग कर। इस संबंध में स्थिति भयप्रद है क्योंकि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्टों की विभिन्न अवधियों में इसमें कोई कमी नहीं आई है और यह कुपोषण का दीर्घावधि प्रभाव इंगित करता है जो कि भारत में नीचे नहीं आ रहा है।

बोध प्रश्न 2

1) यह कुछ मामलों में अपसरण दर्शाता है और कुछ अन्य में अभिसरण। केवल आय पर आधारित, यही बात बाध्यकारी है। मानव विकास सूचकांक जैसा कोई भी संसूचक एक व्यापक मूल्यांकन हेतु अपनाया जाना बेहतर होगा।

2) पूर्व-पश्चिम अपसरण के साक्ष्य मिलते हैं, परंतु उत्तर-दक्षिण राज्यों में ऐसा कोई अपसरण नहीं दिखाई पड़ता। ग्रामीण भारत अपेक्षाकृत कम लाभान्वित हुआ है। कृषिगत वर्षा-सिंचित क्षेत्र पिछड़े रहे हैं।

3) क्षेत्रीय विषमता में एक किंचित् परिवर्तित ऊर्ध्वमुखी रुझान देखा जाता है। परंतु स्वयं कृषि.क्षेत्र का संकुचित आकार होने के कारण वृद्धि सुस्पष्ट नहीं है, बल्कि कमोबेश गतिहीन रही है।

4) एक, कृषि के लिहाज़ से कमज़ोर राज्यों में अनुभव किए गए अनुरूप संकुचन के साथ कुछ राज्यों में अपेक्षाकृत सशक्त कृषि.आधार। दो, पूर्ववर्ती के पास वांछित अवसंरचना में निवेशार्थ अधिशेष भी था जो कि परवर्ती के पास नहीं था।

5) प्रभावों की दो संकल्पनाएँ, यथा अभिकेंद्री प्रभाव तथा अपकेंद्री प्रभाव, भारतीय राज्यों के बीच 'उद्योग एवं सेवाओं' की वृद्धि में रुझान का वर्णन करने के लिए प्रयोग की जाती हैं। पूर्ववर्ती का संदर्भ सुधारपूर्व अवधि में निम्न निवेश के कारण 'मांग के प्रतिसरण प्रभाव' हेतु लिया जाता है। परवर्ती का संदर्भ उदारीकरण उपायों द्वारा शुरू की गई अग्रसक्रिय नीतियों के कारण 'माँग में उछाल' हेतु लिया जाता है।

6) अनुज्ञापन अर्थात् लाइसेंसिंग को सुधारपूर्व वर्षों में उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए पिछड़े इलाकों को संसाधन मुहैया कराने हेतु एक साधन स्वरूप प्रयोग किया गया। इसने विषमता की प्रवृत्तियों को कहीं अधिक संतुलित रखा। किंतु सुधार वर्षों में, इसके विमोचन ने उन इलाकों में निवेश किए जाने की ओर प्रवृत्त किया जहाँ बेहतर अवसंरचना थी (यथा, अपकेंद्री

प्रभाव), जो कि महानगरीय शहरों व सम्पन्नतर राज्यों के अन्य भागों में ही दृष्टिगत होती थी। तटीय क्षेत्रों ने भी प्रति-सुधार औद्योगिक प्रोत्साहन नीतियों के तहत लाभ उठाया, जबकि अलाभान्वित राज्यों को यह भौगोलिक लाभ प्राप्त नहीं था।

7) सूचना प्रौद्योगिकी, जनोपयोगी सुविधाएँ एवं अवसंरचना तथा बैंकिंग एवं बीमा। सकल घरेलू उत्पाद में उनके अपने-अपने अंश में वृद्धि, सुधार पूर्व एवं सुधारोपरांत वर्षों के बीच रही 4—5.5 प्रतिशत, 24—32 प्रतिशत तथा 13—20 प्रतिशत।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 रोज़गार और बेरोज़गारी*

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 विषय प्रवेश

10.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

10.2.1 रोज़गार

10.2.2 बेरोज़गारी

10.2.3 कार्यबल भागीदारी दर एवं श्रमबल भागीदारी दर

10.3 रोज़गार नीतियाँ

10.3.1 1950 के दशक से वर्ष 2002 तक

10.3.2 वर्ष 2002 के उपरांत

10.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

10.4.1 असंगठित कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा

10.5 सार-संक्षेप

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- किसी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में रोज़गार का महत्त्व और उसके मापन में कठिनाइयाँ बता सकें;
- रोज़गार एवं बेरोज़गारी संबंधी विभिन्न संकल्पनाओं को परिभाषित कर सकें;
- 'कार्यबल भागीदारी दर' (WFPR) और 'श्रम बल भागीदारी दर' (LFPR) के बीच भेद कर सकें;
- 1950 के दशक से लेकर वर्ष 2002 के बीच भारत में अपनाई गई रोज़गार नीतियों के प्रमुख अभिलक्षणों पर चर्चा कर सकें;
- वर्ष 2002 के उपरांत वर्षों के दौरान भारत में रोज़गार नियोजन में किए गए परिवर्तनों का वर्णन कर सकें;
- 'अनौपचारिक अर्थव्यवस्था' की संकल्पना की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें; और
- हाल के वर्षों में भारत में असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों के लिए बनीं सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को सूचीबद्ध कर सकें।

*प्रो. बी.एस. प्रकाश, इं.गां.रा.मु.वि., नई दिल्ली एवं डॉ. असीम करमाकर, जादवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता

10.1 विषय प्रवेश

रोज़गार अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। यह किसी भी कुटुंब को वह आय अर्जित करने हेतु मूल साधन प्रदान करता है जिसमें से उसके व्यय का अर्थ प्रबंध किया जाता है। यह बच्चों को शिक्षित करने हेतु साधन प्रस्तुत करता है, जो कि संभावित भावी कार्यबल के रूप में राष्ट्र को उसकी मानव पूँजी निर्मित करने के प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होगा। खाद्य एवं पोषण संबंधी ज़रूरतों पर खर्च कर यह किसी भी उत्पादनकारी कुटुंब हेतु वांछित स्वास्थ्य के अनुरक्षण में सहायता करता है। मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद, बचत राष्ट्र के निवेश का एक महत्त्वपूर्ण घटक बन जाती है जो कि आगे आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया में सहायक होती है। इससे अर्थव्यवस्था के अन्य कई क्षेत्रों में प्रवर्धक लाभ होते हैं। किसी राष्ट्र का आर्थिक स्वास्थ्य घरेलू बचत के विस्तार (सकल घरेलू उत्पाद GDP के प्रतिशत रूप में व्यक्त) और 'बेरोज़गारी' की निम्न दर द्वारा इंगित किया जाता है। किसी अर्थव्यवस्था के लिए यह इसीलिए आवश्यक है कि अपनी रोज़गार आवश्यकताओं का आवधिक मूल्यांकन करके रखे। वांछित प्रकार का रोज़गार उत्पन्न करना अर्थव्यवस्था की उपयुक्त संरचना पर निर्भर करता है, विशेषकर, उसके कार्यबल के कौशल संयोजन के लिहाज़ से, कोई भी महत्त्वपूर्ण नीति निर्णय अपनाई जाने वाली श्रम-गहन एवं पूँजी-गहन उत्पादन विधियों के मिश्रण पर निर्भर करता है। इस बात पर ध्यान देना बहुत महत्त्वपूर्ण होगा कि रोज़गार एक परिणामकारी कारक होता है (यथा, यह अपनाई गई समुचित नीतियों का परिणाम होता है) और यह बेमेल होने की स्थिति में किसी भी अर्थव्यवस्था को या तो निम्न संवृद्धि (उच्च बेरोज़गारी स्तरों के साथ) के परिणामों का सामना करना पड़ेगा या फिर एक 'बेरोज़गारी युक्त संवृद्धि' की स्थिति का (आय में वृद्धि पर्याप्त रोज़गार सृजन के साथ नहीं होगी)। उक्त दोनों ही स्थितियाँ, चूँकि ये वांछित समग्र समष्टि अर्थशास्त्रीय स्थिरता के साथ जुड़ा है, अर्थव्यवस्था के लिए अस्वास्थ्यकर होती हैं। इस पृष्ठभूमि के साथ ही प्रस्तुत इकाई में रोज़गार एवं बेरोज़गारी संबंधी संकल्पनाओं एवं मुद्दों पर चर्चा की गई है, जो कि भारत जैसी किसी भी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था हेतु अनुप्रयोज्य होंगे। विशेष रूप से, इसमें उनके मापन एवं अपनाई गई रोज़गार नीतियों संबंधी विषयों पर चर्चा है। इन दो पहलुओं के अलावा, हम 'अनौपचारिक अर्थव्यवस्था' की संकल्पना के विषय में भी पढ़ेंगे और उसके आलोक में ग़रीबों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों को सुदृढ़ किए जाने का महत्त्व भी जानेंगे।

10.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

इस पाठ्यक्रम की इकाई 3 में हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि भारत का 48.9 प्रतिशत कार्यबल आज भी कृषि पर निर्भर है। वर्ष 2000 में यद्यपि यह प्रतिशतता 60 प्रतिशत के काफ़ी ऊँचे स्तर से नीचे आई, यह हमारी अर्थव्यवस्था के स्वरूप को 'कृषिक' के रूप निरूपित करने के लिए अभी भी पर्याप्त उच्च स्तर पर ही है। ऐसी स्थिति में, ऐसे 'कृषि श्रमिकों' का बड़ा भाग, जो अपने भरण-पोषण के लिए दिहाड़ी मज़दूरी वाले रोज़गार पर निर्भर है, वैकल्पिक रोज़गार प्रदान किए जाने की अपेक्षा करता है, ताकि ग़ैर-कृषि मौसम में भी वे अपना भरण-पोषण कर सकें। वर्ष 1951-2011 की अवधि में 'कुल कृषि कर्मियों के प्रति कृषि श्रमों' का अनुपात 28 प्रतिशत से बढ़कर 55 प्रतिशत हो गया। इस संदर्भ में, यह समझना ज़रूरी है कि 'रोज़गार' किस प्रकार परिभाषित किया जाता है और किस प्रकार मापा जाता है।

10.2.1 रोज़गार

किसी भी 'कृषि श्रमिक' अथवा 'काम की तलाश में लगे' व्यक्ति (चाहे ग्रामीण क्षेत्र में हो या शहरी क्षेत्र में), की रोज़गार स्थिति का एक पारिभाषिक प्राधार द्वारा मूल्यांकन किया जाना आवश्यक होता है, जो कि उसका वर्गीकरण दैनिक आधार पर 'कर्मचारी' अथवा 'ग़ैर.कर्मचारी' श्रेणियों में किए जाने की अनुमति देता है। ऐसा इसलिए है कि ये कर्मचारी संभवतः हर रोज़ काम न पा सकें और चूँकि वे अपनी दैनिक आय पर ही निर्भर हैं, उन्हें काम ढूँढ़ते रहने की विवशता होती है। दूसरे शब्दों में, उनका रोज़गार 'सवेतन अवकाश' (जैसा कि नियमित वेतन वाली नौकरियों में होता है) वाले किसी 'नियमित आधार' पर नहीं होता और इसलिए उनके लिए प्रतिदिन एक काम की तलाश का दिन होता है। स्पष्ट रूप से, इस प्रकार की दैनिक रोज़गार प्रस्थिति अथवा इसकी संपूरक बेरोज़गारी प्रस्थिति मापने हेतु एक वर्गीकृत्य प्राधार को विभिन्न संदर्भ अवधियों पर आधारित करना पड़ता है ताकि लोगों की विभिन्न रोज़गार प्रस्थितियों को समझा जा सके। भारत में, इस प्रकार के 'रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण' (EUSs) वर्ष 1972-73 से पाँच-पाँच वर्ष बाद राष्ट्रीय संदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा निरंतर करवाए जा रहे हैं। ये सर्वेक्षण इसी कारण 'पंचवार्षिक रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण' भी कहलाते हैं। ये सर्वेक्षण चार प्रकार के दृष्टिकोण अपनाते हैं; यथा (i) सामान्य प्रस्थिति (US) दृष्टिकोण; (ii) सामान्य मुख्य एवं गौण प्रस्थिति (UPSS) दृष्टिकोण; (iii) चालू साप्ताहिक प्रस्थिति (CWS) दृष्टिकोण; और (iv) चालू दैनिक प्रस्थिति (CDS) दृष्टिकोण। ये दृष्टिकोण दो 'संदर्भ अवधियों' से संबंध रखते हैं; यथा– 'एक वर्ष' की एक दीर्घावधि संदर्भ अवधि (US एवं UPSS दृष्टिकोणों के लिए) संदर्भ अवधियाँ अपनाने हेतु तर्क ये हैं– (i) दीर्घावधि रोज़गार प्रस्थिति का मूल्यांकन करना; और जहाँ ऐसा न होता हो; (ii) वहीं मूल्यांकन एक अल्पावधि परिप्रेक्ष्य में करना। तद्नुसार, दो सप्ताह-आधारित दृष्टिकोण पूर्ववर्ती दो, यथा US एवं UPSS दृष्टिकोणों की तुलना में 'दीर्घकालिक' रोज़गार अथवा बेरोज़गारी की स्थिति के विस्तार का मूल्यांकन करने हेतु एक आधार प्रदान करता है, जो कि एक अपेक्षाकृत उच्चतर/बेहतर रोज़गार प्रस्थिति को इंगित करता है।

सामान्य प्रस्थिति (US) दृष्टिकोण के अंतर्गत, यदि किसी व्यक्ति की रिपोर्ट के अनुसार वह संदर्भ वर्ष के अधिकांश भाग में किसी एक मुख्य क्रियाकलाप में अथवा 183 दिन या अधिक रोज़गार प्राप्त रहा हो तो उसे नियोजित माना जाता है। यदि कोई उत्तरदाता इस खंड में न आता हो तो उसकी प्रस्थिति 'सामान्य मुख्य एवं गौण' (UPSS) दृष्टिकोण से निर्धारित की जाती है। इसके अंतर्गत, किसी एक क्रियाकलाप (मुख्य क्रियाकलाप) में संलिप्त रहने का उसका मुख्य समय सर्वप्रथम निर्धारित किया जाता है और फिर आगे उसका द्वितीयक क्रियाकलाप, यथा गौण क्रियाकलाप आता है जिसमें वह अधिकतम समय कार्यरत रहा हो। गौण क्रियाकलाप वह है जिसमें वह कम से कम 30 दिन कार्यरत रहा हो। इस प्रकार, तीन संदर्भ अवधियों (यथा, एक वर्ष, एक सप्ताह और संदर्भ सप्ताह के प्रत्येक दिन) के आधार पर क्रियाकलाप प्रस्थिति के तीन भिन्न-भिन्न मापदंड प्राप्त होते हैं। एक वर्ष की संदर्भ अवधि के आधार पर निर्धारित क्रियाकलाप प्रस्थिति को व्यक्ति की सामान्य क्रियाकलाप प्रस्थिति (US) कहते हैं; वह जो एक सप्ताह की संदर्भ अवधि के आधार पर निर्धारित होती है, व्यक्ति की चालू साप्ताहिक प्रस्थिति (CWS) कहलाती है; और संदर्भ सप्ताह के दौरान प्रतिदिन संलग्नता के आधार पर निर्धारित क्रियाकलाप प्रस्थिति उस व्यक्ति की चालू दैनिक प्रस्थिति (CDS) कहलाती है। उक्त संगठन (NSSO) द्वारा अपनाए गए इस

दृष्टिकोण के विपरीत, दशकीय जनगणनाएँ कर्मचारियों को 'मुख्य कर्मचारी' अथवा 'सीमांत कर्मचारी' के रूप में वर्गीकृत करती हैं, जो कि इस आधार पर होता है कि व्यक्ति वर्ष के 183 दिनों से अधिक काम कर रहा था अथवा नहीं। जनगणना इस दिशा में आगे कोई पड़ताल नहीं करती और इसलिए कर्मचारियों संबंधी इसके अनुमान उक्त संगठन (NSSO) के सामान्य क्रियाकलाप प्रस्थिति (US) दृष्टिकोण से तुल्य होते हैं। यद्यपि, रोज़गार के मौसमी स्वरूप को इंगित करने के लिए, किसी ग्रामीण कृषि श्रमिक का विशिष्ट उदाहरण उपर्युक्त विवरण में चुना जाता है, वर्गीकृत्य प्राधार ग्रामीण.शहरी अंतर के एक छोर से दूसरे छोर तक एकसमान रूप से प्रयोग में लाया जाता है ताकि उस दिन-ब-दिन रोज़गार प्रस्थिति का आकलन किया जा सके जिस पर अपनी दैनिक आय हेतु बड़ी संख्या में लोग निर्भर करते हों। यह वर्गीकृत्य प्राधार आगे 'बेरोज़गार प्रस्थिति' को सहकालिक रूप से दर्ज़ किए जाने की अपेक्षा रखता है जैसा कि नीचे बताया गया है।

10.2.2 बेरोज़गारी

रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण (EUS) 'श्रम बल' सर्वेक्षण भी कहलाते हैं। शब्द युग्म 'श्रम बल' में 'नियोजित' और 'अनियोजित' दोनों आते हैं। परवर्ती अर्थात् अनियोजित (बेरोज़गार) में वे आते हैं जो रोज़गार की तलाश में हों और इसीलिए काम के लिए उपलब्ध हों। दूसरे शब्दों में, इसमें वे नहीं आते जो स्वैच्छिक रूप से काम के लिए इच्छुक न हों। सभी चार दृष्टिकोणों अर्थात् US, UPSS, CWS और CDS में उत्तरदाताओं को सर्वप्रथम 'श्रमबल में शामिल' और 'श्रमबल से बाहर' में वर्गीकृत किया जाता है। 'श्रमबल से बाहर' में आते हैं– छात्र, किरायाजीवी, पेंशनभोगी, प्रेषित रुपयों के ग्राही, भिखारी, अशक्त अथवा विकलांग व्यक्ति, अल्पायु व्यक्ति अर्थात् बच्चे तथा अस्थायी श्रमिक जो रुग्णता के कारण कार्यरत नहीं हैं। इस दृष्टिकोण से, व्यतीत समय मापदंड के अलावा, आय की प्राप्ति (नकद अथवा वस्तु-विनियम अथवा सिद्धांततः), चाहे स्पष्ट रूप से प्राप्त हो या न हो, अव्यक्त रूप से 'कर्मचारी' के रूप में किसी भी व्यक्ति को वर्गीकृत करने के लिए ध्यान में रखी जाती है। इस प्रकार वर्गीकृत कर्मचारी आर्थिक रूप से सक्रिय व्यक्ति होता है। उक्त सर्वेक्षण (EUSs) कर्मचारियों के चार वृहद् समूहों के लिए 'श्रमबल' के व्यापक अनुमान प्रदान करते हैं, जो कि निम्नवत् हैं –

- केवल सामान्य मुख्य क्रियाकलाप पर विचार करते हुए 'सामान्य प्रस्थिति' के अनुसार श्रमबल में व्यक्ति संख्या (इसलिए इन्हें UPS कर्मचारियों की संज्ञा भी दी जाती है);

- 30 दिनों से अधिक तक सर्वप्रथम 'प्राथमिक क्रियाकलाप' और फिर उनके 'गौण क्रियाकलाप' पर विचार करते हुए 'सामान्य प्रस्थिति' के अनुसार श्रमबल में व्यक्ति संख्या (UPSS कर्मचारियों के नाम से उल्लिखित);

- CWS दृष्टिकोण के अनुसार, श्रमबल में व्यक्ति संख्या; और

- CDS दृष्टिकोण के अनुसार श्रमबल में 'व्यक्ति दिवस' की संख्या।

इस प्रकार, US और UPSS दृष्टिकोणों के अंतर्गत, क्रियाकलाप प्रस्थितियाँ 'अधिकांश समय' और 'प्राथमिकता समय' कसौटी पर रखकर निर्धारित की जाती हैं, यथा US एवं UPSS के तहत 'मुख्य क्रियाकलाप' हेतु 'अधिकांश समय निकष' प्रयोग किया

जाता है और UPSS के तहत 'गौण क्रियाकलाप' हेतु 'प्राथमिकता समय निकष' प्रयोग किया जाता है। इस लिहाज से, US दृष्टिकोण को UPS (सामान्य मुख्य प्रस्थिति) भी कहा जाता है। CWS और CDS दृष्टिकोणों के लिए, विचारार्थ समयावधि के लघुतर असर के कारण, केवल 'प्राथमिकता निकष' ही अपनाया जाता है।

रोज़गार नियोजन के उद्देश्य से, श्रम बल में 'संवृद्धि' पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। एक अवधि से दूसरी अवधि में बेरोज़गारी के प्रेषण को नगण्य मानते हुए, बेरोज़गारी तब सामने आती है जब 'श्रमबल की वृद्धि दर' 'रोज़गार में वृद्धि दर' से अधिक होती है। भारत में श्रमबल वर्ष 2004-05 में 46-92 करोड़ से वर्ष 2009-10 में आंशिक रूप से कम होकर 46.88 करोड़ रह गया (EUS हेतु NSSO के दो प्रमुख दौर, यथा 61वाँ और 66वाँ दौर जिनके लिए आँकड़े वर्तमान में उपलब्ध हैं)। ध्यान देने की बात है कि दशमलव पश्चात् एक अंक हटाकर शून्यांत करने पर उपर्युक्त अवधि में श्रमबल में लगी व्यक्ति संख्या लगभग बराबर, यथा 46.9 करोड़ ही रही। बहरहाल, बेरोज़गार व्यक्तियों की संख्या वर्ष 2005 में 1.13 करोड़ से घटकर वर्ष 2010 में मात्र 98 लाख ही रह गई। परिणामतः, बेरोज़गारी की दर (श्रम बल के प्रतिशत के रूप में व्यक्त बेरोज़गार वर्ग) वर्ष 2005 में 2.4 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2010 में 2.1 प्रतिशत रह गई।

इस प्रकार, बेरोज़गारी एक ऐसी दृश्य घटना है जिसमें उपलब्धता के अभाव की वजह से 'किसी ज्ञात वेतन दर पर उन लोगों को काम नहीं मिलता जो काम करना चाहते हैं'। यह अनेक रूपों में दृष्टिगत होती है, जैसे – संरचनात्मक, घर्षणात्मक, चक्रीय, ऋतुनिष्ठ, आदि। संरचनात्मक बेरोज़गारी तब दृष्टिगत होती है जब काम हेतु इच्छुक लोगों को नौकरियाँ उपलब्ध होती हैं परंतु वे नौकरी करने के लिए अर्हता नहीं रखते। कौशलों में विसंगति है जो 'शिक्षा व्यवस्था में अपर्याप्तताओं' और/अथवा अनुपयुक्त प्रौद्योगिकी के प्रयोग से उत्पन्न होती है (जैसे पूँजी-गहन तकनीकें)। घर्षणात्मक बेरोज़गारी आर्थिक परिवर्तन की अवधियों में उत्पन्न होती है, जैसे फर्मों का बंद हो जाना, फर्म के भीतर उत्पादन तकनीकों में बदलाव, आदि। चक्रीय बेरोज़गारी आर्थिक क्रियाकलाप में व्यापार चक्र से जुड़ी है। ऋतु-निष्ठ अर्थात् मौसमी बेरोज़गारी समय-समय पर माँग एवं आपूर्ति दशाओं में उतार-चढ़ाव की ओर संकेत करती है (उदाहरणार्थ, कृषि में रबी-पश्चात्, खरीफ-पूर्व कालावधि। कृषिक अर्थव्यवस्थाओं में बेरोज़गारी का एक प्रकार सामान्यतः देखा जाता है, जो है– प्रच्छन्न बेरोज़गारी। इसका अर्थ है कि लोगों को रोज़गार में लगाया तो जा रहा है मगर निम्न उत्पादकता लाभ के साथ। स्थूलतः, इसीलिए, भारत में बेरोज़गारी दो प्रकार से वर्गीकृत की जा सकती है– (i) ग्रामीण बेरोज़गारी जो कि प्रकृति में ऋतुनिष्ठ और प्रच्छन्न अल्प-रोज़गार होती है, तथा (ii) शहरी बेरोज़गारी जो कि प्रकृति में संरचनात्मक होती है।

10.2.3 कार्यबल भागीदारी दर एवं श्रमबल भागीदारी दर

किसी भी देश में कार्यबल भागीदारी दर (WFPR) कुल जनसंख्या के प्रति कार्यरत जनसंख्या के अनुपात के रूप में निरूपित की जाती है। यह, इसीलिए, वैकल्पिक रूप से 'कर्मचारी जनसंख्या अनुपात' (WPR) भी कही जाती है। श्रम बल भागीदारी दर (LFPR), दूसरी ओर, कुल जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में व्यक्त 16-64 आयु-वर्ग में 'कार्यरत तथा कार्याकांक्षी जनसंख्या' के रूप में परिभाषित की जाती है। इसे प्रायः NSSO की रिपोर्टों में 'नियोजित एवं अनियोजित' व्यक्ति संख्या प्रति 1000 व्यक्ति के रूप में व्यक्त किया जाता है। आप देखेंगे कि ये दरें इस आधार पर भिन्न-भिन्न होती

हैं कि हम कर्मचारियों के किस वर्ग पर विचार कर रहे हैं, यथा– US अथवा UPSS अथवा CWS अथवा CDS। भारत के लिए, वर्ष 2015-16 में 'कुल व्यक्ति संख्या' (यथा, स्त्री व पुरुष जोड़कर) हेतु सामान्य मुख्य प्रस्थिति (UPS) द्वारा LFPR 50-3 थी। लिंगभेद के अनुसार, पुरुषों के लिए, यह 75 प्रतिशत थी और स्त्रियों के लिए यही 24 प्रतिशत रही; यथा– स्त्रियों के मुकाबले पुरुषों की श्रम बल भागीदारी तीन गुना से भी अधिक थी। 'कुल व्यक्ति संख्या' हेतु WFPR 48 रही (पुरुषों के लिए 72 प्रतिशत और स्त्रियों के लिए 22 प्रतिशत)। बेरोज़गारी दर कुल के लिए 5 प्रतिशत रही (लिंगभेद के अनुसार, यह स्त्रियों के लिए 9 प्रतिशत और पुरुषों के लिए 4 प्रतिशत रही)। अतः, स्त्रियों के लिए पुरुषों की LFPR के एक-तिहाई से भी कम दर किसी वर्ग-विशेष की स्त्रियों के सम्मुख सामाजिक प्रतिबंधों की ओर इंगित करती है (चूँकि ऐसी स्त्रियाँ भी हो सकती हैं जिन्होंने स्वेच्छा से काम न करना चुना हो)। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए बेरोज़गारी दर दो गुना से भी अधिक दर्ज की गई। यह भी श्रम बाज़ार की चुनौतियों की ओर इंगित करती है। पुरुषों और स्त्रियों के बीच की विषमता वस्तुतः सुस्पष्ट है जिसके लिए लिंग भेद की खाई को पाटे जाने की आवश्यकता है। सापेक्ष रूप से, स्त्रियों के लिए LFPR उत्तर.पूर्वी व दक्षिणी राज्यों में ऊँची और उत्तरी राज्यों में निम्न रही है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में दीजिए)।

1) कृषिक अर्थव्यवस्थाओं में, रोज़गार प्रस्थिति का मूल्यांकन करने के लिए ध्यान में रखे जाने हेतु किसी 'कर्मचारी' का विशिष्ट अभिलक्षण क्या है?

....

....

....

....

2) वे चार दृष्टिकोण क्या हैं जिनके आधार पर राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण करवाए जाते हैं? इन दृष्टिकोणों के पीछे क्या तर्काधार है?

....

....

....

....

....

3) 'श्रम बल' को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है? 'बेरोज़गारी दर' को किस प्रकार आकलित किया जाता है?

....

....

....

....

4) वर्ष 2004.05 के श्रम बल सर्वेक्षण में नियोजित एवं अनियोजित वर्ग की संख्या क्रमशः 41.5 करोड़ और 1.3 करोड़ सामने आई। बेरोज़गारी की दर क्या रही?

....

....

....

....

....

5) सामान्य प्रस्थिति (US) और सामान्य मुख्य एवं गौण प्रस्थिति (UPSS) दृष्टिकोणों (संदर्भ अवधि एक ही होने की स्थिति में), के बीच अनिवार्य विभेद क्या होता है?

....

....

....

....

....

6) श्रमबल भागीदारी दर (LFPR) और कार्यबल भागीदारी दर (WFPR) के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। भारत में उक्त दर (LFPR) और बेरोज़गारी दरों के बीच सुस्पष्ट अंतर आप कैसे व्यक्त करेंगे?

....

....

....

....

....

7) ग्रामीण एवं शहरी बेरोज़गारी के बीच मोटे तौर पर अंतर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

10.3 रोज़गार नीतियाँ

अपनाई गई रोज़गार नीतियों को सभी प्रकार के वांछित रोज़गार प्राप्त कराने पर अभिलक्षित होना चाहिए (यथा, विभिन्न स्तरों पर अकुशल दिहाड़ी मज़दूरी वाला रोज़गार, अर्ध-कुशल व कुशल कर्मचारियों हेतु रोज़गार, उच्चतर कुशल एवं शिक्षित कर्मचारियों हेतु रोज़गार)। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति से ही भारत में अपनाई गई रोज़गार

नीतियों का कार्यक्षेत्र विस्तृत रहा है। यह दृष्टिकोण भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) के आरंभ से ही आगे अपनाई गई विभिन्न रोज़गार नीतियों व कार्यक्रमों के आग्रहों में दिखाई देता है। प्रथम, कुछ योजनाओं के प्रयास इस विश्वास के साथ अंकित किए गए कि समस्त आर्थिक संवृद्धि दर विभिन्न स्तरों पर वांछित रोज़गार का सृजन सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होगी। तद्नुसार, 1950 व 1960 के प्रथम दो दशकों के दौरान क्रियान्वित नीतियाँ ऐसे रोज़गार के उच्चतर स्तर सृजित करने की संभावना वाले क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करते प्रयासों की रही। दूसरे शब्दों में, अति दरिद्र कुटुंबों की मज़दूरी-रोज़गार आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए सामान्य अथवा समग्र आर्थिक संवृद्धि से प्रत्याशित अंतःस्रवण प्रभाव के कारण कोई भी विशिष्ट प्रयास क्रियान्वित नहीं किया गया। फिर भी, 1970 के उत्तरार्ध में, वर्ष 1978 में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) आरंभ होने के साथ ही, मज़दूरी-रोज़गार अवसरों द्वारा ग़रीबी के स्तर नीचे के कुटुंब/लोगों की सहायता करने हेतु विशिष्ट प्रयास शुरू किये गये। आने वाले दशकों में, अनेक विशिष्ट रोज़गार सृज़न कार्यक्रम (यथा, TRYSEM, RLEGP, DPAP आदि) लागू किए गए, ये प्रयास मुख्यतः मज़दूरी-रोज़गार के रास्ते खोलकर ग़रीबी से लड़ने हेतु आपूर्ति पक्ष के प्रत्युत्तर स्वरूप थे। इन कार्यक्रमों का लक्ष्य स्वयं-रोज़गार नवपरियोजनाएँ शुरू करने में सक्षम करने हेतु कौशल विकास भी रहा। बहरहाल, अनुभव के 50 से भी अधिक वर्षों बाद, ग़रीब कुटुंबों की स्थिति और भी अधिक गंभीर होती देखकर (खासकर, वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों के क्रियान्वयन पश्चात्), यह महसूस किया गया कि रोज़गार सृजन को एक माँग-प्रेरित प्रयास बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि संभावित कर्मचारी वर्ग किसी वर्ष में रोज़गार के दिनों की एक न्यूनतम संख्या हेतु प्रयास कर उसे प्राप्त कर सकें। इस आशय को वर्ष 2005 में एक अधिनियम (NREGA) का रूप दे दिया गया। अब हम दोनों विभिन्न अवधियों, यथा 1950 के दशक से 2000/2002 एवं 2000–उपरांत वर्षों में की गई विभिन्न रोज़गार विषयक नीति पहलों का विहंगावलोकन करेंगे।

10.3.1 1950 के दशक से वर्ष 2002 तक

1950 के दशक के पूर्वार्ध में, बेरोज़गारी को एक ऐसी समस्या के रूप में मान्यता मिली जिसको तीव्रतर आर्थिक संवृद्धि की उपलब्धि पर ध्यान देते हुए काफ़ी हद तक दूर किया जा सकता है। विशेष ध्यान लघु उद्योग जैसे श्रम-गहन क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिए जाने पर दिया गया। बेरोज़गारी के पिछले बोझ के आकलित विस्तार पर कड़ी नज़र रखी गई। उदाहरण के लिए, द्वितीय पंचवर्षीय (1957-62) के अंत तक अनुमानित बेरोज़गारी 50 लाख बताई गई, जिसमें श्रमबल में प्रतिवर्ष 15 से 20 लाख तक नए नाम जुड़ जाना प्रत्याशित था। इतनी बड़ी संख्या में लोगों की रोज़गार संबंधी ज़रूरत को पूरा करने के लिए यह कल्पना की गई कि सकल घरेलू उत्पाद में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रोज़गार सृजन हेतु पर्याप्त होगा ताकि श्रम बल का पिछला बोझ और उसमें ताज़ा वृद्धि दोनों का ध्यान रखा जा सके। बाद के वर्षों में विकासमान कृषिक समुदाय की मदद हेतु चौथी योजना (1969-74) में दो विशेष अभिकरण स्थापित किए गए– (i) लघु कृषक विकास अभिकरण (SFDA), और (ii) सीमांत कृषक एवं कृषिक श्रम विकास अभिकरण (MFALDA)। परंतु, रोज़गार सृजन पर आग्रह दबाव और सकल घरेलू उत्पाद में लक्षित संवृद्धि दरों की उपलब्धि के बावजूद, भारत 1960 और 1970 के दशकों में औसत रूप से 3.5 प्रतिशत की संवृद्धि दर ही प्राप्त कर सका। जबकि रोज़गार 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत से बढ़ा, श्रम बल 2.5 प्रतिशत की तीव्रतर दर से बढ़ा। परिणामतः, वर्ष 1973-74 तक बेरोज़गारों की

संख्या बढ़कर 1 करोड़ हो गई। वांछित पुनःदिशा निर्धारण के रूप में, पाँचवीं योजना (1974-79) में विशेष 'ग़रीबी हटाओ' और रोज़गार कार्यक्रम शुरू किए गए। उक्त अभिकरणों (SFDS व FALDA) के दो कार्यक्रमों को वर्ष 1978 में मिलाकर एक व्यापक कार्यक्रम 'समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (IRDP) के नाम से चलाया गया। एक 'राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (NREP) वर्ष 1980 में शुरू किया गया, जिसके दो उद्देश्य थे– (i) ग्रामीण ग़रीबों को मज़दूरी आय प्रदान करना; और (ii) ग्रामीण अवसंरचना निर्माण करना। इसके पश्चात्, वर्ष 1983 में एक अन्य कार्यक्रम शुरू किया गया, जिसे नाम दिया गया– 'ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम' (RLEGP)। इसका उद्देश्य था– वर्ष 1983 में चुने हुए पिछड़े इलाकों में रोज़गार के 100 दिन प्रदान करना। यद्यपि इस प्रकार के कार्यक्रम किसी भी वर्ष में 'रोज़गार के व्यक्ति दिवसों' की यथेष्ट संख्या उत्पन्न करने में सक्षम थे, इनसे देश में बेरोज़गारी की समग्र व्यापकता को कम करने में मदद नहीं मिली। परिणामतः, बेरोज़गारी की व्यापकता निरंतर बढ़ती ही गई, जिसके कारण सातवीं योजना (1985.90) की विकास रणनीति में रोज़गार को केंद्र में रखा गया। इन सभी दबावों और प्रयासों के बाद भी, 1980 के दशक में सकल घरेलू उत्पाद में 5.5 प्रतिशत की एक अपेक्षाकृत तीव्रतर औसत वार्षिक संवृद्धि के बावजूद रोज़गार वृद्धि तो मात्र 1.8 प्रतिशत के निम्न स्तर पर ही रही। इस प्रकार, अस्सी के दशकांत तक बेरोज़गारों की संख्या बढ़कर 1.45 करोड़ और वर्ष 1991-92 तक कुछ और बढ़कर 1.7 करोड़ आँकी गई।

1990 के दशकारांभ में, विशेष रूप से वर्ष 1991 में शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के संभावित प्रभाव को शामिल करके, रोज़गार एवं बेरोज़गारी के रुझानों का एक विस्तृत मूल्यांकन किया गया। यह मूल्यांकन आठवीं योजना (1992-97) की रोज़गार रणनीति का आधार बन गया। खुले आम बेरोज़गार और गंभीर रूप से अल्प-नियोजित, दोनों को ध्यान में रखते हुए और 1992-91 के दौरान लगभग 3.5 करोड़, और वर्ष 1997-2002 के दौरान 3.6 करोड़ के श्रमबल को अतिरिक्त रूप से शामिल करते हुए, नौवीं योजना (1997-2002) ने रोज़गार में 2.6 से 2.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हासिल करने का लक्ष्य निर्धारित किया। वर्ष 2002 तक 'सभी के लिए रोज़गार' का लक्ष्य हासिल करने के लिहाज से निर्धारित यह लक्ष्य इन प्रयासों के माध्यम से योजना रणनीति में रखा गया था : (i) समस्त एवं क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ; (ii) कृषि संबंधी स्थानिक एवं उप-क्षेत्रीय विविधता साधित अभिलक्षित नीतियाँ एवं कार्यक्रम; (iii) ऊसर भूमि का विकास; (iv) ग्रामीण ग़ैर-फार्म क्षेत्र के विकास हेतु नीति प्राधार द्वारा समर्थन; (v) लघु एवं विकेंद्रीकृत औद्योगिक क्षेत्र; (vi) अनौपचारिक एवं सेवा-क्षेत्रों की तीव्रतर वृद्धि; आदि। इन प्रयासों के बावजूद, (हालाँकि सकल घरेलू उत्पाद द्वारा मापित आर्थिक संवृद्धि ने प्रभावशाली परिणाम दर्शाए) 1994.2000 के दौरान GDP वृद्धि बढ़कर 6.7 प्रतिशत हो गई, रोज़गार वृद्धि वर्ष 1983-93 के दौरान मात्र हासिल 2.7 प्रतिशत से घटकर वर्ष 1994.2000 के दौरान 1.1 प्रतिशत रह गई। दूसरे शब्दों में, यह कल्पना कि एक उच्चतर संवृद्धि दर से तीव्रतर रोज़गार वृद्धि होगी, साकार नहीं हुई और संवृद्धि प्रक्रिया को एक 'रोज़गार रहित संवृद्धि' के रूप में पहचाना जाने लगा, यथा निम्नतम रोज़गार अंश के साथ उच्चतर सकल-घरेलू-उत्पाद संवृद्धि। यह संवृद्धि रोज़गार लोचशीलता में 0.52 से 0.16 की गिरावट द्वारा अंकित की गई।

10.3.2 वर्ष 2002 के उपरांत

अपने क्रियान्वयन के 20 वर्ष पश्चात्, वर्ष 1999 में उक्त कार्यक्रम (IRDP) के स्थान पर स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना (SGSY) लाई गई। उक्त कार्यक्रम (IRDP)

की मूल्यांकन रिपोर्टों के अनुसार, इस कार्यक्रम ने अधिकांश मामलों में आय में वृद्धि की ओर प्रवृत्त किया था, जिससे लगभग 15 प्रतिशत सहायता प्रेरित कुटुंब ग़रीबी की रेखा वाले आय स्तर को पार करने में सक्षम हुए थे। इसके बावजूद, यह महसूस किया गया कि देश में दिन-ब-दिन रोज़गार तलाश करने वालों की व्यथा कम करने के लिए एक पुनर्नवीकृत प्रयास की आवश्यकता है। इसने देश के चुने हुए अपेक्षाकृत ग़रीब ज़िलों में प्रत्येक कुटुंब को एक वर्ष में रोज़गार के 100 दिन तक काम सुनिश्चित करने के लिए वर्ष 2005 में पारित राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (NREGA) वर्ष 2000 के उपरांत की प्रमुख पहल रहा। वर्ष 2004 में, असंगठित अनौपचारिक क्षेत्र में उद्यमों की समस्याओं की जाँच करने और उच्च रोज़गार संभावना वाले इस क्षेत्र की वृद्धि क्षमता को सुदृढ़ करने हेतु नीतियों एवं कार्यक्रम अभिकल्प करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग गठित किया गया। दोनों ही कदम विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण पहल थे, क्योंकि कार्यबल का अधिकांश भाग अर्थव्यवस्था के 'असंगठित' अथवा 'अनौपचारिक' क्षेत्र में ही है और बेहद ग़रीब लोग, जो इस क्षेत्र से ही संबंध रखते हैं, दिहाड़ी-आधार पर निश्चित रोज़गार चाहते हैं।

वर्ष 2000 के बाद से रोज़गार में रुझान मिले.जुले रहे हैं। उदाहरण के लिए, उक्त संगठन (NSSO) के 61वें दौर पर आधारित आकलन बताते हैं कि वर्ष 2000-05 के दौरान रोज़गार की वृद्धि में सुधार हुआ। वर्ष 2000-2005 की अवधि में, रोज़गार में वृद्धि दर 2.85 प्रतिशत प्रति वर्ष आकलित की गई (जो कि वर्ष 1994-2000 की अविध में 1 प्रतिशत से काफ़ी ऊपर थी)। किंतु, रोज़गार की स्थिति तो लघु समयावधि में भी व्यापक रूप से घटती-बढ़ती रहती है। इस कारण से, इसका लंबे समयांतरालों के एक छोर से दूसरे छोर तक अध्ययन करना आवश्यक है (10+ वर्ष)। किसी लंबी समयावधि के एक छोर से दूसरे छोर तक इस प्रकार का मूल्यांकन उक्त संगठन (NSSO) के विभिन्न पंचवर्षीय दौरों में करना पड़ता है क्योंकि यही एकमात्र ऐसा स्रोत है जो समस्त अर्थव्यवस्था के संगठित एवं असंगठित दोनों ही क्षेत्रों में विस्तारित है। इस कारण से, वर्ष 1983-2010 की अवधि में 3 दीर्घावधि और 3 ही अल्पावधि के आँकड़े तालिका 10.1 में प्रस्तुत किए गए हैं –

तालिका 10.1 : रोज़गार एवं GDP में वृद्धि दर (%)

अवधि (दीर्घ/अल्प)	रोज़गार	GDP	EE
1983-1993 (दीर्घ)	2.0	5.0	0.40
1994-2005 (दीर्घ)	1.8	6.3	0.29
1999-2010 (दीर्घ)	1.5	7.5	0.20
1988-1993 (अल्प)	2.4	–	–
1994-2000 (अल्प)	1.0	–	–
2005-2010 (अल्प)	0.2	9	0.02

सकल घरेलू उत्पाद में सदृश वृद्धि दरों के साथ सन्निहित, तीन उप-अवधियों हेतु इस प्रकार का दीर्घावधि मूल्यांकन दर्शाता है कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि दर का वर्ष 1983-2010 की दीर्घावधि में रोज़गार वृद्धि दर के साथ प्रतिलोम संबंध रहा है। रोज़गार की लोच, जो कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि दर और रोज़गार में वृद्धि दर के अनुपात के रूप में मापी जाती है, भी संगतिपूर्वक रही है। इसमें रुझान वर्ष 1983-

2010 की अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था में रोज़गाररहित संवृद्धि को सिद्ध करता है। अल्पावधि तुलनात्मक वर्णन अल्पावधि में परिवर्तनों के प्रति संवृद्धि दर की संवेदनशीलता को इंगित करता है जो कि दीर्घावधि हेतु आँकड़ों पर विचार करते समय औसत स्तर पर आ जाता है।

वर्ष-दर-वर्ष अपनी उपलब्धि में कुछ अंतर के साथ, उक्त अधिनियम (मनरेगा) के प्रयासों के परिणाम दर्शाते हैं कि यह अधिनियम भागीदार कुटुंबों को लगभग 50 दिन की औसत संख्या में काम दिलवाने में सफल रहा है, जो कि 100 दिन के अभिकल्पिक अधिकतम प्रावधान से काफ़ी कम है। किंतु, इस कार्यक्रम ने अपने क्रियान्वयन के पास पड़ोस के क्षेत्रों में औसत मज़दूरी को बढ़ाने में भी योगदान दिया है। मनरेगा (GREGA – उक्त अधिनियम का ही नया नाम जो वर्ष 2009 से लागू हुआ) की समीक्षा में अनेक कमज़ोरियाँ बतलाई गईं, जैसे– (i) माँग पर कार्य का शून्य-प्रावधान; (ii) कार्यसूची के आधार पर मज़दूरी आकलित करने में पारदर्शिता का अभाव; (iii) न्यूनतम मज़दूरी का भुगतान नहीं होना; (iv) नियत 15 कार्यदिवसों के भीतर मज़दूरी का भुगतान नहीं होना; (v) निषेध के बावजूद ठेकेदारों का प्रयोग; (vi) रोज़गार.भत्ता का भुगतान नहीं होना; (vii) कार्यस्थल पर सुविधाओं का प्रावधान नहीं होना; आदि। हक़दारियाँ 'बेचने' और नामावलियों में 'हेराफेरी' के मामले भी सामने आए है। इन सब घटनाओं के बावजूद, इस कार्यक्रम ने निम्नलिखित क्षेत्रों में अनेक परिसम्पत्तियों के निर्माण में मदद की है– (i) जल संरक्षण; (ii) सिंचाई; (iii) सड़क संयोजना; (iv) भूमि विकास; व अन्य। उपर्युक्त में से, जल संरक्षण कार्यों ने वर्ष 2007-11 की पाँच वर्षीय अवधि में 50 प्रतिशत से भी अधिक भौतिक उपलब्धियों का हिसाब दिया। यह इसीलिए स्वीकार किया जा सकता है कि ग्राम परिषदों (जिनको इसके क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी माना जाता है) की निकृष्ट प्रबंधन क्षमता के बावजूद मनरेगा के कार्यक्रम अतीत में इसी प्रकार के कार्यक्रमों से बेहतर क्रियान्वित किए जा रहे हैं। वर्ष 2011 में, उक्त योजना (SGSY) के एक पुनर्संरचित संस्करण के रूप में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) शुरू किया गया।

10.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

ऊपर भाग 10.3 में दिया गया रोज़गार सृजन का वृत्तांत प्रमुखतः ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही ग़रीबों की मज़दूरी रोज़गार संबंधी आवश्यकताओं को समझता है। ये आवश्यकताएँ केवल रोज़गार सृजन संबंधी समस्या के परिमाणात्मक आयाम की ओर ही संकेत करती हैं। इससे इतर, एक गुणात्मक आयाम भी होता है, जिस लिहाज़ से देश को वहाँ पहुँचने के लिए एक लंबा सफ़र तय करना है जिसे 'मर्यादित कार्य' स्तर कहा जाता है। इस लिहाज़ से एक भेद 'मज़दूरी' शब्द को लेकर किया जा सकता है जो कि 'आकस्मिक कर्मचारियों' के लिए मज़दूरी रोज़गार कार्यक्रमों में प्रयोग किया जाता है, और दूसरा 'वेतन' जो कि 'नियमित कर्मचारियों' को एक निश्चित तरीके से दिया जाता है। इससे वह द्विभाजन भी प्रकाश में आता है जो भारत जैसे कृषिक एवं विकासशील देशों के श्रम बाज़ारों में विद्यमान होता है। मज़दूरी कमाने वाले, एक ऐसे क्षेत्र में जीवन-निर्वाह करते हैं जिसे 'अनौपचारिक क्षेत्र' कहा जाता है। उनकी रोज़गार दशाएँ किसी भी ऐसे अधिनियम अथवा कानून से नियंत्रित नहीं होती हैं जो रुग्णता अथवा रोज़गारोपरांत वर्षों, यथा वृद्धावस्था, के दिनों में उनकी आय को संरक्षित करे। दूसरी ओर, संपूरक औपचारिक अर्थात् संगठित क्षेत्र में कर्मचारियों का एक छोटा-सा भाग अनेक ऐसे विधिक प्रावधानों के अंतर्गत लाया गया है। कर्मचारियों के संगठित

अथवा औपचारिक क्षेत्र को इस रूप में परिभाषित किया जाता है– 'वह कर्मचारी वर्ग जो 10 कर्मचारियों से अधिक नियोजित करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों अथवा निजी क्षेत्र के संगठनों में कार्यरत हो।' जब अर्थव्यवस्था विकसित होती है तो अधिकाधिक अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मचारी औपचारिक क्षेत्र में अवशोषित कर लिए जाते हैं, या फिर अर्थव्यवस्था इस प्रकार विस्तार कर सकती है कि न सिर्फ़ अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों की संख्या बढ़े, बल्कि औपचारिक क्षेत्र के कुछ कर्मचारियों को 'अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों' में गिना जाने लगे। परवर्ती (यथा वेतन भोगी) का अर्थ है– सफ़ाई, सुरक्षा, अनुरक्षण सेवाओं आदि सरीखे कुछ अमहत्त्वपूर्ण कार्यों को ठेके पर उठाकर औपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों को एक अनौपचारिक आधार पर मेहनताना देकर रखने की दृश्यघटना। यह प्रक्रिया अर्थव्यवस्था के 'अनौपचारीकरण' के नाम से जानी गई है। 'औपचारिक एवं अनौपचारिक' (अथवा संगठित एवं असंगठित जैसा कि उन्हें भारत में पुकारा जाता है) का अनुपात भारत में एक लंबे समय तक 7 : 93 ही रहा। हाल ही में, प्रस्थिति में अनौपचारिक से औपचारिक तथा विपरीत भी, परिवर्तन की प्रक्रिया के साथ, औपचारिक एवं अनौपचारिक कर्मचारियों को 16 : 84 के रूप में दर्शाया जाता है। भारत में कर्मचारियों का एक अन्य प्रभावी वर्ग 'स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारियों' का है, जो कि अनौपचारिक कार्यबल का एक प्रमुख भाग बनते हैं। स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारियों की प्रस्थिति को 'आकस्मिक श्रमिक' से उत्तम परंतु 'नियमित मज़दूरों' अथवा 'कर्मचारियों' से निकृष्ट माना जाता है। भारत में बड़ी संख्या में स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारी स्वयं-खाता खेती-बाड़ी अथवा ग़ैर-खेती-बाड़ी क्षेत्र में लघु व्यवसाय में कार्यरत हैं। यह स्थिति अल्पावधि में भी परिवर्तन लाने वाली होती है। कुछ स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारी मात्र इतना ही अर्जित कर रहे हो सकते हैं कि वे दैनिक मज़दूरी आधार पर आकस्मिक नौकरियाँ चुन लेने को बाध्य हो सकते हैं। इन तीन प्रकार के कर्मचारियों, अर्थात् स्वरोज़गार प्राप्त, नियमित मज़दूरों व आकस्मिक श्रमिकों का वर्ष 1973-2010 की अवधि में परिवर्तनशील प्राधार निम्नलिखित तथ्य दर्शाता है– (i) नियमित कर्मचारियों का अनुपात इन 38 वर्षों की अवधि में 15.4 : से किंचित् ही बढ़कर 16.6 : हो गया है (यह एक 'गतिहीन अवस्था' ही रही है); (ii) 'आकस्मिक श्रमिक' का अनुपात अनुकूल अवधि में 23 प्रतिशत से बढ़कर 33 प्रतिशत हो गया है (इसका वर्णन अर्थव्यवस्था के अनौपचारीकरण के रूप में किया जाता है); और (iii) 'स्वरोज़गार प्राप्त' का अनुपात 61 प्रतिशत से घटकर 51 प्रतिशत पर आ गया है। 'स्वरोज़गार प्राप्त' कर्मचारियों द्वारा इसी अनुपात के एक सदृश्य ह्रास के प्रति 'आकस्मिक कर्मचारियों' के अंश की वृद्धि (10 प्रतिशत तक) सुझाव दिया गया है कि 'आकस्मिक कर्मचारियों की संख्या में शामिल होने के लिए निम्न आय के कारण स्वयं.खाता कर्मचारियों (स्वरोज़गारप्राप्त कर्मचारियों हेतु एक अन्य नाम) का बहिर्गमन' इंगित हुआ है। दूसरे शब्दों में, यह कुल मिलाकर रोज़गार की गुणवत्ता में अपकर्ष का ही सूचक है।

10.4.1 असंगठित कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा

असंगठित क्षेत्र में उद्यमों हेतु राष्ट्रीय आयोग (NCEUS) की सिफ़ारिशें मानते हुए, एक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, जिसका नाम था– 'असंगठित कर्मचारी सामाजिक सुरक्षा अधिनियम', वर्ष 2008 में पास किया गया। यह अधिनियम निम्नलिखित विषयों पर असंगठित कर्मचारियों हेतु उपयुक्त कल्याण योजनाओं के निरूपण को अनुबद्ध करता है– (i) इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना; (ii) राष्ट्रीय परिवार लाभ

योजना; (iii) जननी सुरक्षा योजना; (iv) आम आदमी बीमा योजना; (v) राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना; (vi) जनश्री बीमा योजना; (vii) अटल पेंशन योजना; और (viii) प्रधानमंत्री जीवन बीमा योजना।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) भारत में रोज़गार की स्थिति सुधारने के लिए प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाया गया मूल दृष्टिकोण क्या था?

....

....

....

....

....

2) किस वर्ष में विशेष रोज़गार सृजन एवं 'ग़रीबी हटाओ' कार्यक्रम लागू किए गए? इस कदम को उठाने हेतु क्या प्रेरणा थी?

....

....

....

....

....

3) रोज़गार एवं बेरोज़गारी संबंधी समस्या से निपटने के लिए 1990 के दशक में कौन-से विशेष प्रयास किए गए? इससे क्या परिणाम साकार रूप में सामने आए?

....

....

....

....

....

4) सरकार के प्रयासों में वर्ष 2000 के बाद से दिशा परिवर्तन दर्शाने वाली दो महत्त्वपूर्ण पहलें क्या थीं?

....

....

....

....

....

....

5) एक दीर्घावधि स्तर पर, भारत में रोज़गार योजना के कार्य निष्पादन का आप किस प्रकार वर्णन करेंगे?

....

....

....

....

....

....

6) वर्ष 1973-2010 के एक अपेक्षाकृत दीर्घकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था के 'अनौपचारीकरण' के लिहाज़ से क्या रुझान रहा है?

....

....

....

....

....

....

10.5 सार-संक्षेप

भारत में रोज़गार की समस्या बड़ी संख्या में अकुशल कर्मचारियों से जुड़ी है जो आकस्मिक प्रकृति वाली दिहाड़ी मज़दूरी के काम मिलने पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार के काम प्रकृति में अनौपचारिक होते हैं और साल के कुछ दिन ही उपलब्ध होते हैं। उनकी जीवन-निर्वाह संबंधी आवश्यकता पूर्ति के लिए सरकार ने अनेक मज़दूरी रोज़गार कार्यक्रम चलाए हैं। वर्ष 1950-2000 के बीच, इन कार्यक्रमों ने 15 प्रतिशत सहायता प्राप्त कुटुंबों को ग़रीबी की रेखा से नीचे की प्रस्थिति से निकालने में सफलता प्राप्त की है। आपूर्ति पक्ष के उपाय स्वरूप लागू इन कार्यक्रमों को सीमित प्रभाव छोड़ने वाला ही माना गया और इस स्थिति से उबरने के लिए वर्ष 2005 में नरेगा (NREGA) का माँग-प्रेरित अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के तहत लागू कार्यक्रमों ने एक निश्चित संख्या तक ही नौकरियों या काम की उपलब्धता सुनिश्चित करने में योगादन दिया है, जो कि वस्तुतः इस अधिनियम द्वारा गारंटी दिए गए रोज़गार के 100 दिन से काफ़ी कम है। इसके और इस अधिनियम के क्रियान्वयन में पहचानी गई अन्य कमियों के बावजूद, इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाले कार्यक्रमों को इसके देशभर में क्रियान्वयन के क्षेत्रों में औसत मज़दूरी स्तरों को ऊपर उठाने के अलावा एक स्थिरता का भाव उत्पन्न करने का भी श्रेय दिया जाता है। सरकार ने असंगठित अथवा अनौपचारिक क्षेत्र में ऐसे कर्मचारियों की सहायतार्थ अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ भी लागू की हैं जो कि रोज़गार व आय असुरक्षाओं के प्रति अतिसंवेदनशील हैं। इस इकाई में हमने ग्रामीण क्षेत्रों में विशिष्टतः विद्यमान बेरोज़गारी और अल्प रोज़गारी की समस्या पर चर्चा की। शहरी इलाकों में यह समस्या संरचनात्मक बेरोज़गारी वाली है जो कि कौशलों में विसंगति से संबंध रखती है।

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Papola, T. S. (2008). Employment in India's Development Strategy, in S.K. Bhaumik (Ed.), Reforming Indian Agriculture: Towards Employment Generation and Poverty Alteration, Sage, New Delhi.

2) Papola, T. S. (2008). Employment Challenge and Strategies in India, ILO, Asia-Pacific Working Paper Series, New Delhi. Pp 2-10.

3) Papola and Sahu (2012). Growth and Structure of Employment in India: Long Term and Post-Reform Performance and the Emerging Challenge, ISID, New Delhi. -

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) चूँकि उनका काम कोई नियमित प्रकृति का नहीं है, उनकी दिन-प्रतिदिन की स्ववृत्ति पर विचार किए जाने की आवश्यकता है।

2) US, UPSS, CWS व CDS रोज़गार की दीर्घावधि प्रस्थिति के साथ-साथ अल्पावधि प्रस्थिति का भी दर्शाते हैं।

3) श्रम बल को 'नियोजित जमा अनियोजित' के रूप में परिभाषित किया जाता है। बेरोज़गारी दर को फिर 'श्रमबल के प्रति अनियोजित' के प्रतिशत के रूप में आकलित किया जाता है।

4) [(13(415 + 13) ×100 = 3 प्रतिशत।

5) US/UPS दृष्टिकोण के लिए 'अधिकांश समय निकष' प्रयोग किया जाता है। UP दृष्टिकोण के लिए, 'अधिकांश समय निकष' पर आधारित मुख्य क्रियाकलाप और 'वरीयता समय' निकष पर आधारित गौण क्रियाकलाप दोनों प्रयोग किए जाते हैं।

6) दोनों के लिए हर कुल जनसंख्या ही है। अंश के लिए, WFPR हेतु यह कर्मचारियों की संख्या होगी और LFPR हेतु यह श्रम बल होगा।

7) ग्रामीण बेरोज़गारी मौसमी कारकों की वजह से प्रछन्न अथवा अल्प-रोज़गार होती है जबकि शहरी बेरोज़गारी कौशलों में विसंगति की वजह से संरचनात्मक होती है।

बोध प्रश्न 2

1) मूल दृष्टिकोण इस प्रत्याशा के साथ एक वृद्धि लक्ष्य तय करना था कि संवृद्धि के लाभ स्वतः ही रोज़गार सृजन में परिवर्तित होते रहेंगे।

2) वर्ष 1978 में IRDP की विधि से यह महसूस किया गया कि ग़रीब परिवारों पर केंद्रित एक विशेष प्रयास की आवश्यकता है क्योंकि प्रत्याशित रिसन प्रभाव दरअसल काम नहीं कर रहा था।

3) वर्ष 2002 तक 'सभी के लिए रोज़गार' का लक्ष्य प्राप्त करने का उद्देश्य लेकर इस प्रभाव को योजना रणनीति में आंतरीकृत कर देना था। तथापि, जब रोज़गार में लक्षित वृद्धि दर 2.6 से 2.8 प्रतिशत है, वर्ष 1994-2000 के दौरान वास्तविक उपलब्धि 1.1 प्रतिशत रही।

4) NCEUS की स्थापना तथा NREGA का अधिनियमन (10.3.2)।

5) वर्ष 1983-2010 के दौरान रोज़गार एवं GDP संवृद्धि दरों की तुलना दर्शाती है कि दो वृद्धि विवरण प्रतिलोमितः संबद्ध हैं।

6) स्थिति 93 : 7 से 84 : 16 तक महत्त्वपूर्ण रूप से बदली है। यद्यपि, इससे बेहतर औपचारीकरण प्रकट होता है, किंतु वास्तविकता में, 'आकस्मिक कर्मचारियों' के अनुपात में 23 से 33 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 संवृद्धि एवं संरचनात्मक परिवर्तनों का तुलनात्मक वर्णन*

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 विषय प्रवेश

11.2 कार्यबल का अंतर्क्षेत्रीय स्थानांतरण : सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि एवं रुझान

11.3 संरचनात्मक परिवर्तनों का तुलनात्मक वर्णन : भारत बनाम विकसित देश

11.4 संरचनात्मक परिवर्तनों का तुलनात्मक वर्णन : भारत बनाम अन्य विकासशील एशियाई देश

11.5 संरचनात्मक परिवर्तनों का तुलनात्मक वर्णन : भारत बनाम विकसित एवं ब्रिक्स अर्थव्यवस्थाएँ

11.6 सार-संक्षेप

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- कार्यबल के अंतर्क्षेत्रीय स्थानांतरण विषयक सैद्धांतिक अंतर्दृष्टियों पर चर्चा कर सकें;
- भारत में कार्यबल के अंतर्क्षेत्रीय स्थानांतरण में रुझान की तुलना उसी विषय में सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि से कर सकें;
- भारत और विकसित देशों के बीच संरचनात्मक परिवर्तनों का एक तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत कर सकें;
- अन्य विकासशील एशियाई देशों के साथ भारत के एक तुलनात्मक वर्णन में सकल घरेलू उत्पाद के अंशों में अंतर्क्षेत्रीय स्थानांतरणों को स्पष्ट कर सकें;
- 'ऋण व सकल घरेलू उत्पाद अनुपात' एवं 'अनुपयोगी ऋण' को परिभाषित कर सकें और हाल के वर्षों में प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में उनके रुझान इंगित कर सकें; तथा
- विश्व, अन्य विकसित देश एवं ब्रिक्स अर्थव्यवस्थाओं के साथ एक तुलनात्मक वर्णन में हाल के वर्षों 2010–16 में भारत की संवृद्धि दरों में रुझानों का वर्णन कर सकें।

11.1 विषय प्रवेश

आर्थिक विकास की प्रक्रिया ऐतिहासिक रूप में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में संरचनात्मक

* डॉ. असीम कर्माकर, जादवपुर विश्वविद्यालय, एवं प्रो. बी.एस. प्रकाश,इग्नू

परिवर्तन से जुड़ी है। संरचनात्मक परिवर्तन का अर्थ है— प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र की ओर सकल घरेलू उत्पाद एवं श्रमिक बल के अंशों में स्थानांतरण। संरचनात्मक परिवर्तन न केवल आर्थिक विकास के लक्षणों का वर्णन करते हैं बल्कि आर्थिक संवृद्धि को कायम रखने के लिए आवश्यक भी माने जाते हैं। कुज़्नेट्स व अन्य ने दर्शाया है कि धारणीय संवृद्धि कार्यबल के क्षेत्रीय संयोजन में परिवर्तनों द्वारा लाई जाती है। किसी भी अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन न केवल किसी वृद्धि दर का परिणाम होंगे बल्कि यह विकास की प्रकृति पर भी निर्भर करता है (जैसे— मानव विकास, समावेशी विकास)।

11.2 कार्यबल का अंतर्क्षेत्रीय स्थानांतरण : सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि एवं रुझान

फिशर (1935), क्लार्क (1946), चेनरी (1960) एवं कुज़्नेट्स (1971) के पुरोगामी ग्रंथ दर्शाते हैं कि विकास के आरंभिक चरणों में, उत्पादन और रोज़गार दोनों में कृषि का अंश अत्यधिक सशक्त रूप से विशाल रहा है। परंतु जैसे-जैसे औद्योगीकरण होता जाता है, आय में कृषि क्षेत्र का अंश घटता जाता है। एक बार जब देश यथेष्ट रूप से उद्योगीकृत हो जाते हैं और आर्थिक विकास की उन्नत अवस्था में पहुँच जाते हैं तो उद्योग का अंश भी घटता है जबकि सेवाओं/तृतीयक क्षेत्र का अंश बढ़ता है। किसी अर्थव्यवस्था में आय के एक यथेष्ट रूप से उच्च स्तर पर पहुँच जाने के बाद, सेवाओं हेतु माँग में वृद्धि की दर तेज़ी से बढ़ती है। ऐसा इसलिए है कि सेवाएँ कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों की वस्तुओं हेतु माँग की अपेक्षा अपनी माँग की एक उच्चतर आय की लोच दर्शाती हैं।

रॉथार्न एवं वैल्स (1987) वर्तमान उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में रोज़गार अंश में बदलाव की दृष्टि से संरचनात्मक परिवर्तन के प्रतिमान का एक ऐसा ही विवरण प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने पाया कि आधुनिक आर्थिक संवृद्धि कुल रोज़गार में कृषि के अंश में गिरावट से जुड़ी होती है जो ग़ैर-कृषि क्षेत्रों में लगे श्रमिकों के अनुपात एवं संख्या दोनों में वृद्धि ला देती है। ग़ैर-कृषि क्षेत्र में औद्योगिक क्षेत्र के साथ-साथ वाणिज्यिक, सरकारी एवं निजी व पारिवारिक सेवा (PHS) क्षेत्र भी शामिल होते हैं। विकास की प्रथम अवस्था में, जिसे औद्योगिक चरण कहते हैं, कुल रोज़गार में कृषि का अंश घटना चालू रहता है और एक घरेलू निजी सेवा क्षेत्र उठ खड़ा होता है। जब तक कृषि में लगे श्रमिकों का आधिक्य और घरेलू निजी सेवाओं में श्रमिकों की पर्याप्तता दृष्टिगत होती है, ग़ैर-घरेलू सेवाएँ उद्योग के अंश को प्रभावित किए बिना ही कुल रोज़गार में अपना अंश बढ़ा सकती हैं। परंतु अंततोगत्वा, ग़ैर-घरेलू सेवाओं के अंश में कोई भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि औद्योगिक क्षेत्र के अंश में कमी लाएगी। उद्योग के अंश में गिरावट और कुल रोज़गर में सेवाओं के अंश में वृद्धि को रॉथार्न एवं वैल्स (1987) ने विकसित देशों में 'अनुद्योगीकरण' के चरण की संज्ञा दी।

सेवा क्षेत्र गतिविधि का महत्त्व वर्ष 1970–1989 की अवधि में 123 ग़ैर-समाजवादी देशों के एक प्रतिदर्श के अध्ययन में उभरकर आया [कॉन्गासैमट, रिबैलो एवं ज़ाई (2007)]। इस अध्ययन में ध्यान दिलाया गया है कि जैसे-जैसे कोई अर्थव्यवस्था परिपक्व होती है, उत्पादन और रोज़गार दोनों में, कृषि क्षेत्र का अंश घट जाता है। इस गिरावट के साथ ही उत्पादन और रोज़गार में सेवाओं के अंश में वृद्धि देखी जाती है। अतः, जैसे. जैसे देश विकास करते हैं, सेवा क्षेत्र के आर्थिक गतिविधि के अंश में वृद्धि होती है। वस्तुतः, वर्ष 2016 में विश्व सकल घरेलू उत्पाद का 70 प्रतिशत सेवा क्षेत्र ने ही दिया

है। वर्ष 1950 से 2005 की अवधि में विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के एक प्रतिनिधिक अंश विषयक आँकड़ों का प्रयोग कर, आइशनग्रीन एवं गुप्ता (2009) ने सेवा क्षेत्र संवृद्धि की दो तरंगों को पहचाना– प्रथम तरंग जब कोई देश 'निम्न' से 'मध्यम' आय की ओर बढ़ता है तथा दूसरी तरंग जब कोई देश 'मध्यम' से 'उच्च' आय की ओर बढ़ता है।

भारत के उदाहरण में, सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश वर्ष 1950-51 में 60 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2002 में 24 प्रतिशत और तदोपरांत वर्ष 2015 में मात्र 17 प्रतिशत रह गया। औद्योगिक क्षेत्र ने अपना अंश वर्ष 1960 में 16 प्रतिशत से बढ़ाकर वर्ष 2002 में 25 प्रतिशत कर लिया, परंतु उसके बाद यह वृद्धि धीमी पड़ गई (वर्ष 2015 में केवल 25.8 प्रतिशत पर पहुँच कर)। दूसरी ओर, सेवा क्षेत्र का अंश वर्ष 1960 में 21 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2002 में 51 प्रतिशत और वर्ष 2015 में 57 प्रतिशत हो गया। भारत और विकसित एवं उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं के बीच अंतर यह है कि जबकि अधिकांश परवर्ती अर्थव्यवस्थाएँ सेवा क्षेत्र की प्रधानता के सोपान में प्रवेश कर गयीं– कृषि की प्रधानता से क्रमिक रूप से बढ़ते हुए पहले विनिर्माण और फिर सेवाओं में, भारतीय उद्योग इस प्रकार का रुझान दर्शाने में विफल रहा। वह अपने औद्योगिक क्षेत्र संबंधी विस्तार में निष्क्रिय रहा परंतु सेवा क्षेत्र के एक महत्त्वपूर्ण विस्तार की ओर उसने ऊँची छलाँग लगाई। क्या यह रुझान भारत के लिए अद्वितीय था अथवा क्या किसी अन्य अर्थव्यवस्था ने भी इसका अनुसरण किया है? यह एक ऐसा पहलू है जिस पर हम अगले भाग में विचार करेंगे।

11.3 संरचनात्मक परिवर्तनों का तुलनात्मक वर्णन : भारत बनाम विकसित देश

वर्तमान विकसित देशों में संरचनात्मक परिवर्तनों का ऐतिहासिक प्रतिमान लगभग 100 से 150 वर्ष पुराने क्षेत्रीय संरचना की भाँति ही वह अवस्था दर्शाता है जो भारत अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभ में दर्शाता था। कहना होगा कि आज के अधिकांश विकसित देश, वर्ष 1900 के आस-पास, कृषि द्वारा उल्लिखित सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 60 प्रतिशत के साथ अपने औद्योगीकरण में प्रवेश कर गए थे। इन अर्थव्यवस्थाओं में उद्योग एवं सेवाओं ने क्रमशः लगभग 13 और 27 प्रतिशत का योगदान दिया। तद्नुसार, वर्ष 1950 में भारतीय अर्थव्यवस्था संरचनात्मक रूप से अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ग्रेट ब्रिटेन, वर्ष 1900 में जापान, उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जर्मनी और उन्नीसवीं शती-मध्य के अमेरिका एवं इटली की अर्थव्यवस्था के समतुल्य थी। इसी प्रकार की तुलनाएँ तीन अग्रणी क्षेत्रों में श्रमिक बल के अंश की दृष्टि से सही सिद्ध होती हैं, जिनमें वर्ष 1950 में भारत कृषि में 73 प्रतिशत, उद्योग में 11 प्रतिशत और सेवाओं में 16 प्रतिशत के सापेक्ष अंश दर्शाता था। इसकी तुलना वर्ष 1841 के अमेरिका से की जा सकती है जबकि वह कृषि में अपने श्रमिकों का लगभग 72 प्रतिशत, उद्योग में 12 प्रतिशत एवं सेवाओं में 16 प्रतिशत लगाता था, अथवा वर्ष 1880 के जापान से, जहाँ उक्त तीन क्षेत्रों में रोज़गार के अंश क्रमशः रहे– 65, 15 एवं 20 प्रतिशत। वर्तमान विकसित देशों में देखे गए आर्थिक संरचना में परिवर्तनों के ऐतिहासिक प्रतिमान से ज्ञात प्रमुख अभिलक्षण निम्नलिखित हैं –

1) सभी विकसित देशों ने अपनी विकसित होने की स्थिति प्राप्त करने से पूर्व कृषि-प्रधानता वाली अपनी आर्थिक संरचना में एक सदृश अनुक्रम का पालन किया;

2) अधिकांश विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं की संरचना इस अर्थ में सदृश है कि अपनी विकसित अवस्था में प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय उत्पादन में पहले कृषि का अत्यल्प अंश, फिर उद्योग का किंचित् अधिक अंश और फिर सेवाओं का काफी अधिक अंश दर्शाता है; तथा

3) प्रत्येक क्षेत्र के रोज़गार का अंश उस क्षेत्र के उत्पादन अंश के साथ ही चलता है, अर्थात् सेवा क्षेत्र में रोज़गार का उच्चतम अंश, उद्योगों का एक मध्यम अंश और कृषि का निम्नतम अंश।

विगत अर्ध-शती की अवधि (1951–2004) में भारत ने अपने आर्थिक विकास में संरचनात्मक परिवर्तनों के उसी प्रतिमान का अनुभव किया जो आज की विकसित अर्थव्यवस्थाएँ 100 से 150 वर्ष पूर्व की अवधि में कर चुकी थीं। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश वर्ष 1950–51 में लगभग 60 प्रतिशत से गिरकर वर्ष 2016–17 में 17 प्रतिशत रह गया, जहाँ सदृश अवधि में उद्योग का अंश 13 से बढ़कर 29 प्रतिशत हुआ और सेवाओं का क्षेत्र 28 से बढ़कर 54 प्रतिशत हो गया। परिवर्तन का यह प्रतिमान अर्ध-शती की अवधि भर में निरंतर रहा, परंतु परिवर्तन की गति वर्ष 1990–91 से अपेक्षाकृत तीव्र रही है। प्रथम चालीस वर्षों में कृषि के अंश में 60 प्रतिशत से 35 प्रतिशत की गिरावट देखी गई जबकि अगले 25 वर्षों में यह 35 प्रतिशत से घटकर मात्र 17 प्रतिशत रह गया। दूसरी ओर, सेवाओं का अंश प्रथम 40 वर्षों में 28 से बढ़कर 40 प्रतिशत हुआ और अगले 25 वर्षों में 40 से बढ़कर 54 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग का अंश जो वर्ष 2003–04 तक निष्क्रिय रहा, अब वर्ष 2016–17 में 29 प्रतिशत के स्तर तक पहुँच गया है।

तिस पर भी, हाल में (ढाई दशक के दौरान) भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन का सर्वाधिक विस्मयकारी अभिलक्षण रहा है– सेवा-क्षेत्र का उत्कर्ष, जिसने राष्ट्रीय आय में अपना अंश और तेज़ी से बढ़ाया है। उद्योग, विशेषकर विनिर्माण, जिसे ऐतिहासिक रूप से आर्थिक विकास की कम से कम आरंभिक अवधि में, संवृद्धि के प्रमुख सहयोगी के रूप में देखा गया है, ने भारत के आर्थिक विकास में एक लघु भूमिका ही निभाई है। जबकि विकसित देशों ने औद्योगीकरण के एक प्रमुख चरण से गुज़र कर ही अपनी अर्थव्यवस्थाओं में सेवा-प्राधान्य के चरण में प्रवेश किया, जहाँ उद्योग ने अर्थव्यवस्था में 50 प्रतिशत के अंश हासिल किया, भारत का उदाहरण भिन्न है। भारत बिना औद्योगीकरण के एक उत्तर-औद्योगिक 'सेवा अर्थव्यवस्था' की ओर कदम बढ़ा चुका है। किसी अर्थव्यवस्था के ऐसे द्रुत एवं ऐतिहासिक पारगमन, यथा औद्योगिक विकास को लाँघकर कृषि से सीधे एक सेवा अर्थव्यवस्था में प्रवेश, को दो मोर्चों पर स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथम, विगत कुछ दशकों के दौरान प्रौद्योगिकीय सुधारों ने तमाम देशों में सेवाओं हेतु बढ़ती माँग की ओर प्रवृत्त किया है, वह भी प्रति व्यक्ति आय के साथ तुलनात्मक रूप से निम्न स्तर पर। संचार प्रौद्योगिकियों के विकास एवं देशों के बीच लोगों के आवागमन ने प्रदर्शन प्रभाव उत्पन्न किया है, जिससे विकासशील के साथ-साथ विकसित देशों में भी माँग का सदृश प्रतिमान देखने में आया है जिसने सेवाओं हेतु वृहत्तर माँग की ओर प्रवृत्त किया है। परिणामतः, सेवाओं हेतु माँग की लोच अपेक्षाकृत निम्न प्रति व्यक्ति आय स्तरों वाले देशों तक में इकाई से कहीं अधिक हो गई है। इसने राष्ट्रीय उत्पाद में सेवाओं के योगदान को वृद्धि की ओर प्रवृत्त किया है। दूसरे, अर्थव्यवस्थाओं के बढ़ते खुलेपन और उनमें व्यापार द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाए जाने से, माँग प्रतिमान में परिवर्तन व्यापार के माध्यम से लाए जाते हैं। व्यापार ने, तदनुसार, सेवाओं द्वारा उद्योगों के पास से होकर गुज़र जाने में एक प्रेरक शक्ति के रूप में काम किया है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) सर्वप्रथम, प्राथमिक से उद्योग और फिर परवर्ती चरणों में उद्योग से सेवा क्षेत्र में आय के क्षेत्रीय पारगमन विषयक सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि हेतु अंतर्निहित कारण क्या है?

....

....

....

....

....

2) रॉथॉर्न एवं वैल्स द्वारा प्रयुक्त पदबंध 'अनुद्योगीकरण' से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

3) वर्ष 1960 से 2015 की अवधि में सकल घरेलू उत्पाद में अपने क्षेत्रीय अंश की दृष्टि से भारत का क्या अनुभव रहा है?

....

....

....

....

....

4) वे सामान्य अभिलक्षण क्या हैं जो आज के विकसित देशों और भारत हेतु सकल घरेलू उत्पाद एवं रोज़गार के अंतर्क्षेत्रीय अंशों के ऐतिहासिक रुझानों से बताए जा सकते हैं?

....

....

....

....

....

5) वर्ष 1951 से 2017 की अवधि में, सकल घरेलू उत्पाद में अंतर्क्षेत्रीय अंश की दृष्टि से भारत में संरचनात्मक परिवर्तन की गति की तुलना आप कैसे करेंगे?

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

....

....

11.4 संरचनात्मक परिवर्तनों का तुलनात्मक वर्णन : भारत बनाम अन्य विकासशील एशियाई देश

भारतीय अर्थव्यवस्था के निष्पादन को एक तुलनात्मक प्राधार में रखने के लिए, हम दक्षिण.पूर्ण एशिया एवं पूर्व एशिया, यथा चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, पाकिस्तान, थाईलैंड एवं कोरिया गणतंत्र की अर्थव्यवस्थाओं पर विचार कर सकते हैं। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश इन सभी देशों में घटा है और सेवा क्षेत्र का अंश वर्ष 1960—2015 की अवधि में बढ़ा है। इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रुझान निम्नवत् बताए जा सकते हैं—

सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का अंश (कृषि-जीडीपी)

- सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का अंश इन सात देशों में से केवल दो में वर्ष 1960 में 50 प्रतिशत से अधिक रहा, यथा इंडोनेशिया (50 प्रतिशत) और भारत (55 प्रतिशत)। वर्ष 2015 तक 'कृषि-जीडीपी' में उनके अपने-अपने अंश घटकर क्रमशः मात्र 14 और 17 प्रतिशत रह गए।
- वर्ष 1960 में, चीन द्वारा अपने सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश अन्य सभी देशों की तुलना में सर्वाधिक न्यून दर्शाया गया (30 प्रतिशत)। वर्ष 2015 तक, चीन उन तीन देशों में एक हो गया जिनमें सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान घटकर 10 प्रतिशत से भी कम रह गया (8.6 प्रतिशत); अन्य दो देश हैं— मलेशिया (9.1 प्रतिशत) और कोरिया (2.7 प्रतिशत)।
- वर्ष 2002 अर्थात् इस सहस्राब्दि के आरंभ में ही, तीन देश कृषि-जीडीपी के अपने अंश में 10 प्रतिशत से नीचे की गिरावट दर्ज़ करा चुके थे। ये देश हैं— थाईलैंड (9 प्रतिशत), मलेशिया (9 प्रतिशत) और कोरिया (4 प्रतिशत)। फिर भी, वर्ष 2015 में थाईलैंड का कृषि-जीडीपी का अंश बढ़कर 12.4 प्रतिशत हो गया।
- अपना स्तर कायम रखने में मलेशिया उल्लेखनीय है, हालाँकि वर्ष 2015 में कृषि. जीडीपी के उसके अंश में 9.1 प्रतिशत तक किंचित् वृद्धि देखी गई। चीन इस विशिष्ट वर्ग में वर्ष 2022 में 15 प्रतिशत से वर्ष 2015 में 8.6 प्रतिशत पर अपने कृषि-जीडीपी में गिरावट दर्ज कराकर शामिल हुआ। कोरिया ही मात्र एक ऐसा देश है जिसका कृषि-जीडीपी का अंश वर्ष 2015 में गिरकर 5 प्रतिशत से भी नीचे चला गया (2.7 प्रतिशत)।

तालिका 11.1 : कुछ एशियाई देशों में जीडीपी में क्षेत्रीय अंशों (%) में परिवर्तन (1960.2015)

देश	कृषि			उद्योग			सेवाएँ		
	1960	2002	2015	1960	2002	2015	1960	2002	2015
चीन	30	15	8.6	49	51	39.8	21	34	51.6
इंडोनेशिया	50	18	14.3	25	45	46.9	25	38	38.8

थाईलैंड	40	9	12.4	19	43	44.7	41	48	42.9
मलेशिया	36	9	9.1	18	47	41.6	46	44	49.3
कोरिया	37	4	2.7	20	41	39.8	43	55	57.5
पाकिस्तान	46	23	21.8	16	23	23.6	38	54	54.6
भारत	55	24	17.4	16	25	25.8	29	51	56.9

स्रोत : पपोला (2012) एवं डब्ल्यूडीआर डेटाबेस से संकलित।

- ऊपर की बातें इस दृष्टि से निर्दिष्ट की गई हैं कि कृषि-जीडीपी का अंश 10 प्रतिशत से नीचे गिरना एक प्रमुख उपलब्धि है और आगे 5 प्रतिशत से नीचे जाना और भी बड़ी उपलब्धि है।

- विकसित देशों में कृषि-जीडीपी अति निम्न है (यथा, वर्ष 2015 में अमेरिका –1.1 प्रतिशत और उसी वर्ष यूनाइटेड किंगडम –0.6 प्रतिशत)।

सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का अंश (उद्योग-जीडीपी)

- उद्योग-जीडीपी के अंश की ओर रुख़ करें तो चीन ही एकमात्र ऐसा देश है जिसका उद्योग-जीडीपी अंश 1960 में 50 प्रतिशत के नज़दीक रहा (49 प्रतिशत)। वर्ष 1960 में अन्य सभी देशों का उद्योग-जीडीपी अंश 20 प्रतिशत से कम रहा था, जहाँ इंडोनेशिया अपवाद था (25 प्रतिशत)।
- तथापि, चीन का उद्योग-जीडीपी अंश वर्ष 2015 तक 40 प्रतिशत के अंक से नीचे खिसक गया (39.8 प्रतिशत)। यह एक सीधी गिरावट है हालाँकि वर्ष 2002-15 के दौरान उद्योग-जीडीपी में गिरावट मलेशिया और कोरिया में भी देखी गई है।
- वर्ष 1960 में कोरिया अपना उद्योग-जीडीपी अंश 20 प्रतिशत दर्शाता था जो वर्ष 2002 में बढ़कर 41 प्रतिशत हो गया, परंतु उसके बाद से वर्ष 2015 में 39.8 तक किंचित् गिरावट देखी गई।
- उद्योग-जीडीपी अंश तीन देशों के लिए एकसमान रहा, यथा इंडोनेशिया, थाईलैंड और मलेशिया। यह इस अर्थ में है कि वर्ष 1960 में इन तीनों का उद्योग-जीडीपी अंश 20 प्रतिशत की श्रेणी के आस-पास ही रहा (इंडोनेशिया 25 प्रतिशत, थाईलैंड 19 प्रतिशत, मलेशिया 18 प्रतिशत)। वर्ष 2002 तक, कोरिया के साथ ये तीनों देश अपने उद्योग-जीडीपी अंश में 40 प्रतिशत के अंक को पार कर चुके थे (कोरिया 41 प्रतिशत, थाईलैंड 43 प्रतिशत, इंडोनेशिया 45 प्रतिशत और मलेशिया 47 प्रतिशत)। अधिक उल्लेखनीय रूप से, अगले 10+ वर्षों में, यथा वर्ष 2015 तक, इंडोनेशिया और थाईलैंड अपना उद्योग-जीडीपी अंश अंशतः बढ़ा चुके थे (क्रमशः 47 प्रतिशत और 45 प्रतिशत तक), जबकि मलेशिया और कोरिया के लिए इस लिहाज से गिरावट ही दर्ज़ हुई (क्रमशः 41.6 प्रतिशत और 39.8 प्रतिशत तक)।

- अपने उद्योग-जीडीपी की दृष्टि से भारत और पाकिस्तान दोनों बहिर्वर्ती हैं, यथा वर्ष 1960 में दोनों का अंश 16 प्रतिशत रहा और वर्ष 2002 तक दोनों ने न केवल अपना उद्योग-जीडीपी अंश अंशतः ही सुधारा (क्रमशः 25 और 23 प्रतिशत तक) बल्कि वर्ष 2002 से 2015 तक अपने उद्योग-जीडीपी अंश में किंचित् वृद्धि के साथ दोनों ने गतिहीनता भी दर्शाई (क्रमशः 25.8 एवं 23.6 प्रतिशत तक)।

- वर्ष 2002 से 2015 के बीच, भारत और पाकिस्तान में उद्योग-जीडीपी अंश में देखी गई निष्क्रियता परस्पर अंशतः भिन्नता दर्शाते विभिन्न स्तरों पर कोरिया, इंडोनेशिया और थाईलैंड में भी घर कर चुकी थी (तालिका 11.1)। तथापि, संरचनात्मक परिवर्तन या स्थानांतरण कृषि-जीडीपी में एक सदृश गिरावट के साथ उद्योग के विस्तार हेतु देखा गया (यथा, जैसा कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए ऐतिहासिक रुझान से प्रकट हुआ और साथ ही, जैसा कि सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि से सामने आया) जो कि भारत और पाकिस्तान को छोड़कर अन्य सभी देशों के लिए कहीं अधिक स्पष्ट था। उद्योग का विस्तार जैसा कि अन्य पाँच अर्थव्यवस्थाओं में था, इन दो देशों में नहीं देखा गया।

सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का अंश (सेवा-जीडीपी)

- सेवा-जीडीपी में, वर्ष 1960-2015 की अवधि में, अधिकतम परिवर्तन चीन में देखा गया (30.6 प्रतिशत) जिसके बाद भारत का स्थान था (27.9 प्रतिशत), यथा निकटतम अंक को शून्यांत करने पर क्रमशः 31 प्रतिशत और 28 प्रतिशत।

- मलेशिया यहाँ इस अर्थ में बहिर्वर्ती है कि वह अपने सेवा-जीडीपी में वर्ष 1960 में ही अपने शीर्ष स्तर पर पहुँच चुका था (46 प्रतिशत) और आगामी 55 वर्ष की अवधि में उसका सेवा-जीडीपी इन सभी सात अर्थव्यवस्थाओं के बीच लघुतम अनुपात में ही बढ़ा (यथा, 3.3 प्रतिशत)।

- थाईलैंड और कोरिया अन्य दो ऐसी अर्थव्यवस्थाएँ हैं जिनका सेवा-जीडीपी अंश वर्ष 1960 में 40 प्रतिशत से भी अधिक रहा। कोरिया ने तब से लेकर वर्ष 2015 तक 14.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज़ की जबकि थाईलैंड वर्ष 2002 तक अपना सेवा-जीडीपी अंश 7 प्रतिशत तक बढ़ा चुका था परंतु तदंतर वर्ष 2015 में वह 43 प्रतिशत पर ही आ गिरा। इसका अर्थ है कि वर्ष 1960–2015 के दीर्घावधि क्षितिज पर थाईलैंड की सेवा-जीडीपी में वृद्धि न्यूनतम ही रही, यथा मात्र 2 प्रतिशत।

- वर्ष 1960–2002 की अवधि में पाकिस्तान का सेवा-जीडीपी अंश 16 प्रतिशत तक बढ़ा और 54 प्रतिशत के स्तर तक पहुँचा परंतु तदंतर वहाँ गतिहीनता ही नज़र आई– सेवा-जीडीपी में उसका अंश मात्र 0.6 प्रतिशत ही बढ़ा।

- वर्ष 1960–2002 की अवधि में भारत ने अपने सेवा-जीडीपी अंश में उच्चतम वृद्धि दर्ज़ की, यथा 22 प्रतिशत तक। हालाँकि, वर्ष 2002–2015 की अवधि में इस लिहाज से 5.9 प्रतिशत (यथा, 6 प्रतिशत शून्यांश) की अल्प वृद्धि ही देखी गई।

वर्ष 1991–2017 की अवधि में रोज़गार परिवर्तन

- कृषि से श्रमिक बल का स्थानांतरण सभी देशों में सकल घरेलू उत्पाद में परिवर्तन के मुकाबले धीमा ही रहा है। वर्ष 1991–2017 की अवधि में, चीन अपना कृषि-क्षेत्र रोज़गार घटाकर आधा करने में सफल रहा (55 से 27 प्रतिशत) (तालिका 11.2)। इस अवधि में, भारत इसे एक-तिहाई घटा पाया है (63 से 44 प्रतिशत)। जापान ने कृषि में न्यूनतम श्रमिक बल लगाने वाले देश के रूप में उत्कृष्टता हासिल की है (उक्त दोनों ही समय-बिंदुओं पर इकाई का अंक)।

- श्रमिक बल में उद्योग का अंश दर्शाता है कि चार देश– मलेशिया, श्रीलंका,

फिलीपींस एवं पाकिस्तान अपने उद्योगों में रोज़गार समावेशन हेतु एक गतिहीनता की अवधि से गुज़रे हैं। इसके विपरीत, भारत ने औद्योगिक रोज़गार के अंश को 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर लिया है। इस प्रतिशतता वृद्धि के साथ ही भारत इतना विस्तृत औद्योगिक रोज़गार उत्पन्न करने वाले 10 देशों के बीच द्वितीय स्थान पर है (प्रथम वियतनाम है जहाँ 14 प्रतिशत वृद्धि देखी गई), (यथा, चीन 6 प्रतिशत, इंडोनेशिया 8 प्रतिशत)।

- इस समूह के अन्य देशों से भारत को जो बात अलग करती है वह है– सेवा क्षेत्र द्वारा रोज़गार समावेशन में अंतर। अन्य सभी देशों में, सेवा क्षेत्र का अंश सकल घरेलू उत्पाद के अंश की संगति में ही न्यूनाधिक बढ़ा है। तथापि, भारत में, रोज़गार अंश ने सेवा क्षेत्र के जीडीपी अंश में परिवर्तन की अपेक्षा काफ़ी कम वृद्धि दर्शाई है। इसका अर्थ है कि जबकि सकल घरेलू उत्पाद में अपने योगदान की दृष्टि से सेवा क्षेत्र ही प्रमुख आर्थिक क्षेत्र है, रोज़गार के लिए यह एक तुच्छ सहायक ही है।

- सेवा क्षेत्र में, बिना किसी अपवाद के सभी 10 देश अपना रोज़गर अंश बढ़ा चुके हैं। तथापि, वे जो इस अवधि (1991-2017) में 15 प्रतिशत से कहीं अधिक वृद्धि हासिल करने में सफल रहे हैं, इस प्रकार हैं– चीन (23 प्रतिशत), थाईलैंड (18 प्रतिशत), वियतनाम (17 प्रतिशत) और मलेशिया (15 प्रतिशत)।

तालिका 11.2% प्रमुख क्षेत्रों के अनुसार रोज़गार अंश (कुल रोज़गार की प्रतिशतता)

प्रमुख एशियाई अर्थव्यवस्थाएँ	कृषि		उद्योग		सेवाएँ	
	1991	2017	1991	2017	1991	2017
चीन	55	27	19	24	26	49
भारत	63	44	15	25	22	31
इंडोनेशिया	53	31	14	22	33	46
जापान	7	4	35	27	58	70
मलेशिया	26	12	27	27	46	61
पाकिस्तान	48	42	20	20	33	38
फिलीपिंस	43	28	15	16	42	50
श्रीलंका	42	27	26	26	32	47
थाईलैंड	60	34	15	23	25	43
वियतनाम	73	42	9	23	18	35

स्रोत : अंतर्राष्ट्रीय श्रम संस्थान [http://www.ilo.org/global/statistics-and-databases]

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50—100 शब्दों में लिखें।)

1) कौन-से दो देश हैं जिनका कृषि-जीडीपी अंश वर्ष 1960 में 50 प्रतिशत से अधिक रहा? इस संबंध में उनके वर्तमान स्तर (2015 में) क्या हैं?

....

....

....

....

....

2) कृषि-जीडीपी में वर्ष 1960 में अन्य सभी से न्यूनतम अंश किसका रहा? इसका अंश वर्ष 2015 में क्या रहा? वे दो अन्य देश कौन-से हैं जिन्होंने यह स्तर वर्ष 2015 में प्राप्त कर लिया?

....

....

....

....

....

3) सभी सात एशियाई देशों के बीच कोरिया किस दृष्टि से अनुपम रहा है?

....

....

....

....

....

....

4) उद्योग-जीडीपी की दृष्टि से चीन के विषय में क्या उल्लेखनीय है?

....

....

....

....

....

5) अपने उद्योग-जीडीपी के लिहाज से भारत और पाकिस्तान क्यों बहिर्वर्ती हैं?

....

....

....

....

6) वर्ष 1960–2015 की अवधि में वे दो देश कौन.से रहे जिन्होंने सेवा-जीडीपी में उच्चतम परिवर्तन दर्ज कराया?

....

....

....

....

....

7) अपने सेवा-जीडीपी के लिहाज से थाईलैंड किस प्रकार अद्वितीय रहा है?

....

....

....

....

....

8) अन्य अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में भारतीय सेवा क्षेत्र के विषय में क्या उल्लेखनीय है?

....

....

....

....

....

11.5 संरचनात्मक परिवर्तनों का तुलनात्मक वर्णन : भारत बनाम विकसित एवं ब्रिक्स अर्थव्यवस्थाएँ

अर्थव्यवस्थाओं में संरचनात्मक परिवर्तन परोक्ष रूप से समग्र आर्थिक स्तर पर अनुभूत संवृद्धि दरों से आकलित किए जाते हैं। लब्ध वृद्धि दरें और परिणामी संरचनात्मक परिवर्तन समग्र नीति एवं संस्थानिक अंतर्दृष्टियों का प्रतिबिंब होते हैं। इस दृष्टिकोण से, हालाँकि प्रत्यक्ष रूप से नहीं, समस्त आर्थिक संवृद्धि दरों के तुलनात्मक वर्णन पर दृष्टिपात करना उपयोगी रहेगा। विकसित एवं विकासशील अथवा उदीप्यमान अर्थव्यवस्थाओं वाले मिले-जुले देशों के इस परिदृश्य का तुलनात्मक वर्णन तालिका 11.3 में प्रस्तुत किया गया है। उसमें दिए गए आँकड़ों से सामने आने वाले प्रमुख अभिलक्षण निम्नवत् हैं–

तालिका 11.3 : विकसित एवं ब्रिक्स अर्थव्यवस्थाओं हेतु तुलनात्मक संवृद्धि वर्णन (%) : 2010 से 2016

वर्ष	विश्व	यूएसए	यूरो. ज़ोन	ज़र्मनी	जापान	ब्राज़ील	रूस	भारत	चीन	दक्षिण अफ्रीका
2010	5.2	3.0	1.8	3.6	4.4	7.5	4.5	9.9	10.4	5.4
2011	3.8	1.8	1.5	3.0	–0.9	3.9	4.3	7.4	9.2	4.4

2012	2.4	2.2	–0.9	0.5	1.5	1.9	3.5	5.6	7.8	3.8
2013	2.6	1.7	–0.3	0.5	2.0	3.0	1.3	6.4	7.8	4.8
2014	2.8	2.3	1.2	1.6	0.4	0.5	0.7	7.5	7.3	4.6
2015	2.7	2.6	1.5	1.7	1.2	–3.8	–2.8	8.0	6.9	3.3
2016	2.4	1.6	1.8	1.9	0.9	–3.6	–0.2	7.1	6.7	1.2

स्रोत : विश्व बैंक डेटाबेस

- विश्व आर्थिक संवृद्धि दर वर्ष 2010 से 2016 की अल्पावधि में आधी हो चुकी है अर्थात् वर्ष 2010 में 5.2 प्रतिशत से वर्ष 2016 में (2.4 तालिका 11.3)। विशेष रूप से, अमेरिकी अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर भी वर्ष 2010 में 3 प्रतिशत से खिसककर वर्ष 2016 में 1.6 प्रतिशत पर आ गई। इसी प्रकार का ह्रासोन्मुख वृद्धि प्रवाह जर्मनी (वर्ष 2010 में 3.6 प्रतिशत से वर्ष 2016 में 1.9 प्रतिशत), जापान (वर्ष 2010 में 4.4 प्रतिशत से वर्ष 2016 में 0.9) तथा दक्षिण अफ्रीका (वर्ष 2010 में 5.4 प्रतिशत से वर्ष 2016 में 1.2 प्रतिशत) में देखा गया।

- यूरो-ज़ोन, जापान, ब्राज़ील और रूस ने वर्ष 2010–2016 की अवधि में किसी न किसी वर्ष ऋणात्मक वृद्धि दरों का अनुभव किया। विशेषकर, ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था में वर्ष 2010 में 7.5 प्रतिशत की ऊँचाई से वर्ष 2016 में –3.6 प्रतिशत की गहराई तक तथा रूस की अर्थव्यवस्था में वर्ष 2010 में 4.5 प्रतिशत वृद्धि से वर्ष 2016 में –0.2 प्रतिशत गिरावट तक अवपात देखा गया।

- भारत और चीन दो ऐसे देश हैं जो इस संबंध में अनूठे हैं। इन दोनों ही देशों ने, वैश्विक प्रवाह के साथ संगति में, अपनी अर्थव्यवस्था में अवपाती संवृद्धि निष्पादन का अनुभव किया, और वर्ष 2010 में एक उच्च संवृद्धि दर से ये वर्ष 2016 में एक निम्न वृद्धि दर पर आ गिरे। जहाँ चीन की संवृद्धि दर वर्ष 2010 में 10.4 प्रतिशत से लुढ़ककर वर्ष 2016 में 6.7 प्रतिशत पर आ गई, वहीं भारत की संवृद्धि दर वर्ष 2010 में 9.9 प्रतिशत से खिसककर वर्ष 2016 में 7.1 प्रतिशत पर आ गई।

अनेक अधोमुखी आशंकाएं आज भी क्षितिज पर दृष्टिगोचर होती हैं। इनमें शामिल हैं– (i) विश्व अर्थव्यवस्था की सतत् मंदता; (ii) संभव पूँजी बहिर्वाह जो कि अमेरिका में ब्याज़ दर में हालिया वृद्धि के कारण हुआ है; (iii) वैश्विक तेल कीमतों में एक संभव वैपरीत्य; (iv) अपर्याप्त मानसूनी वर्षा; तथा (v) वित्त बाज़ार की दुर्बलताएँ। जैसा कि ऊपर देखा गया, कुछ अर्थव्यवस्थाओं में मंदन के अलावा, अनेक अर्थव्यवस्थाओं में चिंता की एक बढ़ती प्रवृत्ति रही है – वर्धमान ऋण-जीडीपी (DTG) अनुपात। उदाहरण के लिए, चीन ने 250 प्रतिशत का एक उच्च DTG अनुपात हासिल किया। इसी प्रकार, दो साख-निर्धारण अभिकरणों (rating agencies) के अनुसार, ब्राज़ील का DTG एक कबाड़ स्थिति पर जा गिरा है।

11.6 सार-संक्षेप

विकास प्रस्थिति के दौरान संरचनात्मक परिवर्तन सिद्धांततः कृषि से उद्योग और फिर उद्योग से सेवा क्षेत्रों की ओर परिणत होने की ही अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार का परिवर्तन बढ़ती आमदनी और बेहतर जीवन-दशाओं का दर्पण होता है। अनेक विकसित अर्थव्यवस्थाओं ने अपने विकास के दौरान इस प्रकार के संक्रमण का अनुभव

किया है। तथापि, भारत जैसी कुछ उदीप्यमान अर्थव्यवस्थाएँ सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र के एक उच्चतर अंश पर पहुँच गई हैं, जहाँ उनका उद्योग– जीडीपी अंश 25 से 30 प्रतिशत के निम्न स्तर पर ही रहा है। यह चीन, इंडोनेशिया, थाईलैंड, मलेशिया और कोरिया जैसी कुछ अन्य अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न है, जहाँ सभी 40 से 50 प्रतिशत का एक दृढ़तर औद्योगिक आधार रखते हैं। औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार की इस प्रकार की प्लुति अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद में सीधे सेवा क्षेत्र प्रभावी अंश पर पहुँचने हेतु एक कारण रहा है– 'अंतर्राष्ट्रीय व्यापार' का प्रभाव। इसमें संचार प्रौद्योगिकियों में विकास एवं देश-विदेश में लोगों के आवागमन से भी मदद मिलती है। अनेक उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में समग्र आर्थिक संवृद्धि दरों में ह्रासोन्मुखी प्रवाह का अनुभव किया गया; जैसे अमेरिका, जर्मनी और दक्षिण अफ्रीका, जिन्होंने वर्ष 2010 में अपनी उपलब्धियों के मुकाबले वर्ष 2016 जैसे अधिक हाल के वर्षों में अपनी संवृद्धि दरें आधी ही दर्ज कराई हैं। भारत और चीन दो ऐसे देश हैं जो उक्त ह्रासोन्मुखी प्रवाह में अपवाद स्वरूप खड़े हैं। भारत जैसे देशों में सेवा क्षेत्र के प्रभुत्व का एक और भी उल्लेखनीय अभिलक्षण है– उसका अपेक्षाकृत निम्न रोज़गार समावेशन सामर्थ्य।

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Kuznets, S (1966). *Modern Economic Growth: Rates, Structure and Spread*, Oxford and IBH Publishing Co.

2) Kuznets, S. (1971). *Economic Growth of Nations: Total Output and Production Structure*, Cambridge: Harvard University Press.

3) Papola, T. S. (2008). Emerging Pattern of Indian Economy, *The Indian Economic Journal*. Vol.54, No.1, April –June.

4) Papola, T. S. (2005). 'Structural Changes in the Indian Economy: Some Implications of the Emerging Pattern', *Artha Beekshan*, Vol. 13, No. 4,

5) Rakshit, Mihir (2007). Services Led Growth: The Indian Experience, Artha Beekshan , Vol.15, No. 4.

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) ऐसा इस कारण है कि सेवाओं में प्राथमिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों की वस्तुओं की अपेक्षा कहीं अधिक माँग की आय में लोच नज़र आती है।

2) यह पदबंध इस अर्थ में लिया जाता है कि औद्योगिक विकास के एक निश्चित चरण के पश्चात् रोज़गार के अंश में वृद्धि औद्योगिक क्षेत्र के रोज़गार अंश की लागत पर भी ही होगी; [उद्योग के अंश में गिरावट की तुलना सेवा क्षेत्र के रोज़गार अंश में सदृश वृद्धि से की जाती है।

3) सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश वर्ष 1951 में 60 प्रतिशत की ऊँचाई से औंधे मुँह गिरकर वर्ष 2010 में मात्र 17 प्रतिशत रह गया। तथापि, जबकि सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग की आय का अंश वर्ष 1960 से 2002 तक 16 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक बढ़ा, परंतु उसके बाद निष्क्रिय प्राय हो गया (वर्ष 2015 तक मात्र 25.8 तक पहुँच कर)। सेवा क्षेत्र के लिए वृद्धि महत्त्वपूर्ण रही– वर्ष 1960 में 21 प्रतिशत से वर्ष 2015 में 57 प्रतिशत तक।

4) ये हैं– (i) जीडीपी में, विकसित देशों में कृषि से (65 से 72 प्रतिशत के बीच) प्रमुख योगदान रहा, जिसके बाद आते हैं– उद्योग (12 से 15 प्रतिशत) और सेवाएँ (16 से 20 प्रतिशत)। अन्य सामान्य अभिलक्षणों के लिए भाग 11.3 देखें और उत्तर दें।

5) परिवर्तन की गति वर्ष 1991 से द्रुत हुई है। कृषि अंश वर्ष 1991 तक 60 प्रतिशत से घटकर 35 प्रतिशत पर आ चुका था (यथा, 25 प्रतिशत की गिरावट), परंतु वर्ष 2017 तक यह और गिरकर मात्र 17 प्रतिशत रह गया (यथा, वर्ष 1991 से 18 प्रतिशत और गिरकर)। उद्योग का अंश जो वर्ष 2002 से 2015 की अवधि में 25 प्रतिशत से 25.8 प्रतिशत तक मात्र 0.8 प्रतिशत ही बढ़ा था, वर्ष 2017 में 29 प्रतिशत पहुँचकर अपने अंश में अचानक सुधार दर्शाने लगा। वर्ष 1951–2017 की अवधि में सेवा क्षेत्र का अंश 28 प्रतिशत से बढ़कर 54 प्रतिशत हुआ है।

बोध प्रश्न 2

1) इंडोनेशिया और भारत। क्रमशः 14 प्रतिशत और 17 प्रतिशत।

2) चीन (30 प्रतिशत); 2015 में 9 प्रतिशत। कोरिया और मलेशिया अन्य दो देश हैं (क्रमशः 3 व 9 प्रतिशत)। वस्तुतः, मलेशिया और कोरिया 10 प्रतिशत अंश से भी कम का यह स्तर वर्ष 2002 में ही हासिल कर चुके थे। परंतु अपने कृषि. जीडीपी में 2015 में मलेशिया का अंश 12 प्रतिशत तक बढ़ गया।

3) कोरिया का उदाहरण अद्वितीय है जिसने साहित्य द्वारा इंगित सैद्धांतिक अंतर्दृष्टियों का नितांत अक्षरशः पालन किया। न केवल उसका कृषि-जीडीपी निम्नतम और 5 प्रतिशत के स्तर से नीचे है, जो वह वर्ष 2001 में हासिल कर चुका था, उसका उद्योग-जीडीपी वर्ष 1960 में 20 प्रतिशत से दोगुना होकर वर्ष 2002 में 41 प्रतिशत हो गया। एक ऐसा स्तर है जो उसने 2015 तक कायम रखा है। इसके अलावा, उसका वर्धमान सेवा-जीडीपी सुसंगत रहा है (यथा, बिना किसी ह्रास अथवा निष्क्रियता के, जैसा कि अन्य देशों के मामले में देखा गया)।

4) प्रथम, यही एकमात्र ऐसा देश है जो वर्ष 1960 में भी उच्चतम और 50 प्रतिशत के लगभग (49 प्रतिशत) अंश दर्शाता था। दूसरे, जबकि सभी देशों में उद्योग. जीडीपी में वृद्धि दिखाई दी है, चीन एकमात्र ऐसा देश है जहाँ सीधी गिरावट देखी गई है (वर्ष 2002.15 के बीच 51 से 40 प्रतिशत)।

5) यही निम्नतम उद्योग-जीडीपी वाले दो देश हैं। दूसरे, वर्ष 2002–15 की अवधि मे इस लिहाज से निष्क्रियता प्रायः देखी गई है।

6) चीन और भारत (क्रमशः 31 और 28 प्रतिशत)।

7) वर्ष 1960 में ही यह उच्चतम सेवा-जीडीपी दर्शाता था (यथा, 40 प्रतिशत से भी अधिक)। वर्ष 1960.2015 की दीर्घ समयावधि में इसका सेवा-जीडीपी मात्र 2 प्रतिशत तक ही बढ़ा।

8) सेवा-जीडीपी का बदलाव कहीं अधिक है। रोज़गार में अनुरूप बदलाव अपेक्षाकृत कम है।

इकाई 12 भारत का सामाजिक एवं आर्थिक विकास : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य*

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 विषय प्रवेश

12.2 अंतर्राष्ट्रीय तुलना हेतु प्राधार

12.3 आर्थिक आयाम

12.3.1 प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद

12.3.2 संरचनात्मक आयाम

12.4 विकास में अभाव

12.4.1 निर्धनता

12.4.2 बेरोज़गारी

12.4.3 असमानता

12.5 विकास के सामाजिक आयाम

12.5.1 शैक्षिक स्थिति

12.5.2 स्वास्थ्य स्थिति

12.6 विकास के संश्लिष्ट सूचकांक

12.6.1 मानव विकास सूचकांक

12.6.2 सामाजिक प्रगति सूचकांक

12.6.3 विश्व सुख-सम्पन्नता सूचकांक

12.7 सारांश

12.8 सार-संक्षेप

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि:

- अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक वर्णन हेतु एक आधार स्वरूप 'प्रति व्यक्ति आय' का प्रयोग करने की सीमाएँ समझ सकें;
- अपने सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु देशों की कोई तुलनात्मक रूपरेखा तैयार करने के लिए कोई प्राधार निर्दिष्ट कर सकें;
- वर्ष 1961–2018 के एक लंबे समय-प्राधार में अन्य देशों के साथ भारत के संवृद्धि वर्णन के 'आर्थिक आयाम' की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें;

* प्रो. डी.एन. रेड्डी, उस्मानिया विश्वविद्यालय

- वर्ष 1961-2018 की अवधि में श्रीलंका और चीन की आर्थिक संवृद्धि के साथ भारत की आर्थिक संवृद्धि की तुलना में मुख्य अंतर उजागर कर सकें;
- अन्य अर्थव्यवस्थाओं के साथ एक तुलनात्मक वर्णन में भारत में 'विकास की कमियों' का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर सकें;
- अन्य अर्थव्यवस्थाओं के साथ भारत में सामाजिक-क्षेत्र विकास की तुलना कर सकें; तथा
- 'विकास के विशद् सूचकांकों' पर टिप्पणी लिख सकें।

12.1 विषय प्रवेश

द्वितीय विश्व युद्ध के अंत और भारत समेत, अंधिकांश नव-स्वतंत्र देशों में उपनिवेशवाद की क्रमिक समाप्ति से ही 'विकास' को लोगों के लिए बेहतर जीवन-यापन दशाएँ उत्पन्न करने की दिशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। विकास को आरंभतः सकल घरेलू उत्पाद और प्रति व्यक्ति जीडीपी के उच्चतर स्तर हासिल करने के रूप में समझा जाता था। इसके लिए, विकास हासिल करने के लक्ष्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि दरों के पदों में तय किए जाते थे। देशों के विकास-स्तर प्रति व्यक्ति आय-स्तर के पदों में मापे जाते थे। प्रति व्यक्ति आय में विकास मापने से इन बातों में मदद मिली– (i) देशों को विकसित और विकासशील के रूप में अलग-अलग मानना, तथा (ii) अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक जैसी बहुपक्षीय संस्थाओं द्वारा विकासशील देशों के लिए आवश्यक वित्तीय मदद को समर्थन दिया जाना।

जबकि देशों के विकास का मापन प्रति व्यक्ति आय के पदों में किया जाना जारी है, लोगों के जीवन यापन की दशा दर्शाने के लिए केवल प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर ही विचार किये जाने की उपयुक्तता पर सवाल उठाए गए हैं। यहाँ यह तर्क सही ही लगता है कि प्रति व्यक्ति आय एक औसत मात्र ही होती है और वह आय का वितरण नहीं दर्शाती। यह आलोचना उन देशों के मामलों में सुस्पष्ट दिखाई देती है जो उच्च प्रति व्यक्ति आय का लाभ तो पाते हैं परंतु क्षमताओं एवं स्वतंत्रता के लिहाज से विकास की मूलभूत उपलब्धियों का अभाव भी दर्शाते हैं। अतः, प्रति व्यक्ति आय बेहतर जीवन यापन के लिए एक साधन मात्र तो है मगर विकास के लिए पर्याप्त नहीं। विकास के लिए, इसे जनसंख्या विस्तार एवं लिंग-समानता स्तर के साथ रखकर ही देखा जाना चाहिए। इस तर्क ने एक बहुआयामी दृष्टिकोण से विकास की अवधारणा को ही पलट दिया है। दूसरे शब्दों में, विकास मापदंड में सामाजिक-आर्थिक महत्त्व के अनेक आयामों पर विचार किया जाना चाहिए। संश्लिष्ट रूप से परिभाषित एवं संरचित इन मापदण्डों को ही फिर अंतर्देशीय तुलनाएँ करने के लिए आधार-स्वरूप लिया जाना चाहिए। इस इकाई के अगले ही भाग में, हम सामाजिक एवं आर्थिक विकास के स्तरों का मूल्यांकन करने के लिए अनेक देशों की तुलना हेतु एक व्यापक प्राधार पर चर्चा करेंगे। इस प्राधार के आधार पर ही आगे के भाग अन्य चुनिंदा अर्थव्यवस्थाओं के विकास का भारत के विकास से तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत करेंगे। अगले भाग में, उस आधार की रूपरेखा भी प्रस्तुत है जिस पर इन अर्थव्यवस्थाओं का प्रतिदर्श चुना जाता है।

12.2 अंतर्राष्ट्रीय तुलना हेतु प्राधार

वे कारक, जिन पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, इस प्रकार है – (i) आधारभूत आर्थिक आयाम, यथा जनसंख्या सकल घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय, जीडीपी में संवृद्धि, कुल रोज़गार एवं जीडीपी में कृषि का अंशदान, (ii) निर्धनता, भूख, असमानता एवं बेरोज़गारी के स्तरों की दृष्टि से आर्थिक विकास की कमियाँ; (iii) शिक्षा, स्वास्थ्य एवं लिंग विकास स्थिति जैसे विकास संबंधी सामाजिक आयामों में प्रगति; तथा उपर्युक्त तीनों के आधार पर (iv) मानव विकास जैसे सामाजिक प्रगति का कोई एक अथवा अनेक विशद सूचकांक। इनमें से प्रत्येक में, भारत की स्थिति का अन्य चुनिंदा अर्थव्यवस्थाओं की स्थिति के साथ एक तुलनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करने हेतु, आगामी भागों में, हम इसी क्रम में, चर्चा आगे बढ़ाएँगे। तुलनार्थ देशों को चुनने के लिए, हम एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका और यूरोप तक सीमित पाँच महाद्वीपों में से प्रत्येक से एक देश लेते हैं। विशेष रूप से, हम विकासशील और विकसित देशों में भेद के पचड़े में न पड़ते हुए, निम्नलिखित देशों को शामिल करते हैं– भारत, बांगलादेश, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका (दक्षिण एशिया से); पूर्व एशिया से चीन; लैटिन अमेरिका से ब्राज़ील; दक्षिण अफ्रीका (अफ्रीका से); संयुक्त राज्य अमेरिका (उत्तरी अमेरिका से) तथा यूनाइटेड किंग्डम (यूरोप से)। हम यहाँ अपना तुलनात्मक वर्णन इन 10 देशों तक ही सीमित रखेंगे। ये 10 देश मिलकर विश्व जनसंख्या के आधे से अधिक (51 प्रतिशत) का लेखा-जोखा करते हैं। विशेषकर, चीन और भारत में ही मिलकर विश्व जनसंख्या का एक-तिहाई (36.6 प्रतिशत) अंश बसा है। अतः, इन दो देशों में जितना भी विकास होता हो वह वैश्विक मानव प्रगति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

अपने भेदपूर्ण ऋणदान उद्देश्यों से विश्व बैंक उक्त देशों को चार श्रेणियों में रखता है, यथा – (i) प्रति व्यक्ति $1025 (2018) से कम आय वाले निम्न आय देश, (ii) प्रति व्यक्ति $1026 – $3995 आय वाले निम्न मध्यम-आय देश, (iii) प्रति व्यक्ति $3996–$12375 आय वाले उच्च मध्यम आय देश, तथा (iv) प्रति व्यक्ति $12376 या उससे अधिक आय वाले उच्च आय। इस वर्गीकरण के अनुसार, हमारे प्रतिदर्श में लिए गए 10 देशों में से 4 दक्षिण-एशियाई देश, श्रीलंका को छोड़कर (जो कि एक उच्च मध्यम-आय देशकी पात्रता रखता है), निम्न मध्यम-आय समूह में ही आते हैं। श्रीलंका के साथ-साथ चीन, दक्षिण अफ्रीका और ब्राज़ील भी उच्च मध्यम-आय समूह में रखे गए हैं। अमेरिका और इंग्लैंड सदा उच्च-आय समूह में ही रहे हैं। आप देखेंगे कि, कालांतर में, इन चार समूहों के भीतर देशों की स्थिति बदलती रहती है और इस कारण हमें 'विकास सूचक' विषयक विश्व बैंक के प्रकाशित आँकड़ों से स्वयं को अद्यतन रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए, श्रीलंका उच्च मध्यम-आय समूह में एक नव-प्रवेशक है जबकि नेपाल हाल ही में निम्न-आय से खिसककर निम्न मध्यम-आय समूह में चला गया है।

12.3 आर्थिक आयाम

वर्ष 1961–2011 की एक लंबी अवधि में, चीन को छोड़कर, शेष सभी एशियाई देश अपेक्षाकृत निम्न वृद्धि दर परिदृश्य में दुःख के दिन काटते नज़र आते हैं (जिन्हें जीडीपी में 4 प्रतिशत औसत वार्षिक संवृद्धि से नीचे दर्शाया जाता है) तालिका 12.1)।

इनकी संवृद्धि दरें नेपाल के 1.4 प्रतिशत की निचाई से श्रीलंका कर 3.3 प्रतिशत की ऊँचाई तक दिखाई पड़ती है।

तालिका 12.1 : विकास का आर्थिक आयाम

देश	जनसंख्या 2018 (दस लाख)	प्रतिव्यक्ति जीडीपी 2018 (वर्तमान US $)	जीडीपी की औसत वार्षिक वृद्धि दर % 1961-2011	वृद्धि दर 2018	जीडीपी में कृषि का अंशदान (%) 2018	कुल रोज़गार में कृषि का अंशदान 2018 (%)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
भारत	1352	2010	3.1	6.8	14.6	43
बांगलादेश	161	1698	1.37	7.9	13.1	40
नेपाल	28	1033	1.4	6.7	25.3	70
पाकिस्तान	212	1482	2.6	5.8	22.9	41
श्रीलंका	21	4102	3.3	3.2	7.9	26
चीन	1392	9770	6.8	6.6	7.2	27
दक्षिण अफ्रीका	57	6374	—	0.8	2.2	5
ब्राज़ील	209	8920	—	1.1	4.4	9
अमेरिका	327	62795	—	2.9	0.9	1
इंग्लैंड	66	42944	—	1.4	0.6	1

स्रोत : 1) स्तंभ 4 (1961-2011 की वृद्धि दर) को छोड़कर, विश्व बैंक विकास संसूचक।
2) स्तंभ 4 के लिए : द्रीस व सेन (2013)।

चीन एक अपवाद ही रहा, जहाँ 50 वर्ष की एक लंबी अवधि में 6.8 प्रतिशत की उच्चतम औसत वृद्धि दर दिखाई दी। परंतु हाल के वर्षों में, वर्ष 2018 में, श्रीलंका को छोड़कर, ये सभी देश उच्च-वृद्धि पथ पर पहुँच गए हैं (जिसे '5 प्रतिशत से ऊपर' के रूप में परिभाषित किया जाता है)। विशिष्ट रूप से, विकसित देशों को 0-2 प्रतिशत की शृंखला में अपनी निम्न वृद्धि दर के लिए उल्लेखनीय जाना जाता है। ऐसा इसलिए है कि विकसित देशों के पास बेहतर संस्थापित (यथा, औपचारिक) प्राधारिक आधार होता है। इससे एक ऐसी संतुलन प्राय स्थिति में रहकर उत्पादन एवं वितरण संबंधी अनेक कारकों को संबल मिलता है जहाँ इससे आगे वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR) विकासशील देशों में इस अनुपात (ICOR) से अपेक्षाकृत कम ही रहेगा। इसके अलावा, विकसित देशों के पास अपनी जनसंख्या एवं श्रमशक्ति की अपेक्षा वृहत्तर जीडीपी मान होते हैं। ये सभी कारक विकासशील देशों के उदाहरण में उल्टे ही पाए जाते हैं, जहाँ प्रौद्योगिकीय अनुप्रेरण उच्चतर वर्धमान पूँजी-उत्पादन अनुपात (ICOR) लाभ देने वाला होता है।

12.3.1 प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद

प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के पदों में, चार दक्षिण-एशियाई देशों के बीच, भारत की स्थिति द्वितीय (वर्ष 2018 में $2010) है। श्रीलंका की प्रति व्यक्ति जीडीपी भारत की प्रति व्यक्ति जीडीपी ($4102) से लगभग दोगुनी है। परंतु चीन की प्रति व्यक्ति जीडीपी उच्चतम में शामिल है – यह श्रीलंका की प्रति व्यक्ति जीडीपी के दोगुने से भी अधिक ($9770) है। हमारे प्रतिदर्श में दो उच्च-आय देशों की प्रति व्यक्ति जीडीपी चीन से भी कई गुना अधिक है (इंग्लैंड की 4 गुना अधिक और अमेरिका की 6 गुना अधिक)। दक्षिण अफ्रीका और ब्राज़ील के ये आँकड़े (PCI) चीन से तो कम मगर श्रीलंका से उच्च मान दर्शाते हैं (क्रमशः $6374 व $8920)।

12.3.2 संरचनात्मक आयाम

आय के उच्चतर स्तरों की ओर आरोहण में प्रमुख रूप से कृषिक अवस्था (जिसे कृषि में लगे 40 प्रतिशत से भी अधिक कार्यबल के रूप में परिभाषित किया जाता है, से प्रमुख रूप से विनिर्माणन् एवं सेवा क्षेत्र की अवस्था में विवर्तन शामिल होता है। इस मानदण्ड से, चार देशों, यथा– भारत, बांगलादेश, नेपाल और पाकिस्तार में कृषि में लगा कार्यबल 40 से 70 प्रतिशत के बीच है (बांगलादेश 40 प्रतिशत और नेपाल 70 प्रतिशत)। आय और रोज़गार के लिए कृषि पर अपेक्षाकृत अधिक निर्भरता विकास का निम्न स्तर दर्शाती है। ऐसा इसलिए है कि कृषि पर कार्यबल के वृहत्तर भाग की निर्भरता (अपनी आय/जीडीपी में निम्न अंशदान के साथ) के कारण प्रति व्यक्ति उत्पादकता (जिसे आय एवं कार्यबल के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है) समस्त अर्थव्यवस्था की प्रति व्यक्ति आय (PCI) को निम्न रखती है। उक्त चारों देश अपना सकल घरेलू उत्पाद कृषि के उच्च अंशदान के साथ दर्शाते हैं (यथा 10-25 प्रतिशत की श्रृंखला में बांगलादेश में 13 प्रतिशत से लेकर नेपाल में 25 प्रतिशत तक)। कृषि से उद्योग की ओर प्राधारिक विवर्तन के साथ, विकसित देश न सिर्फ कृषि में अपने कार्यबल का निम्नतम अंश दर्शाने लगते हैं बल्कि उनकी जीडीपी में भी इस क्षेत्र का योगदान निम्नतम होता जाता है। इस लिहाज से अमेरिका और इंग्लैंड दोनों ही उल्लेखनीय हैं, जहाँ कृषि पर निर्भर उनका कार्यबल मात्र 1 प्रतिशत है और जीडीपी में अंशदान 1 प्रतिशत से भी कम है।

अंततोगत्वा, वर्ष 1961-2018 की लंबी अवधि में श्रीलंका और चीन (वे दो पड़ोसी जिन्होंने प्रभावशाली ढंग से प्रगति की है – एक के भारत जितनी ही बड़ी जनसंख्या के साथ और दूसरे ने अपनी छोटी-सी जनसंख्या के साथ, वर्ष 2018 में केवल 2.1 करोड़) के साथ भारत के आर्थिक-वृद्धि विवरण में निम्नलिखित तीन प्रमुख अंतर उजागर करना अभीष्ट होगा–

- भारत और श्रीलंका दोनों ने 3 प्रतिशत औसत वार्षिक से किंचित् ऊपर लगभग बराबर जीडीपी संवृद्धि हासिल की है परंतु जनसंख्या आयाम में वृहद् अंतर के कारण, श्रीलंका की प्रति व्यक्ति जीडीपी भारत की प्रति व्यक्ति जीडीपी से दोगुनी है।

- लगभग 60 वर्ष की समयावधि में, हालाँकि चीन की संवृद्धि दर भारत की संवृद्धि दर से दोगुनी रही है। वर्ष 2018 में, दोनों देशों की संवृद्धि दर लगभग बराबर रही। भारत की 6.8 प्रतिशत और चीन की 6.6 प्रतिशत)। इससे यह तथ्य

उजागर होता है कि हाल के वर्षों में बेशक चीन की आर्थिक संवृद्धि में बड़ा उछाल आया, भारत भी उसके बराबर जा खड़ा हुआ है।

- चीन और श्रीलंका में कृषि का रोज़गार का अंश तुलनात्मक रूप से कम भी रहा और लगभग बराबर भी (वर्ष 2018 में क्रमशः 27 व 26 प्रतिशत)। कृषिगत रोज़गार में भारत में तुलनात्मक अंश आज भी काफ़ी ऊँचा है (वर्ष 2018 में 43 प्रतिशत)।

बोध प्रश्न 1 दिये गये स्थान मे अपना उत्तर लगभग 50.100 षब्दों में लिखें।

1) प्रतिव्यक्ति आय (PCI) को सीमाकारी क्यों माना जाता है, विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय तुलना की दृष्टि से? फिर भी, इसे आज भी अंतर्राष्ट्रीय तुलना में कैसे प्रयोग किया जाता है?

....

....

....

....

....

2) भारत के साथ अन्य अर्थव्यवस्थाओं का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत करने के लिए एक विश्लेषणात्मक प्राधार निर्दिष्ट करें।

....

....

....

....

....

3) विकास के 'आर्थिक आयाम' के विश्लेषणार्थ कौन-से चरों पर विचार किया जाता है? अन्य देशों के साथ किसी तुलनात्मक वर्णन में इस लिहाज से भारत कहाँ खड़ा है?

....

....

....

....

....

4) किस दृष्टि से भारत, श्रीलंका और चीन के बीच अंतर स्पष्ट दिखाई पड़ता है?

....

....

....

....

....

....

5) अपनी विकास उपलब्धि के लिए बांग्लादेश और नेपाल क्यों उल्लेखनीय हैं?

....

....

....

....

....

6) 'विकास के प्राधारिक आयाम' से आप क्या समझते हैं? इस संबंध में श्रीलंका क्यों उल्लेखनीय है?

....

....

....

....

....

12.4 विकास में अभाव

द्वितीय विश्व युद्धोपरांत अवधि में, अनेक विकासशील देशों ने नियोजित आर्थिक संवृद्धि की संकेंद्रित रणनीति शुरू की। इससे कुछ देशों में अपेक्षाकृत उच्चतर वृद्धि दरें देखने में आईं, परंतु भारत में 1990 के उत्तरार्ध तक भी ऐसा नहीं हुआ। 1970 के दशक तक यह समझा जाता था कि इनमें से अनेक देशों में संवृद्धि की उच्च दरों से अधिकांश लोगों की जीवन-दशा में कोई सुधार नहीं आया। दूसरे शब्दों में, अपेक्षाकृत उच्चतर संवृद्धि दरों के बावजूद, न सिर्फ गरीबी और बेरोज़गारी के उच्च स्तर बरकरार रहे, बल्कि आय असमानताएँ भी बढ़ी। ''संवृद्धि की सनक'' विषयक आलोचना बढ़ती जा रही थी, जहाँ जनसंख्या के निचले तबकों तक उसकी पहुँच संबंधी मुद्दे पर ध्यान दिए बिना ही जीडीपी वृद्धि पर ध्यान केंद्रित किया जाता था। इससे गरीबी, बेरोज़गारी और असमानता की दृष्टि से 'विकास में कमियों' पर ध्यान आकृष्ट हुआ। इस माँग के चलते, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों और रोज़गार-सृजन नीतियों विषयक एक प्रत्यक्ष प्रयास पर एकाग्रता के साथ ध्यान दिया गया।

12.4.1 निर्धनता

निर्धनता अर्थात् गरीबी मापने के लिए, हर देश ने प्रति व्यक्ति कैलोरी उपभोग और ईंधन, वस्त्र एवं परिवहन जैसी कुछ अनिवार्य वस्तुओं के उपभोग संबंधी मापदण्ड पर आधारित एक गरीबी-रेखा विकसित की हुई है। इसके अलावा, अंतर-देशीय तुलना हेतु कोई सामान्य आधार तलाशने के लिए, 'क्रय-शक्ति क्षमता (PPP) पर प्रति व्यक्ति उपभोग' संबंधी संकल्पना, विकसित हुई है। कीमतों में वृद्धि के कारण इस क्रय शक्ति तुल्यता (PPP) का मापदंड बदलता रहता है, जहाँ इसका वर्तमान स्तर $1.90 प्रतिदिन

पर निर्धारित है। यद्यपि कालांतर में निर्धनता स्तरों में गिरावट देखी गई है, आज भी, दक्षिण-एशियाई देशों (सिवाय श्रीलंका के) में लगभग एक-चौथाई जनसंख्या [20 प्रतिशत स्तर से ऊपर ही] अपना गरीबी अनुपात दर्शाती है (तालिका 12.2)। चूँकि बड़ी आबादियों की वजह से निर्धनता स्तर से नीचे रहने वाले लोगों की बड़ी संख्या सामने आती है, भारत में कम से कम 28 करोड़ लोग (वर्ष 2011 में) निर्धनता स्तर से नीचे ही गुज़र-बसर करते थे।

तालिका 12.2 : आर्थिक विकास में अभाव

देश	गरीबी अनुपात (PPP $1.9 प्रतिदिन से नीचे %)	बेरोज़गारी दर (श्रम बल का प्रतिशत-2018)	असमानता (गिनी सूचकांक) 2018
(1)	(2)	(3)	(4)
भारत	21.9 (2011)	6.5*	40.8
बांग्लादेश	24.8 (2016)	4.3	46.4
नेपाल	25.2 (2010)	1.2	32.8**
पाकिस्तान	24.3 (2015)	3.0	32.1
श्रीलंका	4.1 (2016)	4.3	48.9
चीन	3.1 (2017)	4.4	48.8
दक्षिण-अफ्रीका	55.5 (2014)	27.3	69.6
ब्राज़ील	उपलब्ध नहीं	12.2	52.5
अमेरिका	उपलब्ध नहीं	3.9	39.0
इंग्लैंड	उपलब्ध नहीं	3.8	32.0

*भारत की बेरोज़गारी– PLFS 2017-18, **विश्व बैंक डेटाबेस

स्रोत : 1) गरीबी दर एवं बेरोज़गारी के लिए : विश्व बैंक डेटाबेस।

2) असमानता के लिए : विश्व सुसमानता डेटाबेस (WID), विश्व आर्थिक विकास एवं अनुसंधान संस्थान (WIDER)।

ध्यान देने की बात है कि गरीबी का प्रतिव्यक्ति आय (PCI) से विलोम संबंध होता है, यथा– यह आय जितनी अधिक होगी उतना ही कम गरीबी का स्तर होगा। उदाहरण के लिए, PCI $9770 के साथ चीन 3.1 प्रतिशत का निम्नतम गरीबी अनुपात दर्शाता है, श्रीलंका $4102 PCI के साथ 4.1 प्रतिशत का निम्नतम गरीबी अनुपात दर्शाने वाला दूसरा देश है। विशिष्ट रूप से, 1000-2000 डॉलर की शृंखला में अपनी यह आय (PCI) दर्शाने वाले भारत, बांग्लादेश और पाकिस्तान भी अपनी आबादी का एक बट्टे पाँच भाग (20 प्रतिशत) निम्न गरीबी स्तर पर ही देखते हैं। दक्षिण-अफ्रीका एक अत्यांतिक उदाहरण है, जहाँ बेशक उसकी यह आय (PCI) $6374 से ऊँची है, उसका गरीबी अनुपात भी 56 प्रतिशत की ऊँचाई छूता है (वर्ष 2014 में)।

12.4.2 बेरोज़गारी

सभी देशों में व्याप्त बेरोज़गारी की व्याख्या ध्यानपूर्वक किए जाने की आवश्यकता है। ऐसा विकासशील देशों में अनौपचारिक क्षेत्र की बहुत अधिक विद्यमानता के कारण है

क्योंकि निर्धन वर्ग बेरोज़गार रहना बर्दाश्त ही नहीं कर सकता। गरीब आदमी कोई भी काम करने को तैयार हो जाता है– दिहाड़ी या पगार और काम के घंटे या दिन जो चाहे भी हों। तद्नुसार, वे बेरोज़गार नहीं कहे जा सकते, बेशक वे बहुत कम पारिश्रमिक पर प्रायः अल्प-रोज़गार प्राप्त होते हैं। अतएव, भारत जैसे अपेक्षाकृत अल्पविकसित देशों में, जहाँ लगभग 90 प्रतिशत रोज़गार अनौपचारिक है, बेरोज़गारी को प्रायः बहुत निम्न दर्शाया जाता है (वर्ष 2018 में 6.5 प्रतिशत, तालिका 12.2)। दक्षिण-अफ्रीका (27 प्रतिशत) और ब्राज़ील (12 प्रतिशत) में बेरोज़गारी की ऊँची दरें औपचारिक रोज़गार के ऊँचे अनुपात के कारण हैं, जहाँ अल्प-रोज़गार की गुंजाइश कम ही होती है, यथा– या तो आपको औपचारिक रोज़गार मिलता है अथवा आप बेरोज़गार रहते हैं। इसके विपरीत, सभी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में औपचारिक क्षेत्र में नौकरियों के अभाव के कारण अनौपचारिक क्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोज़गारी का बड़ा अनुपात और खुली बेरोज़गारी का ऊँचा अनुपात दोनों ही देखने में आते हैं।

12.4.3 असमानता

यद्यपि भारत समेत अनेक विकासशील देशों ने अपनी विकास रणनीति वितरण स्तर पर न्यायशील संवृद्धि पर ज़ोर देते हुए शुरू की, वर्ष-दर-वर्ष असमानता में इज़ाफा ही होता रहा है। यह विडंबनापूर्ण सत्य ही है कि जब इन देशों में संवृद्धि मंथर गति से हो रही थी, यहाँ असमानता बहुत कम थी। परंतु जब वे उच्च संवृद्धि प्रक्षेप-पथ पर नज़र आने लगे, असमानता भी बढ़ने लगी। असमानता की यह उच्च कोटि अशांतिकर मानी जाती है, इतनी अशांति कर कि अब इसे प्रमुख विकास चुनौती के रूप में देखा जाने लगा है। परंपरागत रूप से, आय वितरण में असमानता गिनी अनुपात के रूप में व्यक्त की जाती है (यथा, गिनी गुणांक को 100 से गुणा कर प्राप्त प्रतिशत के रूप में)। परंतु चूँकि विकासशील देशों में स्वयं आय विषयक आँकड़े ही प्राप्त करना कठिन होता है (पुनः, अनौपचारिक रोज़गार की बड़े पैमाने पर विद्यमानता के कारण), आय का आकलन परिवार उपभोग सर्वेक्षणों के आधार पर परोक्ष रूप से किया जाता है। उपभोग आँकड़ों पर आधारित असमानता अनुमान असमानता का अल्पाकलन ही दर्शाते हैं। बहरहाल, हाल ही में, विश्व असमानता डेटाबेस (WID) की पहल के कारण, सभी देशों के आय विषयक आँकड़े कुछ अनूठी विधियों के आधार पर तैयार किए जा रहे है, जो कि देशों के बीच आँकड़ों को तुलनीय बनाने के लिए अपनाई जाती हैं। उक्त डेटाबेस (WID) द्वारा प्रस्तुत असमानता विषयक आँकड़े (तालिका 12.2 दर्शाते हैं कि दक्षिण-एशियाई विकासशील देशों के बीच, असमानता पाकिस्तान में 32 प्रतिशत से लेकर चीन व श्रीलंका दोनों में 49 प्रतिशत तक व्याप्त है। इसके अलावा, आय बढ़ने के साथ ही, विकासशील देशों में असमानता तेज़ी से बढ़ती दिखाई देती है। यह दक्षिण-अफ्रीका के मामले में भी सत्य है, जहाँ उच्चतम गिनी सूचकांक 70 प्रतिशत नज़र आता है (कुछ मध्य-पूर्वी देशों के बाद विश्व में उच्चतम में एक)। एक अन्य उदाहरण श्रीलंका है जो अधिकांश विकास सूचकों में काफी बेहतर स्थित रखने के बावजूद, दक्षिण एशिया में 49 प्रतिशत (चीन के बराबर) का उच्चतम असमानता सूचकांक दर्शाता है। विकसित देशों के पक्ष में, यह अंक इंग्लैंड में 32 प्रतिशत और अमेरिका में 39 प्रतिशत के बीच है, जो कि नेपाल, पाकिस्तान और भारत की दक्षिण-एशियाई अर्थव्यवस्थाओं से तुलनीय स्तर पर हैं।

बोध प्रश्न 2 दिये गये स्थान मे अपना उत्तर लगभग 50.100 षब्दों में लिखें।

1) 'विकास में अभावों' से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

2) क्या यह सत्य है कि प्रतिव्यक्ति आय (PCI) में वृद्धि के साथ गरीबी घटने लगती है? क्या इस विलोम संबंध का कोई अपवाद है? उदाहरण दें।

....

....

....

....

....

3) बेरोज़गारी का मापन क्यों विकासशील देशों में एक समस्या बन जाता है?

....

....

....

....

....

4) विभिन्न देशों के बीच तुल्य आय के आँकड़े तैयार करने के लिए क्या प्रयास किए गए हैं? इस प्रकार के आँकड़े तमाम देशों में असमानता के विषय में क्या दर्शाते हैं?

....

....

....

....

....

5) विकसित देशों में असमानता का विस्तार कितना है? यह विकासशील देशों में असमानता से किस प्रकार तुलनीय है?

....

....

....

....

....

12.5 विकास के सामाजिक आयाम

जब से विकास के मापदंड स्वरूप प्रति व्यक्ति आय की सीमाबद्धताओं के विषय में सवाल उठाए जाने लगे हैं, विकास के क्षेत्राधिकार को विस्तारित करने का प्रयास किया जा रहा है। विकास में कमियों, जैसे गरीबी और बेरोज़गारी का लगातार बने रहना, शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे सामाजिक आयामों की उपेक्षा कर जीडीपी एवं प्रति व्यक्ति जीडीपी की वृद्धि पर ही एकाग्र रहना परिणाम माना जाता है। पिछले दो दशकों में, शिक्षा एवं स्वास्थ्य आयामों पर उत्तरोत्तर ध्यान दिया गया है। ऐसा मुख्य रूप से इस बोध की वजह से है कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य में सुधार लोगों की क्षमताएँ बढ़ाने में अतीव महत्त्व रखता है। उत्कृष्ट क्षमताएँ, बदले में, लोगों का उत्पादनकारी निष्पादन बढ़ाने में और विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं का बेहतर सदुपयोग करने में मदद करती हैं। इस भाग में, हम शिक्षा एवं स्वास्थ्य के सूचकों के अनुसार देशों की स्थिति पर विचार करेंगे।

12.5.1 शैक्षिक स्थिति

परंपरागत रूप से, 'वयस्क साक्षरता दर' को शैक्षिक स्थिति के एक सूचक स्वरूप लिया जाता है। इससे अपेक्षा थी कि यह लोगों की शैक्षिक स्थिति में इतिहासपरक उपेक्षा अथवा उपलब्धि को उजागर करेगी। परंतु वर्तमान में, शैक्षिक उपलब्धियाँ शिक्षा की 'सुलभता, निष्पक्षता एवं गुणवत्ता' के पदों में बताई जाती हैं। इस प्रवृत्ति के चलते, यहाँ हमारी चर्चा के केंद्र में रहेगा– 'शिक्षा की विभिन्न स्तरों पर सुलभता'। गुणवत्ता के विषय में, विश्व बैंक द्वारा परिभाषित 'शिक्षा प्राप्ति निर्धनता' सूचक पर विचार किया जाता है। 'ज्ञान-शून्यता' या ज्ञान के अभाव को विश्व बैंक द्वारा इन शब्दों में परिभाषित किया गया है– '10 वर्ष की आयु तक किसी लघु, आयु-अनुकूल मूलपाठ को पढ़ने व समझने में असमर्थ होना।' इस सूचक के केंद्र में आरंभिक बाल्यकाल एवं स्कूली शिक्षा है।

वयस्क साक्षरता अनुपात किसी भी देश की शैक्षिक स्थिति का एक व्यापक सूचकांक प्रदान करता है। इसका अपेक्षाकृत निम्न स्तर शिक्षा के प्रति अपर्याप्त अवधान को इंगित करते हैं। भारत में वयस्क साक्षरता दर (74%) पाकिस्तान (59%) व नेपाल (68%) से बेहतर है परंतु अन्य देश [श्रीलंका (92%), दक्षिण-अफ्रीका (87%), ब्राज़ील (93%) और चीन (97%)] इस लिहाज से भारत से काफी आगे हैं (तालिका 12.3)। 'स्कूली शिक्षा' की सुलभता' के लिहाज से, अधिकांश देशों में प्राथमिक शिक्षा की सुलभता चूँकि लगभग 100 प्रतिशत है, यहाँ माध्यमिक शिक्षा में सकल नामांकन दर (GER) पर विचार किया जाता है। इस संबंध में, दक्षिणा एशिया के देशों में, अब भी श्रीलंका को छोड़कर, अन्य चार देशों के उपयुक्त आयु-वर्ग के एक-चौथाई से कुछ अधिक बच्चे 'स्कूल छोड़ चुके' हैं। पाकिस्तान, जिसकी माध्यमिक शिक्षा में नामांकन दर 43 प्रतिशत है, इन क्षेत्र में अन्य देशों से पीछे ही हैं।

तालिका 12.3 : एक तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा विकास की स्थिति (2018-2019)

देश	वयस्क साक्षरता दर (%)	माध्यमिक शिक्षा में सकल नामांकन	तृतीयक शिक्षा में सकल नामांकन	स्कूल के माध्य वर्ष (25+ जनसंख्या के लिए)	निम्न माध्यमिक शिक्षा संपन्न जनसंख्या %	शिक्षा पर राजकीय व्यय (जीडीपी की तुलना में %)	स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता (ज्ञान-शून्यता)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
भारत	74	73	28	6.5	37.6	3.8	54.8
बांग्लादेश	74	73	21	6.4	43.6	2.0	57.2
नेपाल	68	74	12	3.5	26.9	5.2	उपलब्ध नहीं
पाकिस्तान	59	43	9	5.0	36.4	2.9	74.5
श्रीलंका	92	98	20	10.9	81.6	2.8	14.4
चीन	97	88	51	10.6	65.3	1.9	18.2
दक्षिण-अफ्रीका	87	105	22	10.2	72.3	6.2	79.8
ब्राज़ील	93	101	51	8.0	60.0	6.2	48.4
अमेरिका	–	99	88	13.8	96.0	5.0	7.9
इंग्लैंड	–	126	60	13.2	99.7	5.5	3.4

स्रोत : विश्व विकास संसूचकों पर विश्व बैंक डेटाबेस

यह निरंतर चिंता का विषय बना हुआ है कि उच्चतर कौशल क्षमताओं के प्रति भावी नौकरियों के वर्धमान पूर्वाग्रह के साथ, रोज़गार में प्रवेशार्थ शिक्षा की न्यूनतम वांछनीयता 'माध्यमिक-शिक्षा संपन्न' हो जाएगी। इस संबंध में, माध्यमिक शिक्षा में 98 प्रतिशत नामांकन के साथ श्रीलंका दक्षिण-एशिय में सर्वश्रेष्ठ विजेता के रूप में खड़ा है। बहरहाल, स्कूली शिक्षा के दो आयाम हैं– एक है नामांकन और दूसरा है 'विभिन्न स्तरों पर स्कूली शिक्षा की संपूर्ति'। इस दृष्टिकोण से, 25 वर्ष या उसके अधिक आयु-वर्ग में जनसंख्या के लिए 'स्कूली शिक्षा के माध्य वर्ष' नेपाल में निम्नतम (3.5 वर्ष) हैं। इसके बाद आते हैं– पाकिस्तान (5 वर्ष), बांग्लादेश (6.4 वर्ष), भारत (6.5 वर्ष), ब्राज़ील (8 वर्ष), चीन (10.6 वर्ष) और श्रीलंका (10.9 वर्ष)। विकसित देशों में, यह माध्यम आज भी ऊँचा है– इंग्लैंड 13.2 वर्ष; अमेरिका 13.8 वर्ष। जब हम तृतीयक शिक्षा में सकल नामांकन दर (GER) पर विचार करते हैं तो भारत (28%) के अंक श्रीलंका (20%) समेत अन्य दक्षिण-एशियाई देशों से बेहतर ही मिलते हैं। परंतु वह चीन और ब्राज़ील (दोनों 51%) से काफी पीछे है। यह प्रतिशतता इंग्लैंड (60%) और अमेरिका (88%) के मामले में और अधिक है। यह दृष्टिकोण व्यापक रूप से साझा किया जाता है कि अधिकांश विकासशील देशों में शिक्षा पर राजकीय व्यय न्यूनतम वांछित (जीडीपी का

6%) से काफी कम होता है। बड़ी दिलचस्प बात है कि ऐसा वस्तुतः अधिकांश दक्षिण-एशिया और चीन (1.9%) में ही नहीं बल्कि अमेरिका (5%) और इंग्लैंड (5.5%) में भी है। ऐसा शायद इसलिए है कि उच्च-आय देशों में काफी उच्चतर शिक्षा निजीकृत हो चुकी है। इसके अलावा, अमेरिका और चीन जैसे देशों की जीडीपी चूँकि भारत के मुकाबले कई लाख करोड़ डॉलर अधिक है, इन देशों की छोटी-सी प्रतिशतता भी अचर पदों में ऊँची ही होती है।

शिक्षा की गुणवत्ता के विषय में, हम 'ज्ञान-शून्यता' के अनुमान प्रयोग करते हैं। चूँकि यह सूचकांक पठन-पाठन कौशल पर ज़ोर देता है, एक प्रकार से यह अनेक विषयों में बुनियादी शिक्षा को केंद्र में रखता है। इसे 'स्कूल छोड़ चुके बच्चों' और 'स्कूल में ऐसे बच्चों का अनुपात जिन्हें न्यूनतम-प्रवीणता हासिल नहीं हुई है' के संयोजन के रूप में मापा जाता है। अतएव, यह 'स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता' का मापदंड होता है। भारत और बांग्लादेश के ज्ञान-शून्यता' अनुपात क्रमशः 55 और 57 प्रतिशत है। इसका अर्थ है कि इन दोनों देशों में लगभग दो-तिहाई बच्चे प्रत्याशित प्राप्त ज्ञान-कौशल दर्शाने में असफल रहते हैं। अन्य देशों की सदृश प्रतिशतताएँ इस प्रकार हैं– चीन (18%), श्रीलंका (14%), अमेरिका (8%) और इंग्लैंड (3%)। इसका अर्थ है कि सापेक्षिक पदों में, इन देशों में शिक्षा की गुणवत्ता अभिहित रूप से ऊँची है।

12.5.2 स्वास्थ्य स्थिति

जनस्वास्थ्य की दशा विकास का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है जो केवल प्रतिव्यक्ति आय को केंद्र में रखकर शायद स्थिति को स्पष्ट रूप से न दर्शा पाए। इसी प्रकार, महज जीवन-प्रत्याशा के उच्च वर्ष भी स्वास्थ्य के अन्य पहलुओं को संभवतः उजागर न करते हों। उदाहरण के लिए, लगभग सभी देशों में स्त्री जीवन-प्रत्याशा पुरुष जीवन-प्रत्याशा से अधिक है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि महिलाओं की स्वास्थ्य दशा पुरुषों से बेहतर है। इसीलिए, स्वास्थ्य की एक सूचक श्रृंखला पर विचार किया जाना आवश्यक है (तालिका 12.4)। भारत में जीवन-प्रत्याशा (69), बांग्लादेश (72) और नेपाल (70) से कम है। ये दोनों देश 'शिशु मर्त्यता दर' (IMR) के जिहाल से भी बेहतर स्थिति दर्शाते हैं [बांग्लादेश (25), नेपाल (27), भारत (30)]। श्रीलंका की यह दर (IMR) निम्नतम (6) है और यह चीन (7), अमेरिका (6) और इंग्लैंड (4) के तुल्य है। मातृ मर्त्यता दर (MMR) श्रीलंका (36) को छोड़कर सभी दक्षिण-एशियाई देशों में बहुत ऊँची (>140) है। एक कहीं अधिक विक्षुब्ध करने वाला अभिलक्षण है – कुपोषण की उच्च दर जो पाँच वर्ष से नीचे के बच्चों में एक प्रकार का 'रुद्ध विकास और अपक्षय' दर्शाती है। रुद्ध विकास की दर भारत, बांग्लादेश और नेपाल में ऊँची है (इन सभी 3 देशों में >35) और पाकिस्तान में यह और भी संकटरपूर्ण (45) है। रुद्ध विकास के उच्च स्तर आरंभिक बाल्यकाल में निकृष्ट स्वास्थ्य को ही दर्शाते हैं, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके वयस्क होने पर प्रजनन क्षमता पर पड़ता है। स्वास्थ्य सूचकों पर चीन का कार्य-प्रदर्शन इसीलिए अमेरिका व इंग्लैंड जैसे विकसित देशों के तुल्य है।

किसी देश की स्वास्थ्य स्थिति के दो प्रमुख निर्धारक तत्व हैं – (i) कुल स्वास्थ्य व्यय में राजकीय व्यय का प्रतिशत, और (ii) जीडीपी की प्रतिशत स्वरूप व्यक्त स्वास्थ्य पर राजकीय व्यय। दक्षिण-एशिया में चार निकृष्ट प्रदर्शन करने वाले देश (यथा– भारत, बांग्लादेश, नेपाल और पाकिस्तान) ऐसे देशों में भी गिने जाते हैं जहाँ स्वास्थ्य पर राजकीय व्यय अल्पतम (<30%) है। इसका अर्थ है कि इन देशों में लगभग तीन-

चौथाई स्वास्थ्य व्यय 'जेब से खर्च', यथा निजी व्यय, से ही पूरा होता है। इन देशों में जीडीपी के अनुपात स्वरूप भी स्वास्थ्य पर राजकीय व्यय कम है (बांग्लादेश में जीडीपी के 0.4% से लेकर नेपाल में 1.2% तक)। इस संबंध में सरकार की संलिप्ति अन्य देशों में कहीं अधिक है [श्रीलंका (1.7%), चीन (2.9%), ब्राज़ील (3.9%), दक्षिण अफ्रीका (4.4%)]। अमेरिका एवं इंग्लैंड जैसे विकसित देशों में, स्वास्थ्य में सरकार की अंतर्भावितता और भी अधिक है (इंग्लैंड 7.8%; अमेरिका 14%)। तद्नुसार, यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य पर राजकीय वयय में संतोषजनक वृद्धि किए बिना, भारत उच्च संवृद्धि दरों एवं वर्धमान प्रतिव्यक्ति आय के बावजूद विकास के सामाजिक आवाम विषयक अपना संवर्ग सुधारने की स्थिति नहीं आ पाएगा।

तालिका 12.4 : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य विकास (2017-2018)

देश	जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा	शिशु-मर्त्यता दर (प्रति 1000 अमृत जन्म)	मातृ मर्त्यता दर (प्रति 1,00,000 अमृत प्रसव)	5 वर्ष से नीचे के बच्चों में रुद्ध विकास (%)	अपक्षय रोग (कदानुसार वज़न) (5 वर्ष से कम बच्चों का %)	कुल स्वास्थ्य व्यय के %स्वरूप राजकीय व्यय	राजकीय व्यय (जीडीपी का %) स्वास्थ्य पर
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
भारत	69	30	145	38.4	21	25.4	0.9
बांग्लादेश	72	25	173	36.6	14.3	18.0	0.4
नेपाल	70	27	186	35.8	9.7	18.6	1.2
पाकिस्तान	67	57	140	45.0	10.5	27.9	0.8
श्रीलंका	77	6	36	17.3	15.1	43.1	1.7
चीन	76	7	29	8.1	1.9	58.0	2.9
दक्षिण-अफ्रीका	64	29	119	27.4	2.5	53.7	4.4
ब्राज़ील	75	13	60	7.1	1.6	33.2	3.9
अमेरिका	79	6	19	2.1	0.5	81.9	14.0
इंग्लैंड	81	4	7	.	.	80.2	7.8

स्रोत : विश्व विकास संसूचक विषयक विश्व बैंक डेटाबेस

12.6 विकास के संश्लिष्ट सूचकांक

भाग 12.3 व 12.5 में हमारी चर्चा के विषय रहे विकास के सामाजिक एवं आर्थिक आयाम संबंधी वैयक्तिक सूचक हमें प्रतिवयक्ति आय जैसे किसी एकल मापदंड द्वारा मिले-जुले विकास को समझने में मदद नहीं करते। इसीलिए, विभिन्न सामाजिक-आर्थिक घटकों को किसी एकल मान अथवा सूचकांक में संयोजित करने के प्रयास किए गए हैं ताकि किसी अपेक्षाकृत अधिक बोधगम्य मापदंड पर पहुँचा जा सके। इनमें से कुछ मापदंड हैं – (i) मानव विकास सूचकांक (HDI), (ii) सामाजिक प्रगति सूचकांक, और (iii) विश्व सुख-सम्पन्नता सूचकांक।

12.6.1 मानव विकास सूचकांक

विकास के किसी बोधगम्य मापदंड के लिए आरंभिक प्रयास वर्ष 1990 में 'मानव विकास सूचकांक' (HDI) के रूप में किया गया। विकास का उद्देश्य लोगों के लिए दीर्घ, स्वस्थ एवं रचनात्मक जीवन भोगने में सक्षम बनाने वाला परिवेश सृजित करना होता है, इस सूचकांक (HDI) ने विकास को 'लोगों के विकल्प विस्तृत करने की प्रक्रिया' के रूप में परिभाषित किया। ये विकल्प तीन अनिवार्य पहलुओं में देखें जा सकते हैं, यथा– (i) एक दीर्घ एवं स्वस्थ्य जीवन व्यतीत करना, (ii) ज्ञान अर्जित करना, और (iii) एक शालीन जीवन-स्तर हेतु आवश्यक संसाधनों की सुलभता। इन तीन पहलुओं के अनुरूप, यह सूचकांक (HDI) तैयार करने के लिए तीन पृथक् घटक चुने जाते हैं। ये घटक हैं – (i) 'जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा' में मापित दीर्घायुता, (ii) साक्षरता से मापा जाने वाला ज्ञान, तथा (iii) प्रति व्यक्ति आय द्वारा निरूपित एक शालीन जीवन बिताने हेतु संसाधन। वर्ष 1990 से, कुछ फेर-बदल के साथ, इस सूचकांक (HDI) को अधिकांश देशों में आकलित किया जा रहा है। तालिका 12.5 वर्ष 2019 के लिए HDI मान एवं संवर्ग दर्शाती है।

तालिका 12.5 : विकास के विशद सूचकांक

देश	मानव विकास सूचकांक 2019		सामाजिक प्रगति सूचकांक 2018		विश्व सुख-संपन्नता सूचकांक 2016-18
	मान	संवर्ग अंक	समंक	संवर्ग अंक	संवर्ग अंक
भारत	0.65	129	56.3	100	140
बांग्लादेश	0.61	135	52.2	108	125
नेपाल	0.58	147	56.1	101	100
पाकिस्तान	0.56	152	49.2	115	67
श्रीलंका	0.78	71	68.0	67	130
चीन	0.76	85	64.6	87	93
दक्षिण-अफ्रीका	0.71	113	–	–	106
ब्राज़ील	0.76	79	72.7	49	32
अमेरिका	0.92	15	–	–	19
इंग्लैंड	0.92	15	88.7	13	15

अपने संवर्ग अंक 129 के साथ (कुल 189 देशों में), भारत, बांग्लादेश (135), नेपाल (147) और पाकिस्तान (152) से किंचित् बेहतर स्थिति दर्शाता है। यह चीन (85) और श्रीलंका (71) की तुलना में काफी नीची है। बड़ी ही रोचक बात है कि उक्त सूचकांक (HDI) संवर्ग निर्धारण आय निष्पादन के अनुरूप होता है, विशेषकर पाँच दक्षिण-एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में से तीन के लिए [देखें तालिका 12.1 (कोष्ठक में PCI) : श्रीलंका ($4102), भारत ($2010) और बांग्लादेश ($1698)]। पाकिस्तान की प्रतिव्यक्ति आय नेपाल से अधिक है परंतु HDI संवर्ग के लिहाज से, नेपाल कर संवर्ग (147) पाकिस्तान (152) से बेहतर है।

12.6.2 सामाजिक प्रगति सूचकांक

समाजिक प्रगति सूचकांक (SPI) 'सामाजिक प्रगति नियोग' नामक एक अंतर्राष्ट्रीय असैनिक समाज संगठन द्वारा प्रकाशित किया जाता है। यह सामाजिक प्रगति को इन शब्दों में परिभाषित करता है – 'अपने नागरिकों की मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने की किसी समाज की क्षमता।' यह ऐसे निर्माण खंड स्थापित कर इसकी उपलब्धि को निर्दिष्ट करता है जो नागरिकों एवं समुदायों को अपने जीवन की गुणवत्ता सुधारने व कामय रखने में मदद करते हैं। तद्नुसार, इससे यह सुनिश्चित होता है कि किसी भी देश में अपने पूर्ण सामर्थ्य तक पहुँचने हेतु सभी लोगों के लिए आवश्यक दशाएँ उत्पन्न हों। यह सूचकांक (SPI) 54 संकेतकों पर आधारित है। इनके दायरे में तीन बुनियादी पहलू आते हैं, यथा– मूलभूत मानवीय आवश्यकताएँ, स्वस्थ रहने के आधार, तथा अवसर। यह सूचकांक वर्ष 2014 से नियमित प्रकाशित हो रहा है। हमारे प्रतिदर्श में वर्ष 2018 का यह सूचकांक देशों के संवर्ग अंक इस प्रकार दर्शाता है– भारत (100), बांग्लादेश (108), नेपाल (101) और पाकिस्तान (115)। ये चार देश संवर्गित 146 देशों के लगभग तल पर स्थित हैं। इस लिहाज से चीन (87), श्रीलंका (67), ब्राज़ील (49) और इंग्लैंड (13) काफी ऊपर हैं।

12.6.3 विश्व सुख-सम्पन्नता सूचकांक

विगत जुलाई 2011 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किया। इसमें सदस्य देशों को अपने नागरिकों की सुख सम्पन्नता मापने और उसे अपनी शासकीय नीतियों के दिशा-निर्देश हेतु प्रयोग करने के लिए आमंत्रित किया गया था। इसके अनुपालन में, आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD) ने 'आत्मनिष्ठ स्वास्थ्य' के मापन हेतु दिशा-निर्देश' प्रस्तुत किए। प्रथम 'विश्व सुख-सम्पन्नता रिपोर्ट' वर्ष 2012 में प्रकाशित हुई। छह संकेतकों (भ्रष्टाचार, उदारता, जीवन-वर्ष, जीवनानुभव, स्वतंत्रता का भाव और प्रति व्यक्ति जीडीपी) के आधार पर, विश्व सुख-सम्पन्नता सूचक (WHI) एक 0 से 10 के पैमाने पर तैयार किया जाता है। वर्ष 2016-2018 की रिपोर्ट में 156 देशों का सर्वेक्षण कर उन्हें संवर्गबद्ध किया गया (तालिका 12.5)। अपनी संवर्ग अंक 140 के साथ भारत यहाँ इस तुल्य देशों के तल में नज़र आता है। ऊपर विचाराधीन अधिकांश अन्य सामाजिक-आर्थिक आयामों में एक काफी नीचे नज़र आने वाले कार्य-निष्पादक के रूप में पाकिस्तान सुख-सम्पन्नता के लिहाज से सभी छह एशियाई देशों में शीर्ष पर दृष्टिगत होता है (67)। श्रीलंका जो अनेक पहलुओं से एशिया में शीर्ष पर नज़र आया, सुख-संपन्नता में काफी नीचे (130) दिखाई पड़ता है। इस संबंध में, ब्राज़ील (32), अमेरिका (19) और इंग्लैंड (15) अपनी-अपनी श्रेणियों में अग्रणी नज़र आते हैं। 'स्वास्थ्य' का विषय, बहरहाल, आज भी एक नई (nascent) अवधारणा ही है। कालांतर में और अधिक सुधार के साथ, इस असंगति को दूर करने में निश्चय ही सफलता मिलेगी।

बोध प्रश्न 3 दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 षब्दों में लिखें।)

1) किसी देश में शिक्षा का स्तर मापने के लिए ऐतिहासिक रूप से 'वयस्क साक्षरता' को विचाराधीन क्यों रखा गया? हाल ही में पुनरानुस्थापित अवधारणा क्या रही है?

....

....

....

....

....

2) माध्यमिक शिक्षा में सकल नामांकन दर (GER) के संदर्भ में भारत की स्थिति क्या है?

....

....

....

....

....

3) 'स्कूली शिक्षा के मध्य वर्ष' विषयक भारत की स्थिति क्या है? किस लिहाज से, भारत की स्थिति दक्षिण एशिया क्षेत्र के अन्य देशों से बेहतर है?

....

....

....

....

....

4) किसी देश की स्वास्थ्य प्रस्थिति के दो प्रमुख निर्धारक तत्व बताएँ।

....

....

....

....

....

5) 'सामाजिक प्रगति' को परिभाषित करें। सामाजिक प्रगति सूचकांक के संदर्भ में भारत की सापेक्ष स्थिति क्या है?

....

....

....

....

....

12.7 सार-संक्षेप

विभिन्न देशों के सापेक्ष विकास को मापने हेतु एक साधन स्वरूप प्रति व्यक्ति आय (PCI) की सीमाबद्धताओं के चलते 'मानव विकास सूचकांक' और 'सामाजिक प्रगति सूचकांक' जैसे संश्लिष्ट सूचक तैयार करने पड़े। इन मापदंडों के विकास ने उन

बुनियादी कारकों को यथायोग्य महत्त्व दिया जाना संभव बना दिया जो किसी देश में सम्पत्ति सृजन में अहम् होते हैं। इस प्रयास में, शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी सामाजिक कारकों को यथोचित अधिप्रतिनिधित्व मिला है। इस इकाई में किए गए 10 देशों के तुलनात्मक वर्णन में, भारत की स्थिति को तीन एशियाई पड़ोसियों– नेपाल, बांग्लादेश और पाकिस्तान – से किंचित् ही ऊपर देखा गया। भारत के लिए शिक्षा एवं स्वास्थ्य दोनों सामाजिक क्षेत्रों में राजकीय व्यय में संतोषजनक वृद्धि अनिवार्यतः आवश्यक है ताकि वह अपने समग्र विकास में वर्तमान श्रेणी बढ़ाकर अपनी स्थिति सुधार सके।

12.8 शब्दावली

ज्ञान-शून्यता : दस वर्ष की आयु तक किसी लघु आयु-अनुकूल मूलपाठ को पढ़ने व समझने में असमर्थता। यह शिक्षा की गुणवत्ता आँकने हेतु विश्व बैंक द्वारा विकसित एक संसूचक है।

सामाजिक प्रगति सूचकांक : अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में किसी समाज की क्षमता आँकने हेतु विकसित एक मापदंड। इसके दायरे में मानवीय आवश्यकताओं के अलावा दो अन्य पहलू भी आते हैं, यथा – स्वास्थ्य के मूल आधार एवं अवसर।

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Dreze, Jean and Amartya Sen (2013). An Uncertain Glory: India and Its Contradictions, Allen Lane, Penguin Books, London.

Nayyar, Deepak (2019). Resurgent Asia: Diversity in Development, Oxford University Press, New Delhi.

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) प्रतिव्यक्ति आय (PCI) आय के वितरण से कोई ताल्लुक न रख सिर्फ प्रतिव्यक्ति आय के कुल विस्तार से ही संबंध रखती है। यह विभिन्न देशों को विकसित-विकासशील के रूप में भिन्न-भिन्न दर्शाने और अर्थव्यवस्थाओं को उनके औसत आय-स्तर के आधार पर वर्गीकृत करने के लिए उपयोगी सिद्ध होती है।

2) यह प्राधार विकासशील-विकसित भेद से परे सभी श्रेणियों के देशों का प्रतिनिधित्व करता हो। इसमें विश्व जनसंख्या का यथेष्ट रूप से बड़ा भाग शामिल किया गया हो। चुने गए देशों का नमूना न्यायोचित हो क्योंकि इसमें विश्व जनसंख्या के 50 प्रतिशत से अधिक भाग आ जाता है।

3) जनसंख्या, प्रतिव्यक्ति जीडीपी, जीडीपी में दीर्घावधि औसत वार्षिक वृद्धि दर, कुल रोज़गार में कृषि का अंश तथा जीडीपी में उसका योगदान।

4) वर्ष 1961-2011 के दौरान 6.8 प्रतिशत की एक प्रभावशाली दीर्घावधि वार्षिक औसत वृद्धि दर दर्ज़ कराके चीन ने भारत के मुकाबले एक ऊँची छलाँग लगाई। इस संबंध में भारत यद्यपि कम ही प्रभाव छोड़ने में सफल रहा, उसने हाल के वर्षों में चीन के समकक्ष आ जाने का पराक्रम कर दिखाया है। निम्नतर कृषि रोज़गार एवं कृषि जीडीपी अंश (7.9 प्रतिशत) के पदों में अपने प्राधारिक परिवर्तन

के लिए श्रीलंका का खिसककर उच्चतर मध्यम-आय वर्ग में चले जाना गौरतलब है।

5) बांग्लादेश का 'उच्चतर मध्यम-आय समूह' की ओर खिसक जाना और नेपाल का 'निम्न आय' से खिसरकर 'निम्नतर मध्यम-आय समूह' में चले जाना।

6) प्राधारिक आयाम का अर्थ है – अपने कृषि क्षेत्र से किसी देश का रोज़गार एवं जीडीपी अंश घटाकर प्रभावशाली परिवर्तन। पाँच दक्षिण-एशियाई देशों के उदाहरण में श्रीलंका एकमात्र ऐसा देश है जो चीन से तुल्य स्तरों तक कृषि से अपना रोज़गार जीडीपी अंश घटाने में सफल रहा है।

बोध प्रश्न 2

1) विकास में अभावों का अर्थ है – संवृद्धि के साथ बढ़ती प्रति व्यक्ति आय के बावजूद गरीबी और बेरोज़गारी की व्यापकता। यह समाज में बढ़ती असमानता को भी इंगित करता है।

2) भारत, श्रीलंका और चीन के उदाहरण में देखा जा सकता है कि बढ़ती आय (जीडीपी) के साथ गरीबी घटी है। बहरहाल, दक्षिण-अफ्रीका के मामले में, आय तो बढ़ी है मगर निर्धनता अनुपात भी बहुत ऊपर चला गया है (वर्ष 2014 में 56 प्रतिशत)।

3) ऐसा इसलिए है कि यहाँ रोज़गार का बड़ा भाग अनौपचारिक है, जहाँ प्रच्छन्न बेरोज़गारी बहुत अधिक होती है।

4) विभिन्न देशों के बीच तुल्य आय विषयक आँकड़े तैयार करने के लिए विश्व असमानता डेटाबेस (WID) द्वारा अनूठी विधियाँ अपनाई गई हैं। इसके रुझान दर्शाते हैं कि दक्षिण-एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में असमानता भारत और बांग्लादेश द्वारा 40^{+} प्रतिशत जबकि नेपाल और पाकिस्तान द्वारा 30 प्रतिशत से किंचित् ही ऊपर रहकर दर्शाई जाती है। श्रीलंका और चीन में यह उच्चतम (दोनों 49 प्रतिशत के बराबर) है।

5) विकसित देश भी उच्च असमानता दर्शाते हैं, यथा– इंग्लैंड 32 प्रतिशत और अमेरिका 39 प्रतिशत (वर्ष 2018 में)। यह इसी वर्ष (2018 में) नेपाल 33 प्रतिशत और पाकिस्तान 32 प्रतिशत से तुल्य है।

बोध प्रश्न 3

1) ऐसा इसलिए है कि इससे अपेक्षित था कि यह लोगों की शैक्षिक प्रस्थिति में ऐतिहासिक उपेक्षा अथवा उपलब्धि को उजागर करेगा। अब हाल ही में ज़ोर शिक्षा की 'सुलभता, निष्पक्षता एवं गुणवत्ता' पर दिया जाने लगा है।

2) उसे 25 प्रतिशत से भी अधिक पात्र छात्र माध्यमिक-शिक्षा प्रणाली से बाहर दर्शाने वाले बांग्लादेश और नेपाल की श्रेणी में रखा जाता है।

3) भारत 6.5 वर्ष पर तय स्कूली शिक्षा के अपने मध्य वर्षों के साथ तुल्य माने गए 10 देशों के लगभग बीच में दर्शाया जाता है। तृतीयक शिक्षा में नामांकन के लिहाज से, भारत की स्थिति दक्षिण अफ्रीका समेत दक्षिण एशिया के अन्य चार देशों से बेहतर है।

4) i) कुल स्वास्थ्य व्यय की प्रतिशतता स्वरूप राजकीय व्यय, तथा

ii) जीडीपी की प्रतिशतता में व्यक्त स्वास्थ्य पर सरकारी खर्च।

5) सामाजिक प्रगति को इन शब्दों में परिभाषित किया जाता है – अपने नागरिकों की मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किसी समाज की क्षमता। सामाजिक प्रगति सूचकांक (SPI) के जिहाज से, भारत, बांग्लादेश, नेपाल व पाकिस्तान से बस थोड़ा ही ऊपर दिखाई पड़ता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13 व्यापार और भुगतान-शेष*

सरंचना

13.0 उद्देश्य

13.1 विषय प्रवेश

13.2 भुगतान-शेष (BoP) खाता

13.2.1 भुगतान-शेष खाते के घटक

13.2.2 भुगतान-शेष खाता घाटा अथवा अधिशेष

13.2.3 चालू खाता घाटा (CAD)

13.3 भारत में पूँजी खाते का उदारीकरण

13.4 चालू-खाता घाटे का अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक वर्णन

13.4.1 चालू-खाता घाटा और विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ

13.4.2 चालू-खाता घाटा और विकसित अर्थव्यवस्थाएँ

13.4.3 निपटान खाता

13.4.4 चालू-खाता शेष को प्रभावित करने वाले कारक

13.5 सार-संक्षेप

13.6 शब्दावली

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- व्यापार के तीन मापन-आयाम स्पष्ट करते हुए, उसके लाभ इंगित कर सकें;
- पदबंध 'भुगतान-शेष' (BoP) को परिभाषित कर सकें;
- किसी भुगतान-शेष खाते का वर्गीकरण प्राधार स्पष्ट कर सकें;
- 'भुगतान-शेष खाता घाटा अथवा अधिशेष' संबंधी संकल्पनाओं को निरूपित कर सकें;
- बता सकें कि क्यों उच्च 'चालू-खाता घाटा' (CAD) किसी अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के लिए अवांछित है;
- भारत में 'पूँजी खाते का उदारीकरण' प्रक्रिया का ब्यौरा पेश कर सकें;
- विश्व की विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के बीच चालू-खाता घाटे का तुलनात्मक वर्णन कर सकें;
- भुगतान-शेष में 'निपटान खाते' का महत्त्व उजागर कर सकें; तथा
- भुगतान-शेष में 'चालू-खाता शेष' को प्रभावित करने वाले कारक गिना सके।

* सुश्री विशाखा गोयल, सहायक आचार्य, शारदा विश्वविद्यालय

13.1 विषय प्रवेश

विकास के आदिमकालीन चरणों में भी अर्थव्यवस्थाएँ अन्य देशों के साथ व्यापार में लिप्त रहती थीं। अब, अधिकांश आधुनिक अर्थव्यवस्थाएँ मुक्त व्यापार में लगी हैं। अन्य अर्थव्यवस्थाओं के साथ इस प्रकार की अंतर्क्रियाएँ उपभोक्ताओं के लिए विकल्प विस्तीर्ण कर देती हैं। उत्पादनकर्ता अपना उत्पादन मान बढ़ा सकते हैं और अपने माल के लिए नए बाज़ार तलाश सकते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, तद्नुसार, उत्पादन एवं उपभोग दोनों में मदद करने की संभावना से पूर्ण होता है। इससे देशों को भी यह अवसर मिलता है कि वे अपने यहाँ विदेशी कंपनियों को अपनी उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करने दें। ये लेन-देन सभी कार्य विवरणों का कोई क्रमबद्ध लेखा रखने की आवश्यकता उत्पन्न कर देते हैं। वह खाता जो ऐसे सभी कार्य विवरणों का लेखा करता है, 'भुगतान-शेष (BoP) खाता कहलाता है। भुगतान-शेष की संकल्पना व्यापार विनिमय दर से संबद्ध अंतर्राष्ट्रीय विवादों को समझने के लिए आवश्यक होती है। वैश्वीकृत जगत में, विदेश व्यापार किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतएव, विदेशी व्यापार के उपाय करना ज़रूरी होता है ताकि सरकार अपनी अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा में मोड़ने हेतु आवश्यक कदम उठा सके। विदेश व्यापार का विस्तार उसके इन पदों में आकलित किया जाता है – (i) परिमाण, (ii) सम्मिश्रण, एवं (iii) लक्ष्य। व्यापार का परिमाण हमें अंतर्राष्ट्रीय सौदों का आकार बताता है। इसे मूल्य के पदों में मापा जाता है और इसका लेखा किसी देश के निर्यात एवं आयात दोनों के लिए अलग-अलग किया जाता है। व्यापार के सम्मिश्रण का अर्थ है – वह प्रमुख जिंसें (commodities) जिनका कोई देश निर्यात और आयात करता हो। विदेशी व्यापार का लक्ष्य शेष जगत के साथ आर्थिक अनुबद्धताओं को इंगित करता है। यह हमें उन देशों का ज्ञान कराता है जिनको भारत अपना माल निर्यात करता है और उन देशों का भी जिनसे हम आयात करते हैं। तद्नुसार, लक्ष्य में निर्यात के गंतव्य और हमारे आयात के स्रोत शामिल होते हैं। यह देश के आर्थिक विकास की गति दर्शाता है। ऐसा इसलिए है कि जब कोई देश बड़ी संख्या में देशों के साथ व्यापार शुरू करता है तो उसके आर्थिक विकास की गति तेज़ हो जाती है।

13.2 भुगतान-शेष (BoP) खाता

विदेश व्यापार में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है। यदि किसी देश का निर्यात बहुत अधिक हो तो वह रोकड़ बाकी अर्थात् अधिशेष विदेशी-मुदा संचित कर सकता है। परंतु यदि किसी विकासशील देश का आयात उसके निर्यात की तुलना में बहुत अधिक हो तो वहाँ सदैव विदेशी मुद्रा का अभाव दिखाई पड़ता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संतुलन हेतु संघर्षरत रहना आवश्यक होता है ताकि आवश्यक आयात हेतु भुगतानार्थ अपेक्षित विदेशी मुद्रा की व्यवस्था हो सके। विदेशी मुद्रा भंडार पर नज़र रखने के लिए, एक लेखा-विवरण तैयार किया जाता है, जिसमें किसी वित्त वर्ष में अन्य देशों के साथ देश के लेन-देनों विवरणों का सही-सही वर्णन किया जाता है। इसी को उस देश का 'भुगतान-शेष' (BoP) कहा जाता है। यह उस देश और शेष जगत के निवासियों के बीच सभी आर्थिक सौदों का एक क्रमबद्ध लेखा होता है। इसमें शामिल होते हैं – (i) निर्यातित वस्तुओं, दी गई सेवाओं एवं निवासियों द्वारा प्राप्त पूँजी के कारण सभी प्राप्तियाँ, तथा (ii) आयातित वस्तुओं, ली गई सेवाओं एवं अनिवासियों अथवा विदेशियों को हस्तांतरित पूँजी हेतु निवासियों द्वारा किए गए सभी भुगतान।

भुगतान शेष सरकार को वे आँकड़े उपलब्ध कराता है। जो राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों के संरूपण हेतु आवश्यक होते हैं। उदाहरण के लिए, देश के ऋणों को कम करने के लिए, सरकार कुछ आयात-वस्तुओं पर कर वसूल सकती है। इस प्रकार का कर किसी भी देश का 'चालू खाता घाटा' (CAD) कम करने में योगदान देता है। यह घाटा (CAD) एक ऐसी दशा बताता है जहाँ किसी देश का आयात मूल्य (M) उसके कुल निर्यात मूल्य (X) से अधिक होता है, यथा $(M - X) > 0$ अथवा $(X - M)$ यानी CAD < 0। भुगतान-शेष का चालू खाता निर्यात एवं सेवाओं के विवरण का प्रग्रहण कर लेता है जो कि अपने व्यापार साझेदारों के साथ किसी भी देश की व्यापार नीति तय करने के लिए आवश्यक होता है। इसी प्रकार, भुगतान-शेष संबंधी जानकारी फर्मों, निवेशकों एवं बैंकों के लिए भी ज़रूरी होती है, बेशक वे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त में शामिल न हों। उसकी रुचि किसी देश की वित्तीय स्थिरता का मूल्यांकन करने में हो सकती है।

13.2.1 भुगतान-शेष खाते के घटक

भुगतान-शेष खाते के वर्गीकरण प्राधार में तीन लेखा शीर्षक आते हैं, यथा – (i) चालू खाता, (ii) पूँजी खाता और (iii) आरक्षित परिसंपत्ति खाता। चालू खाता किसी ज्ञात वित्त वर्ष के दौरान वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह संबंधी सभी चालू वर्ष सौदों (निर्यात एवं आयात) का लेखा करता है। इसके दो उपभाग होते है, यथा– 'व्यापार खाता' जो 'वस्तुओं' अर्थात् माल का निर्यात एवं आयात [इसे व्यापार-शेष (BoT) कहा जाता है] तथा 'अन्य अदृश्य वस्तुओं का लेन-देन (जैसे– वित्तीय सेवाएँ, बीमा सेवाएँ, प्रेक्षण सेवाएँ, आदि) संबंधी लेखा करता है। परवर्ती (यथा– 'अदृश्य वस्तुओं का लेन-देन'), तद्नुसार, किसी वित्त वर्ष के दौरान मुख्यतः सेवाओं के आदान-प्रदान का लेखा होता है [अतः 'सेवा-शेष (BoS) खाता' कहलाता है]। दूसरे उपभाग में, BoT और BoS एक साथ मिलकर BoP खाते का 'चालू खाता' दर्शाते हैं। पूँजी खाता (भुगतान-शेष खाते में) किसी देश व शेष जगत के बीच पूँजी एवं भुगतान की प्राप्ति दर्शाता है। इसमें विदेशी निवेश प्रवाह, बाहरी ऋण, ऋणादान एवं ऋण अथवा दान जैसी अन्य मदें भी शामिल होती हैं। भुगतान-शेष खाते का एक तीसरा महत्त्वपूर्ण घटक है – सरकार का 'औपचारिक आरक्षित परिसंपत्तियाँ' खाता। इसमें आते हैं– स्वर्ग भंडार, विनिमय विदेशी मुद्राओं संबंधी उपलब्धियाँ तथा 'विशेष आहरण अधिकार' (SRDs)। यह खाता चालू एवं पूँजी खाता घाटों के लिए एक संतुलनकारी मद के रूप में काम करता है और इस प्रकार 'विदेशी मुद्रा निधि' विषयक औपचारिक खाते के रूप में भी भूमिका निभाता है। इस खाते में उस स्थिति में गिरावट दिखाई देगी जब विदेशी मुद्रा का निवल बहिर्वाह निवल अंतर्वाह की अपेक्षा अधिक हो और जब चालू एवं पूँजी खातों पर कुल अदायगी कुल प्राप्तियों से अधिक हो। आदर्शतः, चालू खाता एवं पूँजी खाता पर शेष को 'औपचारिक आरक्षित परिसंपत्तियाँ' खाते द्वारा प्रतिपूर्तित किए जाने की आवश्यकता पड़ती है।

13.2.2 भुगतान-शेष खाता घाटा अथवा अधिशेष

किसी देश के समक्ष एक भुगतान-शेष घाटे की स्थिति तब होती है जब उसके कुल आयात (वस्तुओं, सेवाओं एवं निवेश आय, यथा – पूँजी अंतर्वाह) का मान निर्यात (वस्तुओं, सेवाओं एवं पूँजी बहिर्वाह) के मान से अधिक हो। इसके विपरीत, किसी देश के सम्मुख उस समय भुगतान शेष खाते का रोकड़ बाकी अर्थात् अधिशेष होता है जब 'वस्तुओं, सेवाओं एवं पूँजी अंतर्वाह' संबंधी निर्यात का कुल मूल्य 'वस्तुओं, सेवाओं एवं

पूँजी बहिर्वाह' के निर्यात के मान से अधिक हो। औपचारिकतः, 'राष्ट्रीय आय लेखा' सर्वसमिका को 'कुल व्यय' एवं 'कुल उत्पादन' के पदों में निम्वत् लिखा जा सकता है –

कुल व्यय (AE) = उपभोग व्यय (C) + निजी निवेश (I) + सरकारी खर्च (G) + निर्यात (X) (13.1)

तथा कुल उत्पादन (Y) = उपभोग (C) + बचत (S) + कर (T) + आयात M) (13.2)

अर्थव्यवस्था संतुलन में होगी यदि AE = Y, यथा –

$$C + I + G + X = C + S + T + M \quad (13.3)$$

अथवा, $$I + G + X = S + T + M \quad (13.4)$$

अथवा, $$X – M = (S – I) + (T – G) \quad (13.5)$$

घटक (X – M) निवल निर्यात एवं आयात (यथा, चालू खाता घाटा) है, (S – I) 'बचत – निवेश अंतर' है और (T – G) 'बजट घाटा' है। एक संतुलित बजट (यथा, T = G) की कल्पना करते हुए, अर्थव्यवस्था में निवल निर्यात का संबंध बचत-निवेश अंतर से जोड़ा जा सकता है। अतः, 'चालू खाता घाटा' (CAD) वाले किसी भी देश को अपना घाटा अंतर्राष्ट्रीय ऋणादान से पूरा करना होगा। हम, तद्नुसार, देख सकते हैं कि क्यों 'चालू खाता घाटा' 'भुगतान-शेष धाटे' के समान ही होता है।

13.2.3 चालू खाता घाटा (CAD)

आदर्शतः CAD [यथा, (X-M)] धनात्मक होना चाहिए। किसी ऋणात्मक CAD का अर्थ होगा कि कुल आयात कुल निर्यात से अधिक है। इस प्रकार के किसी भी घाटे का वित्तीयन विदेशी निवेशों अथवा कर्ज़ से किया जा सकता है। यह बहरहाल, समस्यात्मक हो सकता है यदि देश अपना कर्ज़ चुकाने में अक्षम हो। इस प्रकार की दशाओं में, किसी भी देश को 'भुगतान-शेष संकट' से ग्रस्त माना जाता है। एक अन्य तरीका जिससे CAD का वित्तीयन किया जा सकता है, बाहरी ऋणदान है अर्थात् अन्य देशों से अथवा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे वित्तीय संस्थाओं से उधार लेना। आगे चलकर, यह भी, समस्यात्मक हो सकता है यदि देश अपना कर्ज़ चुकाने में अक्षम हो। इस प्रकार की दशाओं में, किसी भी देश को 'भुगतान-शेष संकट' से ग्रस्त माना जाता है। उपभोग का वित्तीयन ऋणादान से करना धारणीय नहीं कहलाता। ऐसा इसलिए है कि बड़े ब्याज़ भुगतान वाले देशों में प्रायः निवेश कम होता है। दीर्घकालीन संवृद्धि के लिए, अधिक निवेश करना ज़रूरी होता है क्योंकि वर्तमान निवेश ही भावी संवृद्धि को उदीप्त करता है।

चालू खाता घाटा बढ़ने का अर्थ होता है कि देश को घरेलू मुद्रा की अपेक्षा विदेशी मुद्रा की अधिक आवश्यकता है। विदेशी मुद्रा की अत्यधिक माँग का अर्थ, दूसरी ओर, होगा– अशक्त घरेलू मुद्रा। इसका परिणाम लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति में दिखाई पड़ सकता है, ख़ासकर यदि देश के विदेशी पिटक में अधिक आयातित वस्तुओं का समावेश हो। बढ़ता 'व्यापार घाटा' भी इसी बात का द्योतक हो सकता है कि घरेलू उद्योग अपेक्षाकृत सस्ते आयातित माल का मुकाबला नहीं कर पा रहा है। इससे रोज़गार में गिरावट आ सकती है क्योंकि घरेलू विनिर्माताओं को अपने संस्थान बंद करने पड़ सकते हैं। यह, ख़ासकर व्यापार-घाटा वाले देश में अभी नए-नए शुरु हुए

उद्योगों के लिए सही सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति में, श्रमिक संघ आयात के खिलाफ संरक्षणकारी कदम उठाए जाने की माँग कर सकते हैं। इन कारकों के आलोक में, चालू खाता घाटा नियंत्रण में रखा जाना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 1 (नीचे दिए गए सभी प्रश्नों के उत्तर लगभग 50–100 षब्दों में लिखें।)

1) 'भुगतान-शेष खाता' से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

2) वे तीन आयाम बताएँ जिनके पदों में भुगतान-शेष खाता मापा जाता है। ये किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होते हैं?

....

....

....

....

....

....

....

3) किसी देश के भुगतान-शेष से आप क्या समझते हैं? यह किस प्रकार से उपयोगी सिद्ध होता है?

....

....

....

....

....

4) भुगतान-शेष के तीन प्रमुख 'खाता शीर्षक' बताएँ। विशेष रूप से, ' भुगतान-शेष के चालू खाता' के दो उप-शीर्षक क्या हैं और वे क्या प्रग्रहण करते हैं?

....

....

....

....

....

....

5) 'चालू खाता घाटा' (CAD) क्या है? किसी बढ़ते चालू खाता घाटे से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

13.3 भारत में पूँजी खाते का उदारीकरण

पूँजी खाता उदारीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे कोई देश अंततोगत्वा अपने भुगतान-शेष के 'पूँजी खाते' पर पूर्ण विनिमेयता का दर्ज़ा पा लेता है। 'पूँजी खाते' को उदारीकृत करने से पूर्व 'चालू खाते को उदारीकृत करना अभीष्ट होता है। ऐसा इसलिए है कि पूँजी खाते का उदारीकरण किसी भी अर्थव्यवस्था को बड़े-बड़े विनिमय दर उतार-चढ़ावों के प्रति अधिक संवेदनशील बना देता है। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में व्यापक सट्टेबाजी पूँजी के अतीव अंतर्वाह एवं बहिर्वाह को प्रेरित कर सकती है, जिससे पूँजी खाते में अस्थिरता उत्पन्न होगी। इसी प्रकार, अतीव पूँजी अंतर्वाह घरेलू मुद्रा पर वृद्धि दबाव डालेंगे, जिससे घरेलू निर्यात की प्रतिस्पर्ध्येता प्रभावित होगी, जो कि बदले में, चालू खाता घाटा (CAD) और बढ़ा देगी। तद्नुसार, इस सहज क्रम का पालन किया जाए कि पहले 'चालू खाता' उदार बनाएँ और फिर 'पूँजी खाता विनिमेयता' अपनाएँ।

'पूँजी खाता उदारीकरण' संबंधी भारत के अनुभव को तीन चरणों में देखे जाने की ज़रूरत है– (i) वर्ष 1950-1990, (ii) वर्ष 1990-92 तथा (iii) वर्ष 1992 उपरांत (उत्तर-उदारीकरण)। अपनी स्वतंत्रताप्राप्ति के आरंभिक वर्षों में भारत का ध्यान सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक विकास पर ही रहा। इसमें प्रौद्योगिकी एवं यंत्र-समूह का (खासकर पूँजीगत वस्तुओं का) आयात अपेक्षित था, जिसने भारत के भुगतान-शेष खाते पर दबाव डाला। इसके बावजूद, भारत ने वर्ष 1950 से 1954 तक भुगतान-शेष के अपने 'चालू खाते' में रोकड़ बाकी देखा। द्वितीय पंचवर्षीय योग्या 1956–61 के दौरान, मूल एवं भारी उद्योगों के विकास के माध्यम से तीव्र उद्योगीकरण को अपनाया गया। इसने 1960 के दशक के दौरान 'चालू खाते' में 'प्रतिकूल' शेष की ओर अग्रसर किया। भारत को विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋणों के माध्यम से बाहरी मदद लेनी पड़ी। भारी व्यापार घाटों, ऋण देयताओं एवं विदेशी मुद्रा कोषों में औंधे मुँह गिरावट ने वर्ष 1966 में रुपये के सर्वप्रथम अवमूल्यन की ओर अग्रसर किया। 1970 के दशकारांभ में, यद्यपि निर्यात बढ़ा, आयात में कहीं अधिक तेज़ी से उछाल आया, जिसने निरंतर व्यापार घाटों की ओर अग्रसर किया। इसके बावजूद, वर्ष 1973–74 में, भारत ने यथेष्ट 'चालू खाता अधिशेष' का लाभ उठाया। यह मुख्यतः 'अदृश्य हस्तांतरणों' (यथा– विदेशी मदद के अंतर्वाह) में अधिशेष के कारण हुआ। वर्ष 1973 के पश्चात्, अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की कीमतों में क्रमिक वृद्धि देखी गई, जिसके परिणामस्वरूप, देश के कुल आयात बिल में तेज़ उछाल देखा गया। वर्ष 1980–83 की तीव्र विश्व मंदी के कारण निर्यात निष्पादन हानि ही उठाता रहा। इस अवधि में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को पुनर्भुगतानों ने भारत के भुगतान-शेष पर अतिरिक्त

दबाव डाला। सार्थक बाहरी मदद, वाणिज्यिक ऋणादान एवं अनिवासी भारतीयों की जमाओं के बावजूद, भारत पर बाहरी कर्ज़ भी बढ़ गया।

वर्ष 1990–91 तक, भारत तीन प्रमुख घटनाक्रम देख चुका था, जिन्होंने एक 'भुगतान-शेष संकट' में योगदान दिया। प्रथमतः, 1980 के दशकांत में, तेल की कीमतों में तेज़ उछाल देखा गया। इसके बाद आया – खाड़ी युद्ध, जिसने देश के तेल आयात बिल को और वृद्धि की ओर अग्रसर किया। दूसरे, अनेक भारतीय विदेशों में कार्यरत थे और वे प्रेषित रुपयों के उत्तम स्रोत सिद्ध होते थे। खाड़ी युद्ध की वजह से भारतीय श्रमिकों को घर वापस लौटना पड़ा, जिससे उनकी ओर से प्राप्त होने वाली रकम पर भी लगाम लग गई। तीसरे, सोवियत संघ (USSR) जो भारतीय निर्यातकों के लिए एक बड़ा गंतव्य था, अनेक छोटे-छोटे देशों में विघटित होते देखा गया। इन सभी कारकों ने भारत के विदेशी मुद्रा कोषों को ह्रासोन्मुखी हो जाने की ओर अग्रसर किया, जो अगस्त 1990 के अंत में रु.5480 करोड़ के स्तर से जनवरी 1991 में गिरकर मात्र रु.1666 करोड़ रह गए (यथा– कोषों में लगभग 70 प्रतिशत की औंधे मुँह गिरावट)। जून 1991 तक आते-आते विदेशी मुद्रा कोष इस हद तक गिर गए कि आवश्यक आयात के वित्तीयन हेतु भी वे अपर्याप्त रहे। परिणामतः, भारतीय अर्थव्यवस्था में तीव्र मुद्रास्फीति देखी गई, जिसने भारत को स्वतंत्रताप्राप्ति से अब तक का सबसे भीषण 'भुगतान-शेष संकट' का अनुभव करने को अग्रसर किया।

वर्ष 1991 में आरंभ आर्थिक सुधारों के दौरान, उक्त संकट को नियंत्रित करने के लिए समष्टि-अर्थशास्त्रीय स्थिरीकरण प्रयास किए गए। व्यापार-नीति में कठोर परिवर्तनों, रुपये के अवमूल्यन, रुपये की विनिमेयता, शुल्क-दर कटौतियों एवं आयात उदारीकरण की शुरुआत की गई। पहली बार, वर्ष 1992–93 के केंद्रीय बजट में भारतीय रुपये को अंशतः विनिमय बनाया गया। यह शेष जगत के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के एकीकरण हेतु एक अपरिहार्य कदम था। इसके तहत 60 प्रतिशत विनिमय आय बाज़ार-निर्धारित विनिमय दर पर विनिमेय थी जबकि शेष 40 प्रतिशत आय औपचारिक रूप से निर्धारित विनिमय दर पर। (किसी भी मुद्रा की) विनिमेयता से तात्पर्य होता है कि वह स्वतंत्र रूप से किसी भी अन्य मुद्रा में बदली जा सकती है। विनिमेयता, तद्नुसार, 'चालू खाते' पर व्यापार एवं भुगतानों में परिमाणात्मक प्रतिबंधों के निराकरण के लिहाज़ से आज़ादी देती है। यह एक ऐसी व्यवस्था लागू कर देती है जिसमें बाज़ार विनिमय दर माँग एवं आपूर्ति शक्तियों की मुक्त अंतर्क्रिया द्वारा तय करता है। वर्ष 1993-94 के दौरान, भुगतान-शेष की स्थिति में सुधार निर्यात वृद्धि, कच्चे तेल की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में गिरावट और गैर-तेल आयात की वृद्धि में ढील की वजह से आया। वर्ष 1994–95 के दौरान निर्यात और आयात दोनों सार्थक रूप से बढ़े (निर्यात 18.4 प्रतिशत तक और आयात 22.9 प्रतिशत तक)। इसकी वजह से, भारत के 'अदृश्य भुगतानों' में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और परिणामतः भारत का 'चालू खाता घाटा' (CAD) भी बढ़ा। परंतु इस अवधि में कुल पूँजी-प्रवाह वित्तीय आवश्यकताओं से कहीं अधिक रहा और इसलिए विदेशी मुद्रा कोष में भी अच्छी वृद्धि हुई। निर्यात एवं आयात में यह प्रोत्कर्ष वर्ष 1995-96 में भी जारी रहा। लेकिन, साथ ही उक्तघाटा (CAD) बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद के 1.7 प्रतिशत तक जा पहुँचा। वर्ष 2000–01 में यह घाटा (CAD) घटकर जीडीपी के लगभग 0.5 प्रतिशत पर आ गया। उसके बाद से वह मुख्यतः कम (लगभग 2–3 प्रतिशत की सीमा तक) ही बना हुआ है (यथा– वर्ष 2016–17 में GDP का 0.7 प्रतिशत और वर्ष 2017–18 के प्रथम अर्द्धांश में GDP का 18 प्रतिशत)। वर्ष 2002–03 से अब तक सकल प्राप्तियों एवं भुगतानों में महत्त्वपूर्ण

वृद्धि के कारण भारत के 'अदृश्य खाते– में तीव्र वृद्धि दखी गई है। सेवा निर्यात में विपुल वृद्धि, खासकर सॉफ्टवेयर एवं सूचना प्रौद्योगिकी (IT) सेवाओं में, और समुद्रपार से प्रेषित रुपयों ने इसमें काफी योगदान दिया है। वर्ष 2001–08 की अवधि में, 'अदृश्य प्राप्तियाँ' चालू खाता प्राप्तियों का लगभग 45 प्रतिशत रहीं, जबकि अदृश्य भुगतान चालू खाता भुगतानों का लगभग 25 प्रतिशत रहे। 'अदृश्य खाते' में भुगतानों की तुलना में प्राप्तियों की निचली स्थिति ने वर्ष 2001–08 की अवधि में लगभग 35 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर्शाते हुए अधिशेष वृद्धि में योगदान दिया जिसने अनुरूप अवधि में व्यापार घाटे की पूरी तरह वित्त पूर्ति कर दी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत में उक्त उपलब्धियाँ रुपये के अधिमूल्यन, ऊँची ब्याज़ दरों, उत्तरोत्तर बढ़ती तेल की कीमतों और विश्वभर में प्रमुख व्यापारी देशों में आम आर्थिक मंदी के बावजूद प्राप्त की है। यहाँ यह भी देखने की बात है कि पूँजी अंतर्वाहों में वर्धमान रुझान अपने संयोजन में एक बदलाव के साथ देखने में आया है (जैसे– सेवा क्षेत्र में उछाल)। एक अन्य स्वागत योग्य अभिलक्षण रहा – सकल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) अंतर्वाह में वृद्धि। वर्ष 2005 और 2006 में, भारत चीन के बाद दूसरे सर्वाधिक आकर्षक (FDI) गंतव्य के रूप में उभरा। इसने समग्र भुगतान-शेष अधिशेष की ओर अग्रसर किया, जिसके परिणामस्वरूप विदेशी विनिमय निचय में अभिवृद्धि हुई। वर्तमान में, 'सेवा खाते' पर रोकड़ बाकी के कारण एक निम्नतर (CAD) के साथ वृहद् माल व्यापार घाटे का सहअस्तित्व देखा जा रहा है।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 षब्दों में लिखें।)

1) अपने 'पूँजी खाते' से पूर्व भुगतान-शेष के 'चालू खाते' को उदारीकृत करना क्यों पंसद किया जाता है? 'पूर्ण विनिमेयता' से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

2) भारतीय रुपये का प्रथम अवमूल्यन कब किया गया? किन परिस्थितियों ने इस ओर अग्रसर किया?

....

....

....

....

....

3) कुछ ऐसी दशाओं का वर्णन करें जिन्होंने भारत की 1970 एवं 1980 के दशकों के दौरान, भुगतान-शेष के मोर्चे पर अस्थिरता को बनाए रखा था।

....

....

....

....

....

....

4) स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् भारत के भीषणतम 'भुगतान-शेष संकट' से निबटने के लिए 1990 के दशकारंभ में कौन-से नीति-परिवर्तन लागू किए गए?

....

....

....

....

....

5) 1990 के दशकारंभ में भुगतान-शेष मोर्चे पर सहजता लाने में किन कारकों ने योगदान दिया? 1990 के दशक से दो हजार के दशकारंभ तक चालू-खाता घाटे का स्तर क्या रहा?

....

....

....

....

....

6) 2000 के दशकांत में, भुगतान-शेष स्थिति में और अधिक सहजता के लिए किन कारकों ने योगदान दिया है?

....

....

....

....

....

13.4 चालू-खाता घाटे का अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक वर्णन

किसी अर्थव्यवस्था के 'चालू-खाता घाटा' और विकास चरण के बीच संबंध समझना बेहद ज़रूरी है। यह एक सुविदित तथ्य है कि निम्न-आय विकासशील देशों (LDCs) और अल्प-विकसित देशों (UDCs) को पूँजीगत माल आयात करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई विकसित देश अधिक आयात नहीं करता है। जैसा कि हमने ऊपर देखा, चालू-खाता घाटा (CAD) किसी देश के बचत अंतर को मापता है, यथा– बचत के मुकाबले निवेश का आधिक्य। यह अंतर शेष जगत से घाटा झेल रहे देश को संसाधनों के निवल हस्तांतरण से पाटा जाता है। इसका अर्थ है कि ऊँचा घाटा (CAD) अपने आप में किसी अर्थव्यवस्था के लिए तब तक अपकारी नहीं होता जब तक कि उसकी ओर पर्याप्त विदेशी धन का प्रवाह होता

रहे। तथापि, किसी भी विकासशील देश में, ऊँचा घाटा (CAD) कभी-कभी एक भयप्रद स्थिति उत्पन्न कर देता है। विकासशील देशों को एक पूरक निवेश की आवश्यकता होती है और यदि यह शेष जगत से किसी बड़े पैमाने पर हुआ तो इसका अर्थ होगा कि देश के लिए अपनी निजी बचत के सहारे ताज़ा निवेशों में पैसा लगाते रहना संभव न होगा। अंततोगत्वा, इसीलिए, यह अपने पूँजी अंतर्वाह को आत्मसात् कर सही दिशा देने हेतु किसी अर्थव्यवस्था की अपनी क्षमता पर ही निर्भर करेगा। यदि संसाधन वितरण इस प्रकार किया जा सकता है कि उससे पुनर्भुगतान (उत्पादन के माध्यम से) की उसकी क्षमता बढ़े, तो ऊँचा CAD GDP अनुपात धारणीय हो सकता है। यदि ऐसा न किया जा सके तो वह किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास-मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है। बेहद ऊँचा अनुपात दीर्घावधि में अधारणीय सिद्ध हो सकता है, जैसा कि पूर्व-एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में हुआ (1990 के दशकांत में) और उससे किंचित् पूर्व (1994 में) मैक्सिको में। उस सीमा तक, चालू-खाता घाटे का निम्न अनुपात अपने लाभ दर्शाता है। परंतु, बेहद निम्न अनुपात अपने साथ अवसर लागत, यथा– उन संसाधनों से लाभ उठाने में अक्षम होना जिन्हें बाहर से प्राप्त किया जा सकता हो, लेकर आता है। यही कारण है कि हर अर्थव्यवस्था अपना चालू-खाता घाटा नियंत्रित करना चाहती है जिसका अर्थ है – एक स्वस्थ अथवा धारणीय शेष बनाए रखना। इसीलिए, यह ज्ञातव्य है कि ऊँचा घाटा (CAD) आवश्यक रूप से किसी देश के आर्थिक विकास में अवरोध नहीं होता।

13.4.1 चालू-खाता घाटा और विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ

विकासशील देशों में प्रायः प्रौद्योगिकी का अभाव होता है। इस कारण, उन्हें प्रौद्योगिकी एंव यंत्रादि के लिए आयात पर निर्भर रहना पड़ता है, जिस पर उनके भुगतान-शेष का एक अच्छा-ख़ासा भाग खर्च हो जाता है। बड़ी मात्रा में पूँजीगत माल आयात करने के अलावा, अपनी विकास प्रक्रिया को उत्प्रेरित करने के लिए, विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को उपभोज्य वस्तुएँ, कच्चा माल एवं कलपुर्ज़े भी आयात करने पड़ते हैं। विकास के आरंभिक चरणों में अनुसंधान एवं विकास (R&D) तथा नवाचार प्रायः धीमा ही रहता है और इस वजह से उन्हें अनेक प्रकार की सेवाएँ भी विकसित अर्थव्यवस्थाओं से ही आयात करनी पड़ती हैं। इस प्रकार के परिदृश्य में, आयात की कुल मात्रा का निर्यात आय से कोई मेल नहीं रहता, यही ऊँचे घाटे (CAD) में परिणत होता है। विगत कुछ दशकों, वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विकासशील देशों को अपने मानव संसाधनों के निर्यात पर कुछ लाभ पहुँचाया है। इससे विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ एक ऋणी अर्थव्यवस्था की अवस्था से निकलकर ऋणदाता अर्थव्यवस्था कहलाने लगीं। दूसरे शब्दों में, वैश्वीकरण ने इस बात में अपना सकारात्मक योगदान दिया है कि केवल निवेश ही नहीं बल्कि तकनीकी जानकारी भी हासिल की जाए। उदाहरण के लिए, चीन ने, अपना आयात नियंत्रित कर और निम्न-लागत विनिर्माणन निर्यात बढ़ाकर, 'चालू खाता अधिशेष' की प्रस्थिति हासिल करने में सफलता प्राप्त की। वर्ष 2017 में, उसका चालू खाता अधिशेष उसके जीडीपी का 1.3 प्रतिशत था, जो कि वर्ष 2016 में 1.8 प्रतिशत से घटकर हुआ था। यह अनुपात वर्ष 2007 में 10 प्रतिशत की ऊँचाई से निरंतर गिरता रहा है। यह रुझान जारी रहा और वर्ष 2018 में वह अपने सकल घरेलू उत्पाद के 0.4 प्रतिशत घाटे (CAD) वाला देश कहलाने लगा। इस श्रेणी में अन्य उदाहरण हैं– ईरान और इराक।

13.4.2 चालू-खाता घाटा और विकसित अर्थव्यवस्थाएँ

विकसित देशों के पास आमतौर पर एक सशक्त विनिर्माणन क्षेत्र होता है। वे विकासशील देशों को प्रौद्योगिकी और मशीनें निर्यात करते हैं। मगर वे भी बड़े (CAD) झेलते हैं। उदाहरण के लिए, वर्ष 2017 में अमेरिका का CAD 2.3 प्रतिशत था, जो कि उसके व्यापक आर्थिक आधार के हिसाब से काफी बड़ा था। चालू-खाता घाटे के इस मान के आस-पास (वर्ष 2017 में) अन्य विकसित अर्थव्यवस्थाएँ भी रहीं– तुर्की (5.6 प्रतिशत), अर्जेंटीना (4.9 प्रतिशत), यूनाइटेड किंगडम (3.7 प्रतिशत), मिस्र (3.4 प्रतिशत) और ऑस्ट्रेलिया (2.7 प्रतिशत)। विचारात्मक रूप से, 'चालू-खाता अधिशेष' (CSS) CAD का विलोम होता है, जो कि एक ऐसी स्थिति है जहाँ (X – M) का मान धनात्मक होता है (जब कि CAD के लिए ऋणात्मक चिन्ह होता है)। ऐसे कुछ विकसित देशों के उदाहरण जहाँ ऊँचा CSS (वर्ष 2017 में) देखा गया, इस प्रकार हैं– जर्मनी, जापान, चीन, दक्षिण कोरिया, नीदरलैंड, ताइवान, स्विट्ज़रलैंड, सिंगापुर, इटली और थाईलैंड। यह हमारे समक्ष भुगतान-शेष के निपटान खाते संबंधी एक महत्त्वपूर्ण संकल्पना को ले आता है।

13.4.3 निपटान खाता

भुगतान-शेष खाते में घाटा अथवा अधिशेष एक निरंतर-परिवर्तनशील अवस्था दर्शाता है, यथा– यह वर्ष दर वर्ष बदलता रहता है। भुगतान-शेष का समग्र स्वास्थ्य और उसका किसी देश पर प्रभाव, भुगतान-शेष का 'निपटान खाते' से मापा जा सकता है (जिसे 'औपचारिक आरक्षित परिसंपत्ति खाता' भी कहा जाता है)। यह 'निपटान खाता' किसी देश की 'तरल एवं गैर-तरल देयताओं' संबंधी दशा में परिवर्तन को मापता है और तद्नुसार वर्ष के दौरान उस देश की औपचारिक 'आरक्षित परिसंपत्तियों' में परिवर्तन को भी। किसी भी देश की औपचारिक 'आरक्षित परिसंपत्तियों' में शामिल होते हैं – उसका स्वर्ण भंडार, उसकी विनिमय विदेशी मुद्राओं से उपलब्धियाँ और 'विशेष आहरण अधिकार' (SDRs)। यह किसी देश की निवल औपचारिक आरक्षित परिसंपत्तियों में लेन-देन दर्शाता है।

भारत में, विदेशी मुद्रा आरक्षित भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारित अथवा नियंत्रित विदेशी परिसम्पत्तियों को इंगित करता है। ये विशेष प्रयोजनार्थ निधियाँ स्वर्ण अथवा किसी विशिष्ट मुद्रा से ही बने होते हैं। ये विदेशी मुद्राओं में नामकृत विशेष आहरण अधिकार एवं पण्य प्रतिभूतियाँ भी हो सकते हैं, जैसे– सरकारी हुण्डियाँ, सरकारी बाँड, निगमित बांड-पत्र तथा साधारण अंशपत्र (इक्विटीज़) एवं विदेशी मुद्रा ऋण। औपचारिक आरक्षित परिसम्पत्तियों के लिहाज से (वर्ष 2018 में), चीन का प्रथम स्थान रहा है, जिसके बाद आते थे– जापान, स्विट्ज़रलैंड, साऊदी अरब, ताइवान, रूस, हाँगकाँग, भारत, दक्षिण कोरिया और ब्राज़ील। इस सूची में देश चूँकि अपनी धारित 'आरक्षित परिसम्पत्तियों' के घटते क्रम में हैं, यह दर्शाता है कि किसी भी वर्ष विशेष हेतु किसी अर्थव्यवस्था का आपेक्षिक स्वास्थ्य उसके 'सुगठित आरक्षित' पर भी निर्भर करता है, न कि अकेले भुगतान-शेष के चालू खाते पर। यह देश की संवृद्धि के परिप्रेक्ष्य में अपने घाटे (CAD) के निधिकरण हेतु पूँजी प्रवाहों को आकर्षित करने के लिए किसी देश की मुद्रा का समुत्थान शक्ति अथवा स्थिरता को उत्तम अवस्था दर्शाता है। दूसरे शब्दों में, उच्च 'आरक्षित परिसम्पत्तियाँ' किसी ऐसे देश के निवेश परिवेश को प्रतिबिंबित करती हैं जिसके वित्त बाज़ारों पर बारंबार संदिग्ध आक्षेपों को खतरा नहीं होता। इस प्रकार के आर्थिक परिवेश में, विदेशी निवेश (खासकर FDI) अर्थव्यवस्था की निर्यात

क्षमताओं को बढ़ाने में योगदान देता है। आगे चलकर, यह घाटे (CAD) को पहले से अधिक धारणीय स्तरों पर ले जाने में मदद करता है।

13.4.4 चालू-खाता शेष को प्रभावित करने वाले कारक

चालू-खाता असंतुलन अनेक कारणों से पैदा होता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जिंसों की कीमतों का तेज़ी से घटना-बढ़ना एक प्रमुख कारण है। उदाहरण के लिए, पिछले दशक में कच्चे तेल की कीमतों में तेज़ उछाल देखा गया। कच्चे तेल की वैश्विक कीमतों में यह विशिष्ट अभिलक्षण अधिकांश देशों के व्यय प्रतिमान को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। एक अन्य कारक यह है कि कोई भी देश विनिर्माण में विदेशी फर्मों के लिए एक प्रमुख केंद्र के रूप में काम कर सकता है, बेशक उसकी अपनी जनसंख्या के पास उमड़ते निर्यात से अपनी वर्धमान आय को संतुलित करने हेतु यथेष्ट किसी मापदंड पर आयात उपभोग हेतु अर्जन क्षमता का अभाव हो (उदाहरणार्थ, चीन)। यह कारक मुक्त-व्यापार संधियों से और सशक्त हो जाता है। एक तीसरा कारक तब नज़र आता है जब कोई देश अपनी संवृद्धि हेतु निर्यात पर अत्यधिक निर्भरता के कारण दीर्घकालिक घरेलू माँग की गतिहीनता से ग्रस्त हो (जैसे– जापान और ज़र्मनी)। अंततः, चालू-खाता असंतुलन राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्ध्येता के अभाव से भी उत्पन्न हो सकता है। देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय तनाव भी 'व्यापार की शर्तों' (ToT) को प्रभावित करते हैं।

बोध प्रश्न 3 (नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50—100 षब्दों में लिखें।)

1) ऊँचा घाटा (CAD) होना क्या किसी अर्थव्यवस्था के लिए सदैव एक अवरोध साबित होता है? क्यों?

....

....

....

....

....

....

2) चीन का उदाहरण किस प्रकार उच्च/निम्न घाटे (CAD) के सापेक्ष गुणों की व्याख्या करता है? इस प्रसंग के समर्थन में आय कौन-सा आनुभविक साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं?

....

....

....

....

....

....

3) वैश्वीकरण किस प्रकार विशेष रूप से विकासशील देशों के लिए लाभदायक रहा है?

....

....

....

....

....

4) 'निपटान खाते' से आप क्या समझते हैं? यह किस प्रकार महत्त्वपूर्ण होता है?

....

....

....

....

....

5) 'चालू-खाता संतुलन' को प्रभावित करने वाले कुछ कारक बताएँ।

....

....

....

....

....

13.5 सार-संक्षेप

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (यथा, देशों के बीच व्यापार) तुलनात्मक लाभ के फायदे लेने के लिए ज़रूरी होता है। जबकि निर्यात और आयात समान रूप से महत्त्वपूर्ण होते हैं, किसी देश का निर्यात उसके कुल आयात की तुलना में उच्चतर स्तर पर रखना आवश्यक होता है। यदि ऐसा किया जा सके तो देश 'चालू-खाता अधिशेष' की स्थिति में आ जाता है; अन्यथा, CAD (अर्थात् चालू-खाता घाटा) की स्थिति में। शेष जगत् के देशों के साथ किसी देश के सभी निर्यात-आयात संबंधी लेन-देनों को क्रमबद्ध रूप से दर्ज़ करने की पद्धति ही भुगतान-शेष खाता कहलाती है। संकेंद्रित नीतियों द्वारा, किसी देश की प्रस्थिति को एक CAD देश से बदलकर एक CSS (चालू-खाता अधिशेष) वाला देश बना देना संभव है। यह ज्ञात होने पर कि यह एक वर्ष-दर-वर्ष परिवर्तनशील प्रस्थिति है, अच्छे-खासे CAD की स्थिति में रहना भी अनिवार्यतः बुरा नहीं होता। आवश्यक यह है कि किसी देश की कर्ज़ अथवा अंतर्राष्ट्रीय भुगतान संबंधी देयताओं के वित्तीयन हेतु वांछित पूँजी प्रवाह हो। इस पृष्ठभूमि में, इस इकाई में, भुगतान-शेष, भुगतान-शेष खाता, भुगतान-शेष घटकों (यथा– चालू खाता, पूँजी खाता एवं आरक्षित परिसम्पत्ति खाता), CAD] CSS एवं निपटान खाता जैसी अनेक महत्त्वपूर्ण संकल्पनाओं पर चर्चा की गई। भारत की तुलना में अनेक देशों के CAD

एवं CSS की तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करने के अलावा, इकाई में चालू-खाता असंतुलन' पैदा करने वाले अनेक कारकों को भी इंगित किया गया है।

13.6 शब्दावली

व्यापार की शर्तें : निर्यात और आयात के बीच संबंध। यही किसी देश के निर्यात के प्रति आयात की सापेक्ष कीमत होती है।

विशेष आहरण अधिकार : स्वर्ण का स्थान लेने हेतु सृजित एक साधन। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा खाते की इकाई स्वरूप इन्हीं (SDRs) को प्रयोग किया जाता है। ये कोष के सदस्यों की करेंसी पर निर्बाध रूप प्रयोग हो सकने वाले दावे हैं।

चालू-खाता घाटा : यह ऐसे किसी देश के व्यापार को मापने का मापदंड होता है, जहाँ आयातित माल एवं सेवाओं का मान उसकी निर्यात की गई वस्तुओं एवं सेवाओं के मान से अधिक हो। चालू खाते में निवल आय (जैसे– ब्याज़ और लाभांश) तथा हस्तांतरण (जैसे– विदेशी मदद) शामिल होते हैं, हालाँकि ये घटक कुल चालू खाते की एक लघु अंश मात्र का हिसाब देते हैं।

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Basu, Kaushik (ed.) (2008). The Oxford Companion to Economics in India, OUP, New Delhi.

2) Basu, Kaushik and Annemie Maertens (eds.) (2011). The New Oxford Companion to Economics in India, OUP, New Delhi.

3) Ratha, D, S Mohapatra and Z Xu (2008). Outlook for Remittances 2008-10, Development Prospects Group, Migration and Remittances Team, World Bank.

4) Suparna Karmakar, Rajiv Kumar and Bibek Debroy (eds.) (2008). India's Liberalisation Experience, Sage, New Delhi.

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) यह किसी देश के अन्य देशों के साथ निर्यात एवं आयात विषयक सभी लेन-देशों का एक क्रमबद्ध लेखा-जोखा होता है।

2) परिमाण, सम्मिश्रण एवं लक्ष्य। परिमाण 'मूल्य के रूप' में मापा जाता है और अंतर्राष्ट्रीय लेन-देनों का आकार इंगित करता है। सम्मिश्रण का अर्थ होता है – निर्यात एवं आयात में संलिप्त जिंस अथवा क्षेत्र। लक्ष्य विश्व के अन्य देशों के साथ आर्थिक अनुबद्धताएँ इंगित करता है। इसमें किसी देश के निर्यात गंतव्य एवं उसके आयात के स्रोत शामिल होते हैं।

3) भुगतान-शेष एक लेखा वक्तव्य होता है जो देश के नागरिकों एवं शेष जगत के बीच निर्यात एवं आयात संबंधी खाते की सही स्थिति दर्शाता है। किसी देश की विदेशी मुद्रा आरक्षित कोष की स्थिति जानना उपयोगी सिद्ध होता है। यह सरकार के लिए अपनी मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति निरूपित करने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। यह किसी अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के संसूचक के रूप में भी उपयोगी सिद्ध होता है।

4) भुगतान-शेष के तीन प्रमुख 'खाता-शीर्षक' हैं– चालू खाता, पूँजी खाता और आरक्षित परिसम्पत्ति खाता। चालू खाते के दो उप-शीर्षक हैं– BoT और BoS अर्थात् 'व्यापार-शेष' और 'सेवा-शेष'। BoT और BoS क्रमशः 'वस्तुओं' एवं 'सेवाओं' के निर्यात एवं आयात का लेखा प्रग्रहण करते हैं। 'भुगतान-शेष का चालू खाता' = BoT + BoS.

5) चालू खाता घाटा (CAD) का अर्थ है– कुल निर्यात एवं कुल आयात के बीच अंतर। 'घाटा' शब्द का अर्थ होता है कि व्यापार उल्टा चल रहा है अर्थात् निर्यात आयात से अधिक होने की बजाय आयात निर्यात से अधिक हो रहा है। यह अंतर या घाटा एक 'ऋणात्मक' चिन्ह से व्यक्त किया जाता है जिसे ऋणादान अथवा कर्ज़ द्वारा संतुलित किया जाना ज़रूरी होता है। बढ़ते CAD का अर्थ होगा – एक उच्चतर ऋणात्मक मान और अपेक्षाकृत अधिक ऋणादान पाने की आवश्यकता।

बोध प्रश्न 2

1) पूँजी खाते का उदारीकरण किसी भी अर्थव्यवस्था को विनिमय दरों में बड़े-बड़े में उतार-चढ़ावों के प्रति सुप्रभाव्य बना देता है। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में व्यापक सट्टेबाजी पूँजी के अतीव अंतर्वाह एवं बहिर्वाह को प्रेरित कर सकती है, जिससे पूंजी खाते में अस्थिरता उत्पन्न होगी। अतएव, प्रथम 'चालू खाता' उदारीकृत करना और फिर क्रमिक रूप से 'पूँजी खाता विनिमेयता' अपनाना समझादारी होगा। पूर्ण विनिमेयता का अर्थ है – भुगतान-शेष के 'चालू' और 'पूँजी' दोनों खातों पर पूरी विनिमेयता।

2) वर्ष 1996 में। भारी व्यापार घाटों, ऋण देयताओं एवं आरक्षित विदेशी मुद्राकोष में तेज़ गिरावट ने इस ओर अग्रसर किया।

3) अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की कीमतों में क्रमिक वृद्धि, जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1973 के पश्चात् कुल आयात बिल में तेज़ उछाल आया; वर्ष 1980–83 की अंतर्राष्ट्रीय महामंदी; अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के पुनर्भुगतान; '1980 के दशकांत में तेल की कीमतों में फिर तेज़ उछाल, जिसके बाद खाड़ी युद्ध हुआ; सोवियत संघ का विघटन, जिसके परिणामस्वरूप उन नवोदित देशों को निर्यात घट गया; आदि।

4) व्यापार नीति में परिवर्तन, रुपये का अवमूल्यन, रुपये की विनिमेयता, शुल्क-दरों में कमी, आयात उदारीकरण, रुपये की आंशिक विनिमेयता, आदि।

5) निर्यात में वृद्धि, कच्चे तेल की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में गिरावट तथा गैर-तेल आयात की वृद्धि में मंदी। वर्ष 1995–96 में, CAD भारत के GDP का 1.7

प्रतिशत रहा। वर्ष 2000–01 तक CAD और घटकर GDP का मात्र 0.5 प्रतिशत रह गया।

6) वर्ष 2002–03 से सकल प्राप्तियों एवं भुगतानों में महत्त्वपूर्ण वृद्धि के कारण भारत के 'अदृश्य खाते' में तेज़ उछाल; सेवा निर्यात में प्रबल वृद्धि, ख़ासकर सॉफ्टवेयर एवं सूचना प्रौद्योगिकी (IT) संबंधी सेवाओं में; तथा समुद्र पार से प्रेषित राशियाँ।

बोध प्रश्न 3

1) नहीं। अर्थव्यवस्थाएँ पूँजी अंतर्वाहों की सेवाएँ कायम रखने में सक्षम हो सकती हैं, बशर्तें वित्तीय अंतर्वाहों को लाभ के साथ दिशा प्रदान की जाए। यदि आर्थिक परिवेश लाभप्रद रूप से नियंत्रित किया जाए तो ऐसे अंतर्वाहों से किए गए निवेश घरेलू आय उत्पन्न करते हैं, जो अर्थव्यवस्था को अपने वित्त अंतर्वाह का लाभ लेने में मदद करता है।

2) चीन का उदाहरण अपने आप में अनोखा है, जहाँ CAD के एक बहुत ऊँचे स्तर की प्रस्थिति से उबरकर वह हाल के वर्षों में CSS वाले देशों की कतार में आ खड़ा हुआ है। ऐसा उसने नियंत्रित आयात और अपने 'निम्न कौशल विनिर्मित वस्तुओं' के निर्यात में नियमित वृद्धि करके किया। आनुभविक पदों में, उसने वर्ष 2007–18 की अवधि में अपना घाटा (CAD) लगभग 10 प्रतिशत के स्तर से क्रमिक रूप से –0.4 प्रतिशत पर लाकर किया है।

3) वैश्वीकरण प्रभावी रूप से किसी पूँजी प्रचुर देश से निवेश को किसी पूँजी-अभाव वाले (परंतु संभवतः आर्थिक रूप से धनी) देशों की ओर अंतरित कर देता है। विकासशील देश सस्ते अकुशल श्रमिकों, अच्छे कुशल कार्य-बल, विशिष्ट प्रकार के कच्चा माल एवं प्राकृतिक संसाधनों के लिहाज से विशिष्टतापूर्वक धनी होते हैं। वहाँ अपने अन्यथा प्रचुर मानव एवं सामग्री संसाधनों को काम में लेने हेतु आवश्यक प्रौद्योगिकी (जो कि विपुल निवेश से ही प्राप्त होती है) का ही से अभाव होता है। इस दृष्टिकोण से देखें जाने पर, विगत 3–4 दशकों में अनेक विकासशील देशों का अनुभव वैश्वीकरण के लाभकारी पहलुओं को सिद्ध करता है।

4) जबकि वास्तविक CAD, यथा (X – M), धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकता है (घाटा यदि ऋणात्मक और अधिशेष यदि यह धनात्मक हुआ), अर्थव्यवस्था पर इसका यथार्थ प्रभाव देश के 'निपटान खाते' से तय किया जाता है। यह 'निपटान खाता' किसी देश की 'तरल एवं गैर-तरल देयताओं' की स्थिति में परिवर्तन का मापदंड होता है। तद्नुसार, जबकि (X – M) केवल तरल परिसंपत्तियों को लेता है, 'निपटान खाते' में गैर-तरल परिसंपत्तियों का मान शामिल होता है, जैसे– स्वर्ण भंडार, विनिमेय विदेशी मुद्राओं से उपलब्धियों तथा 'विशेष आहरण अधिकार' (SDRs)। किसी विशिष्ट वर्ष के लिए, किसी अर्थव्यवस्था का सापेक्षिक स्वास्थ्य उसके 'सुगठित आरक्षित कोष' पर भी निर्भर करता है, न कि सिर्फ भुगतान-शेष के चालू खाते। 'निपटान खाते' का महत्त्व इस तथ्य से इंगित होता है कि यह अपने CAD के निधिकरण हेतु पूँजी अंतर्वाह आकर्षित करने के लिए किसी देश की मुद्रा की समुत्थान शक्ति (अथवा स्थिरता) को प्रतिबिंबित करता है (जहाँ देश की संवृद्धि संभावनाएँ उच्च मानी जाती हों)।

5) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तेज़ी से जिंसों की कीमतों में उतार-चढ़ाव; आयात उपभोग हेतु आवश्यक क्रय-शक्ति के अभाव से ग्रस्त किसी देश की घरेलू जनसंख्या का बड़ा भाग (एक ऐसे पैमाने पर जो उमड़ते निर्यात से उसकी बढ़ती आय को संतुलित करने हेतु पर्याप्त हो – वह कारक जो मुक्त व्यवहार के साथ सशक्त होता जाता है); घरेलू माँग गतिहीनता (संवृद्धि हेतु निर्यात पर अत्यधिक निर्भरता के कारण); राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर प्रतिस्पर्ध्येता की कमी; तथा देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय तनाव।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 14 शासन व संस्थाओं की भूमिका : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारत*

संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 विषय प्रवेश

14.2 सरकार और शासन

14.2.1 सरकार के प्रकार

14.2.2 सरकार और विकास

14.2.3 शासन

14.2.4 सुशासन

14.3 शासन के संघटक

14.3.1 आर्थिक शासन

14.3.2 शासनार्थ संस्थाएँ

14.4 शासन सूचकांक

14.5 सार-संक्षेप

14.6 शब्दावली

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें/संदर्भ ग्रंथादि

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- सरकार के सामान्य प्रकारों के अभिलक्षण बता सकें;
- सरकार और शासन के बीच अंतर स्पष्ट कर सकें;
- सरकार के प्रकार और विकास के बीच संबंध निरूपित कर सकें;
- 'शासन' और 'सुशासन' के बीच अंतर स्पष्ट कर सकें;
- शासन के आर्थिक एवं संस्थागत महत्त्व के बीच अंतर प्रकट करते हुए उसके दो महत्त्वपूर्ण घटकों पर प्रकाश डाल सकें;
- विकास हेतु अपनी समीक्षा के साथ महत्त्वपूर्ण शासन सूचकांकों पर चर्चा कर सकें, और
- अपनी पड़ोसी अर्थव्यवस्थाओं की शासन संस्थाओं के साथ भारत की शासन संस्थाओं की गुणवत्ता के लिहाज से उसकी तुलनात्मक स्थिति का संक्षिप्त वर्णन कर सकें।

---

* प्रो. डी.एन. रेड्डी, उस्मानिया विश्वविद्यालय

14.1 विषय प्रवेश

विकास अध्ययनों में शासन और संस्थाओं की अवधारणा का प्रयोग अपेक्षाकृत नई घटना है। अतः, शासन अथवा संस्थाओं की अभी तक कोई सर्वजनीन रूप से स्वीकृत परिभाषा सामने नहीं आई है। इस तथ्य के आलोक में, इस विषय पर लेख, पुस्तकें आदि विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) जैसे बहुपक्षीय संगठनों के कुछ शोध अध्ययनों एवं रिपोर्टों तक ही सीमित हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल पश्चात् की अवधि में 'विकास अर्थशास्त्र' के विकास-काल से ही बहस के प्रमुख मुद्दों में विकास में 'राज्य' की भूमिका रही है। यह विकास में 'बाज़ार' की भूमिका से नितांत भिन्न होती है जो कि मुख्यधारा के अर्थशास्त्र में देखी जाती है। 'शीत युद्ध' की अवधि में, 'समाजवादी' और 'पूँजीवादी' प्रखण्डों के बीच राजनीतिक मतभेद देखने में आया। विकास पर बहस ने तब 'राज्य बनाम बाज़ार' के रूप में एक सैद्धांतिक अंतर्धारा का रूप धारण कर लिया था। 1960 के दशक में, जापान और दक्षिण कोरिया में संवृद्धि में त्वरित प्रगति राज्य की पहलकदमियों से प्रेरित मानी गई। ये राज्य 'विकासात्मक राज्य' माने जाने लगे थे। आगे चलकर 'विकासात्मक राज्य' के मुख्य अभिलक्षण हाँगकाँग, सिंगापुर और ताइवान जैसी अन्य पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं पर भी लागू किए गए। भारत जैसे अन्य देश भी थे जहाँ राज्य एक महती भूमिका निभाता तो था परंतु बेहद निम्न संवृद्धि दरों के साथ। 1980 के दशक का अंत होते-होते, सोवियत संघ के विघटन और शीत युद्ध की समाप्ति के साथ ही, भारत जैसी राज्य-निर्देशित अर्थव्यवस्थाओं में धीमी संवृद्धि का 'श्रेय' 'राज्य विफलता' को दिया जाने लगा। इससे विकास पर बहस का रुख़ बाज़ार-प्रेरित संवृद्धि को सरल बनाने हेतु 'सुशासन' की ओर हो गया। 1990 के दशक के पूर्वार्ध में, पश्चिमी सरकारों और सहायता संस्थानों ने 'शासन' को आर्थिक मदद प्रदान करने के लिए एक बड़ा शर्त बना दिया। इसके साथ ही, विकास में 'शासन संबंधी मुद्दों एवं संस्थाओं' पर शोध की दिशा में एक सुस्पष्ट रुझान देखा गया और अधिक हाल में, संयुक्त राष्ट्र की एस्केप (UNESCAP) रिपोर्ट (2017) में देखा गया कि— 'शासन की गुणवत्ता और सार्वजनिक संस्थाओं की प्रभावोत्पादकता वे निर्णायक कारक हैं जो विकास प्रक्रिया में योगदान देते हैं।'

14.2 सरकार और शासन

अपने शाब्दिक अर्थ में, 'सरकार' और 'शासन' दोनों शब्द पर्याय स्वरूप प्रयोग किए जाते हैं। परंतु अपने सांस्थानिक आयाम में 'शासन' शब्द के बढ़ते प्रयोग के साथ, सरकार को उसके राजनीतिक दृष्टिकोण से भिन्न माना जाता है और उस रीति के लिहाज से देखा जाता है जिससे प्राधिकार (यथा, वैध सत्ता) प्रयोग किया जाता है। जहाँ सत्ता अन्य लोगों के क्रियाकलाप को प्रभावित करने की क्षमता का नाम है, वहीं प्राधिकार ऐसा करने का अधिकार है। अतएव, सरकार किसी देश में वैध सत्ता प्रयोग करने हेतु एक प्राधिकरण होती है। 'सरकार' और 'राज्य ' शब्द भी प्रायः पर्याय के रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

14.2.1 सरकार के प्रकार

सरकारों को मोटे तौर पर तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है; यथा राजतंत्र, अधिनायकत्व और लोकतंत्र। राजतंत्र किसी देश पर शासन करने हेतु वैध सत्ता का

प्रयोग करने के लिए किसी राज्य अथवा शासक द्वारा प्राधिकार के उत्तराधिकार का परंपरागत रूप है। यह आज के युग में एक दुर्लभ अपवाद है। अतः, अधिनायकत्व और लोकतंत्र, अपनी विभिन्न छटाओं के साथ, वर्तमान में तमाम देशों में सरकार के दो व्यापकतः प्रचलित रूप हैं।

अधिकनायकत्व अर्थात् तानाशाही एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित सत्तावादी शासन-प्रणाली हाता है जिसमें सत्ता का संकेंद्रण कुछ ही हाथों में रहता है। अपने निकृष्टतम रूप में, कोई एकल व्यक्ति-केंद्रित अधिनायकत्व होता है। ऐसी रणनीतियों में जो अधिनायक सत्ता में बने रहने के लिए अपनाते हैं, शामिल होते हैं– बल-प्रयोग, नागरिक स्वतंत्रताओं का लिंबन एवं लोगों को आवाज़ उठाने अथवा आज़ादी प्रयोग करने पर पाबंदी, स्वयं-नियंत्रित संवैधानिक प्रक्रिया, संरक्षण या स्वमत-प्रचार (जो कि फ़ासीवादी प्रवृत्तियाँ ही हैं), आदि। अधिकांश अधिनायकत्व या तो सेना-समर्थित होते हैं अथवा निलंबित जन-प्रतिनिधित्व अधिकारों वाली प्रत्यक्ष सैन्य शासन-व्यवस्थाएँ होते हैं।

लोकतंत्र प्रतिनिधि सरकारों के माध्यम से लोगों को वैध सत्ता हस्तांतरण से निर्दिष्ट सरकार का रूप होता है। लोकतांत्रिक शासन को वैध सत्ता के हस्तांतरण का एक लंबा इतिहास है और इसे तीन 'लोकतंत्र की तरंगों' के रूप में इंगित किया जाता है। प्रथम तरंग रही – 'राजतंत्र द्वारा संसद, स्वतंत्र चुनाव एवं भाषण की स्वतंत्रता' को और अधिक शक्ति प्रदान किए जाने के साथ इंग्लैंड में 'वर्ष 1688 की गौरवपूर्ण क्रांति।' लोकतंत्र की 'द्वितीय तरंग' जो कि राजतंत्र से लोकतंत्र की ओर कदम बढ़ाना सिद्ध हुई, 'स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व' पर ज़ोर दिए जाने के साथ 'वर्ष 1789 की फ्रांसीसी क्रांति– के रूप में देखी गई। हालाँकि यहाँ कुछ वैचारिक पूर्वाग्रह देखा गया, 1980 के दशकांत में सोवियत संघ का विघटन और दक्षिणी यूरोप में समाजवादी शासन-व्यवस्थाओं का पतन 'लोकतंत्र की तीसरी तरंग' दर्शाते नज़र आए। इस तीसरी तरंग ने न सिर्फ 'सत्तावादी शासन प्रणालियों से लोकतंत्रों की ओर गमन दर्शाया बल्कि 'राज्य-प्रेरित अर्थव्यवस्थाओं' से 'बाज़ार सुविधादायी राज्यों' की ओर जाना भी इंगित किया। यह लोकतांत्रिक राज्य की एक सुविधादायी राज्य के रूप में अवधारणा ही थी जो 'शासन' को विकास संबंधी बहस के केंद्र में ले आई। यद्यपि आज यह धारणा व्यापक है कि लोकतंत्र ही तमाम देशों में सरकार का प्रमुख रूप है, वास्तविकता कुछ और ही है।

एक पेचीदा प्रयास के माध्यम से 'दि इकनॉमिस्ट' की 'इंटेलिजेंस यूनिट' वर्ष 2006 से ही 160 से भी अधिक देशों का एक 'डेमोक्रेसी इंडैक्स' अर्थात् 'लोकतंत्र सूचकांक' प्रकाशित करती आई है। यह पाँच सूचकांकों की श्रेणियों पर आधारित होता है; यथा – (i) चुनाव प्रक्रिया एवं बहुलवाद, (ii) सरकार की प्रकार्यात्मकता, (iii) राजनीतिक भागीदारी, (iv) राजनीतिक संस्कृति, तथा (v) नागरिक स्वतंत्रताएँ। इन श्रेणियों के अंतर्गत सूचकों की एक श्रृंखला में अपने समंकों के आधार पर प्रत्येक देश को सरकार के चार प्रकारों में से किसी एक में वर्गीकृत किया जाता है; यथा – पूर्ण लोकतंत्र, कुंठित लोकतंत्र, संकर शासन-व्यवस्था एवं सत्तावादी शासन-व्यवस्था। वर्ष 2019 का नवीनतम लोकतंत्र सूचकांक दर्शाता है कि केवल 22 देश (विश्व जनसंख्या के मात्र 6 प्रतिशत के आस-पास का ही प्रतिनिधित्व करते हुए) 'पूर्ण लोकतंत्र' हैं। लगभग 54 देश (विश्व जनसंख्या के अन्य 36 प्रतिशत) 'सत्तावादी शासन-व्यवस्थाएँ' हैं। लोकतंत्र सूचकांक उपर्युक्त पाँचों सूचकों के लिहाज से आकलित एवं संश्लिष्ट सूचकांक होता है और इसे शून्य से दस के पैमाने पर दर्शाया जाता है, जहाँ 8 से अधिक अंक पाने

वाले किसी भी देश को पूर्ण लोकतंत्र का दर्ज़ा दिया जाता है। अपने 6.9 समंक के साथ और कुल 167 देशों में 51वें स्थान पर रहकर, भारत 'कुंठित लोकतंत्रों' की श्रेणी में आता है। यह श्रेणी दर्शाती है कि ये देश अनेक लोकतांत्रिक अभावों से ग्रस्त हैं। तालिका 14.1 इस संबंध में भारत की तुलना में छह पड़ोसी दक्षिण-एशियाई देशों की यथास्थिति प्रस्तुत करती है। विश्व में उनकी अवस्थिति इस प्रकार है– भारत (51), श्रीलंका (69), बांग्लादेश (80), नेपाल (92), पाकिस्तान (108) और चीन (153)। विशेष रूप से, चीन एक 'सत्तावादी शासन-व्यवस्था' के रूप में सामने आता है। इसके विपरीत नार्वे (1) और स्वीडन (3) जैसे स्कैंडीनेवियन देश 'पूर्ण लोकतंत्रों' के रूप में लगभग संपूर्णता के साथ शीर्ष पर बने हुए हैं।

तालिका 14.1 : लोकतंत्र सूचकांक 2019

देश	चुनाव प्रक्रिया एवं महाधिक्यवाद	सरकार की प्रकार्यात्मकता	राजनीतिक भागीदारी	राजनीतिक संस्कृति	नागरिक स्वतंत्रताएँ	कुल समंक	श्रेणी
भारत	8.7	6.8	6.7	5.6	6.8	6.9	51
बांग्लादेश	7.8	6.1	6.1	4.4	5.0	5.9	80
नेपाल	4.8	5.4	5.0	5.6	5.6	5.3	92
पाकिस्तान	6.1	5.7	2.2	2.5	4.7	4.3	108
श्रीलंका	7.0	6.1	5.6	6.3	6.5	6.3	69
चीन	0.0	4.3	3.3	2.5	1.2	2.3	153
नार्वे	10.0	9.6	10.0	10.0	9.7	9.9	1
स्वीडन	9.6	9.6	8.3	10.0	9.4	9.4	3

नोट : समंक : 8 से 10 = पूर्ण लोकतंत्र, 6 से 8 = सदोष लोकतंत्र, 4 से 6 = संकट, 0 से 4 = सत्तावादी

स्रोत : दि इकॉनोमिस्ट इंटेलीजेंस यूनिट, 2020

14.2.2 सरकार और विकास

क्या किसी विशेष प्रकार की सरकार से विकास में कुछ अंतर आता है? इसका उत्तर है – 'हाँ'। निम्नलिखित कारणों से अधिनायकवाद में आर्थिक संवृद्धि के उप-इष्टतम रहने की प्रत्याशा होती है – प्रथम, अपनी भूमिकाओं के रक्षार्थ, तानाशाह जनता से जबरन वसूले गए राजस्व का अधिकांश भाग स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा जैसे सामाजिक विकास को कम तरज़ीह देते हुए सेना, पुलिस एवं खुफिया विभाग पर खर्च करते हैं। दूसरे, स्वामित्व हरण का भय निवेशिकों, नए प्रवेशकों एवं नव प्रवर्तकों को निवेश करने से रोकता है। तीसरे, सत्तावादी शासन-व्यवस्थाएँ अमीरों की मदद पर अपनी निर्भरता के कारण असमानताएँ कायम रखती हैं और गरीबों को खतरनाक मानती हैं। सत्तावादी शासन-व्यवस्थाओं की अधिकांश रणनीतियाँ सामाजिक रूप से अवांछनीय होती है। इस बात के मद्देनज़र, 20वीं सदी के अनेक वर्षों को अधिकांश सत्तावादी शासन-व्यवस्थाओं ने स्वयं के विरुद्ध सशक्त एवं सतत् जन-संघटन के फलस्वरूप में लोकतांत्रिक परिवर्तन के लिए स्थान रिक्त कर दिया है। फिर भी, वर्ष 2019 तक 54 देश ऐसे रहे जो दुनिया भर में 'सत्तावादी शासन-व्यवस्थाओं' की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

अधिनायकवाद के विपरीत, लोकतंत्र एक प्रतिनिधि सरकार के रूप में शासित वर्ग को शक्ति प्रदान करता है। लोकतांत्रिक संस्थाएँ, जैसे (i) चुनी हुई विधायिका, (ii) स्वतंत्र न्यायपालिका, एवं (iii) कानून, वैयक्तिक अधिकारों व स्वतंत्रता का सम्मान, उद्यम एवं नवाचार को प्रोत्साहित करती हैं। कोई अर्थव्यवस्था निवेश और दीर्घावधि लेन-देन से पूरा-पूरा लाभ उठाने में तभी सक्षम होगी जब उसके यहाँ ऐसी सरकार हो जो विश्वसनीय रूप से चलने में समर्थ (यथा, टिकाऊ) होने के साथ-साथ वैयक्तिक अधिकारों के उल्लंघन को निषिद्ध करने वाली भी हो। तद्नुसार, अधिकतम आर्थिक विकास हेतु वैयक्तिक अधिकार देने के लिए आवश्यक दशाएँ ठीक वही हैं जो किसी स्थायी या टिकाऊ लोकतंत्र कायम करने के लिए होती हैं। कुछ स्थितियों में यह आलोचना की जाती है कि लोकतंत्र पुनर्वितरणीय माँगों को जन्म देता है जो निवेश की वरीयता को कमज़ोर कर संवृद्धि को प्रभावित करती हैं। बहरहाल, यह आलोचना ज्यादा वज़न नहीं रखती क्योंकि अनेक लोकतांत्रिक देशों में (भारत समेत) संवृद्धि दरें अनेक सत्तावादी देशों के मुकाबले कहीं अधिक हैं। जैसा कि अमर्त्यसेन (1999) कहते हैं, लोकतंत्र भारत जैसे वृहद् जटिल समाजों के शासनार्थ दो कारणों से महत्त्वपूर्ण है; यथा – (i) लोकतंत्र बहुलवाद का संरक्षण एवं प्रबंधन प्रदान करता है (जिससे विषमजातीय एवं विविध समाजों में सामाजिक आधार मज़बूत होता है) जो कि बदले में, विविध उद्यमों का पोषण करता है, तथा (ii) लोकतंत्र बेहतर जीवन स्तर हेतु माँग का समर्थन करता है जो कि 'संवृद्धि के लाभों' के न्यायपूर्ण विभाजन को प्रोत्साहित करता है।

उपर्युक्त के आलोक में, लोकतंत्र के लिए अधिकाधिक देशों में बढ़ती प्रतिबद्धता देखी जा रही है। इसके साथ ही, 'लोकतंत्र के घाटों' से उबरने के लिए शासन पर उत्तरोत्तर आग्रह किया जा रहा है। आइए, इसीलिए, 'शासन' शब्द का कुछ विस्तार से विश्लेषण करते हैं।

14.2.3 शासन

'शासन' शब्द का अर्थ 'सरकार' शब्द से भिन्न है। 'शासन' शब्द का उदय आर्थिक विकास के उन राज्य अभिभावी प्रतिमानों से वितृष्णा से हुआ माना जा सकता है जो 1950 से लेकर 1970 के दशक तक चलन रहे थे। 'शासन' शब्द में राज्य व उसकी परिधि के बाहर की संस्थाएँ सम्मिलित हैं। इस संदर्भ में, 'नव-सांस्थानिक दृष्टिकोण' 'राज्येतर संस्थाओं' पर विशेष ज़ोर देता है। 'शासन' शब्द को विभिन्न संगठनों द्वारा भिन्न-भिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है हम यहाँ दो व्यापक परिभाषाओं पर चर्चा करेंगे, जिनमें एक विश्व बैंक द्वारा दी गई है ओर दूसरी संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा।

विश्व बैंक (1994) : विश्व बैंक 'शासन' को उस पद्धति से परिभाषित करता है जिसमें किसी देश के आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों के प्रबंधन में सत्ता प्रयोग किया जाता है। शासन के तीन सुस्पष्ट पहलू दिखाई पड़ते हैं; यथा – (i) राजनीतिक शासन-प्रणाली का रूप; (ii) वह प्रक्रिया जिससे किसी देश के विकासार्थ आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों के प्रबंधन में प्राधिकार का प्रयोग किया जाता है; तथा (iii) नीतियों के अभिकल्पन, निरूपण एवं क्रियान्वयन के साथ-साथ प्रकार्यों के निर्वहन हेतु सरकार की क्षमता।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (1997) : यह संगठन (UNDP) को सभी स्तरों पर किसी देश के कार्यों-प्रकार्यों को नियंत्रित करने हेतु आर्थिक, राजनीतिक एवं

प्रशासनिक प्राधिकार के प्रयोग के रूप में परिभाषित करता है। इसमें वे सभी कार्यतंत्र, प्रक्रियाएँ एवं संस्थाएँ शामिल होती हैं जिनके माध्यम से नागरिक व जन समूह अपने हित व्यक्त करते हैं, अपने कानूनी अधिकारों का प्रयोग करते हैं, अपने दायित्व निभाते हैं और उनके विवाद सुलझाते हैं।

ये परिभाषाएँ ऐसी हैं, ख़ासकर दूसरी (UNDP वाली), जो शासन संबंधी सभी बहसों और विश्लेषणों पर अभिभावी रहती हैं। यह स्पष्ट है कि शासन का अर्थ सरकार की अपेक्षा कहीं बड़ा दायरा है। प्रथम, ये परिभाषाएँ शासन की विभिन्न इकाइयों का प्रग्रहण करती हैं जो कि राज्य अथवा सरकार के साधन मात्र नहीं होतीं। दूसरे, ये दर्शाती हैं कि शासन राज्य व नागरिक समाज की अंतर्क्रियाओं में भी अंतर्निहित होता है और उनके साथ अंतर्ग्रथित भी। अतः, शासन जन क्षेत्र का वह भाग है जिसमें सरकार और नागरिक समाज दोनों समाहित होते हैं। तीसरे, दोनों ही परिभाषाओं में 'लोकतांत्रिक उत्तरदेयता' के अव्यक्त संदर्भ के साथ राजनीतिक आयाम शामिल हैं। अन्य शब्दों में, इनका सरोकार न सिर्फ इस बात से है कि सत्ता किस प्रकार प्रयोग की जाए, बल्कि इस बात से भी है कि सत्ता कैसे हासिल की जाए। इस रूप में ये परिभाषाएँ, फुकुयामा (2013) की 'अराजनीतिक परिभाषा' के विपरीत है जिसके अनुसार, शासन निश्चय ही 'इस बात पर ध्यान दिए बिना कि सरकार लोकतांत्रिक है अथवा नहीं, कानून बनाने व लागू करने एवं सेवाएँ प्रदान करने हेतु किसी सरकार की क्षमता' से संबंध रखता है।

14.2.4 सुशासन

सुशासन अर्थात् उत्तम शासन एक महत्त्वाकांक्षापूर्ण आयाम है। यह ऊपर उल्लिखित व्यापक परिभाषाओं की तुलना में एक सीमित कार्यक्षेत्र दर्शाता है। सुशासन अन्य गुणधारकों के साथ-साथ 'सहभागितापूर्ण, पारदर्शी और उत्तरदायी' भी होता है। यह, इसीलिए, 'कानून का शासन' प्रोत्साहित करने में प्रभावी और न्यायोचित सिद्ध होता है। अतएव, सुशासन ऐसा शासन है जो उस समाज में किसी व्यापक सहमति के आधार पर 'राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्राथमिकताएँ' सुनिश्चित करे जहाँ विकास संसाधनों के आवंटन पर निर्णयन में दरिद्रतम और सर्वाधिक असुरक्षित व्यक्ति की आवाज़ भी सुनी जाए। विश्व बैंक के अनुसार, विश्वभर में नीति-निर्माता, नागरिक समाज समूह, मददगाता एवं विद्वत्जन उत्तरोत्तर इस बात से सहमत हो रहे हैं कि सुशासन विकास के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। यह वर्धमान सहमति सांस्थानिक गुणवत्ता के आनुभाविक उपायों के प्रचुरोद्भवन, निवेश वातावरण और विकास पर सुशासन के सशक्त प्रभाव दर्शाते अनुषंगी अनुसंधान से जन्मी है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) सरकार और शासन के बीच अंतर स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

2) समग्र 'लोकतंत्र सूचकांक' के पदों में, अपने पड़ोसी देशों की तुलना में भारत की स्थिति क्या है?

....

....

....

....

....

3) लोकतंत्र की आलोचना किन शब्दों में की जाती है? क्या आप मानते हैं कि यह आलोचना उचित है?

....

....

....

....

....

4) 'शासन' शब्द के अनिवार्य संघटक कौन-कौन-से हैं? संक्षिप्त व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

5) 'सुशासन' किस प्रकार 'शासन' से भिन्न होता है?

....

....

....

....

....

14.3 शासन के संघटक

शासन की भूमिका संबंधी विश्लेषण में, शासन के दो महत्त्वपूर्ण संघटकों का ज़िक्र आता है; यथा– 'आर्थिक शासन' और 'शासनार्थ संस्थाएँ'। वृहत्तर शासन विश्लेषण के लिए ये दोनों आवश्यक होते हैं। इसीलिए, इन्हें शासन के उप-समुच्चयों के रूप में देखा जा सकता है। आइए, देखें।

14.3.1 आर्थिक शासन

'आर्थिक शासन' बाज़ारों की प्रकार्यात्मकता और आर्थिक गतिविधि से संबंध रखता है। यह आर्थिक गतिविधियों एवं लेन-देन में मदद करने के लिए विधि सम्मत एवं

सामाजिक संस्थाओं के प्राधार एवं प्रकार्यात्मकता की ओर इशारा करता है। अविनाश दीक्षित (2009) यह बताने के लिए अर्थव्यवस्था के संदर्भ में 'सुशासन' शब्द का प्रयोग करते हैं कि किसी भी सुचारू रूप से काम कर रही बाज़ार अर्थव्यवस्था के लिए तीन अनिवार्य पूर्व-शर्तें सुनिश्चित करने के लिए 'सुशासन' आवश्यक होता है। प्रथम, संपदा अधिकारों की सुरक्षा, जिसके बिना लोगों में बचत एवं निवेश करने हेतु प्रोत्साहन का अभाव पाया जाएगा। दूसरे, संविदाओं का प्रवर्तन, जो कि यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक होता है कि आर्थिक लेन-देन से उपगत लाभ सभी सहभागियों को पहुँचेंगे। प्रवर्तन [अर्थात् लोगों को नियम मानने के लिए बाध्य किया जाना] सुनिश्चित किए जाने के बिना लोग अनुबंध एवं लेन-देन करने से कतराएंगे। तीसरे, उन सार्वजनिक हित-वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सामूहिक कार्यवाही आवश्यक होती है जिनके माध्यम से निजी आर्थिक क्रियाकलाप होते हैं। अपराध एवं हिंसा जैसी 'सार्वजनिक अहित' अर्थात् सामाजिक बुराइयों पर नियंत्रण भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है जो निजी आर्थिक क्रियाकलाप हेतु प्रोत्साहनों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

14.3.2 शासनार्थ संस्थाएँ

'नव-सांस्थानिक अर्थशास्त्र' का उदय (देखें ऊपर उपभाग 14.2.3 में उल्लिखित 'नव-सांस्थानिक दृष्टिकोण') 'राज्य-विफलता' के संदर्भ में हुआ है जितना कि 'बाज़ार-विफलता' के संदर्भ में। कहा जाता है कि किसी भी देश की संवृद्धि एवं विकास में अंतर महज़ संसाधन भिन्नताओं (यथा, भौतिक पूँजी, मानव पूँजी एवं प्रौद्योगिकी में अंतर) की वजह से नहीं होता, ये तो समीपस्थ कारण मात्र होते हैं। कहना होगा कि 'संस्थाएँ' ही आर्थिक संवृद्धि एवं विकास में भिन्नताओं के लिए बुनियादी कारण होती हैं। न्यू इंस्टीट्यूशनल स्कूल के एक प्रभावशाली व्यक्ति [देखें डी.नॉर्थ (1990)] के अनुसार, 'संस्थाएँ ही किसी समाज में खेल के नियम होती हैं।' अन्य शब्दों में, वे ही मानव अंतर्क्रियाओं को रूपायित करने हेतु मानवीय रूप से अभिकल्पिक संरोध होती हैं। इस दृष्टिकोण से, संस्थाओं के तीन महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण होते हैं, यथा – (i) 'मानवीय रूप से अभिकल्पित' (मानव नियंत्रण से इतर भौगोलिक कारकों सरीखी अन्य संस्थाओं से भिन्न), (ii) 'खेल के नियम' (जो कि मानव व्यवहार पर अंकुश लगाते हैं) और (iii) प्रोत्साहनों के माध्यम से उनका प्रमुख प्रभाव।

उक्त विचार-पद्धति (न्यू इंस्टीट्यूशनल स्कूल) 'मुक्त बाज़ार' एवं 'निजी संपदा अधिकारों के संरक्षण' पर ज़ोर देती है। इन दोनों ही गुणों को आर्थिक विकास हेतु अनिवार्य शर्तों के रूप में देखा जाता है। समालोचकों का कहना है कि राज्य की सीमित भूमिका के साथ, मुक्त बाज़ारों में विश्वास, सांस्थानिक दृष्टिकोण की एक प्रमुख कमी है। उनके अनुसार, नव-सांस्थानिक दृष्टिकोण स्वयं संस्थाओं में परिवर्तनों के एक त्रुटिपूर्ण बोध से ग्रस्त है। इससे 'नव-सांस्थानिक दृष्टिकोण' और 'शासन पर आग्रह' के बीच संबंध का मुद्दा उठता है। यहाँ निहित संबंध को विकास प्रक्रिया में और स्वत्व अधिकारों के संरक्षण पर ज़ोर में राज्येत्तर संस्थाओं की भूमिका के रूप में देखा जाता है। शासन संबंधी मुद्दों का विश्लेषण, इसीलिए, कहीं अधिक व्यापक है, जिसके दायरे में न सिर्फ स्वामित्व अधिकार और उद्यम की स्वतंत्रता आते हैं बल्कि लोकतंत्र हेतु अव्यक्त नियामक राजनीतिक पूर्वाग्रह भी आता है। अन्य शब्दों में, 'शासनार्थ संस्थाओं' की परिधि में कहीं अधिक वृहद् आयाम आते हैं।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50—100 शब्दों में लिखें।)

1) 'आर्थिक शासन' पदबंध किससे संबंधित है?

....

....

....

....

....

2) अविनाश दीक्षित (2009) के अनुसार, 'सुशासन' को सुनिश्चित करने के लिए तीन अनिवार्य शर्तें कौन-सी हैं?

....

....

....

....

....

3) 'शासनार्थ संस्थाएँ' पदबंध से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

14.4 शासन सूचकांक

स्थूलतः, शासन के मापदंड दो प्रकार के होते हैं। इनमें एक है — 'वस्तुपरक मापदंडों' की श्रृंखला और दूसरी 'आदर्शपरक मापदंडों' की श्रृंखला। शासन के वस्तुपरक सूचकांक मुख्यतः किसी राजनीतिक संस्था की अवस्था (लोकतंत्र, तानाशाही), संस्थागत शासन-प्रणाली का प्रकार, राजनीतिक अस्थिरता एवं हिंसा की घटना तथा कार्यकारी संरोधों (परस्पर निगरानी) की विद्यमानता। इन मापदंडों के लिए आँकड़ों के स्रोत हैं– राजतंत्र का डेटाबेस और दि इकनोमिस्ट इंटेलिजेंस यूनिट द्वारा जारी 'लोकतंत्र सूचकांक'। इन वस्तुपरक मापदंडों की बड़ी कमी यह है कि ये शासन के मूल्यांकन हेतु निर्णायक संस्थाओं की गुणवत्ता पर कोई जानकारी दिए बिना ही शासन का एक संकीर्ण परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत कर देते हैं।

शासन के आदर्शपरक मापदंडों के माध्यम से उपर्युक्त वस्तुपरक मापदंडों का एक विकल्प भी है, जो कि विशेषज्ञ मतों एवं अवबोधन सर्वेक्षणों पर आधारित होते हैं। यह ब्रुकिंग्स इंस्टीट्यूशन और विश्व बैंक द्वारा संयुक्त रूप से तैयार किए जाने वाले विश्वव्यापी शासन सूचकांकों (WGI) के डेटाबेस पर आधारित होता है। ये सूचकांक (WGI) उन परंपराओं एवं संस्थाओं के आयाम से शासन तक पहुँचते हैं जिनके द्वारा किसी देश में प्राधिकार का प्रयोग किया जाता है। तद्नुसार परिभाषित किए जाने पर, शासन में तीन प्रमुख आयाम होते हैं; यथा (क) वह प्रक्रिया जिससे सरकारें चुनी जाती

हैं, उन पर नज़र रखी जाती है और उन्हें बदला जाता है; (ख) सही नीतियाँ प्रभावपूर्ण ढंग से निरूपित एवं क्रियान्वित करने हेतु सरकार की क्षमता; तथा (ग) उन संस्थाओं के प्रति नागरिकों और राज्य के मन में सम्मान जो उनके बीच आर्थिक एवं सामाजिक अंतर्क्रियाएँ नियंत्रित करती हैं। उक्त सूचकांकों (WGI) का डेटाबेस शासन के कुछ संश्लिष्ट सूचक प्रदान करता है। ये संकेतक निम्नलिखित से संबद्ध होते हैं – (i) अभिव्यक्ति एवं उत्तरदेयता (VA), (ii) राजनीतिक स्थिरता एवं हिंसा/आतंकवाद की अविद्यमानता (PV), (iii) सरकार की प्रभावोत्पादकता (GE), (iv) विनियामक गुणवत्ता (RQ), तथा (v) भ्रष्टाचार पर नियंत्रण (CC)। इस भाग के अगले अंश में हम उक्त (WGI) डेटाबेस पर आधारित वर्ष 2019 हेतु नवीनतम समंकों (अथवा श्रेणियों) का प्रयोग कर, एक तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में, इन पाँचों 'शासन संसूचकों' में से प्रत्येक के अनुसार भारत के कार्य-निष्पादन का विश्लेषण करेंगे। यहाँ प्रयुक्त सूचक (WGI) आँकड़े शतमंक के रूप में हैं, यथा– 0 से 100 तक की शृंखला में, जहाँ शून्य निकृष्टतम दर्शाता है और 100 सर्वोत्तम।

अभिव्यक्ति एवं उत्तरदेयता (VA) वह सीमा दर्शाता है जहाँ तक किसी देश के नागरिक अपनी सरकार चुनने में भागीदारी हेतु सक्षम होते हैं, और साथ ही, उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सहचर्य की आज़ादी और स्वतंत्र संचार माध्यमों का लाभ मिलता हो। भारत अपने संविधान में एक मूलभूत अधिकार के रूप में भाषण की स्वतंत्रता संबंधी प्रावधान के साथ, इस संदर्भ में अपने पड़ोसी देशों के मुकाबले एक अपेक्षाकृत उच्च स्थान (60.1) पर है। फिर भी वह नॉर्वे (100), डेनमार्क (98) अथवा स्वीडन (97.5) जैसे शीर्षस्थ देशों के आस-पास कहीं नहीं ठहरता। 'राजनीतिक स्थिरता एवं हिंसा/आतंकवाद की अविद्यमानता' संबंधी सूचक इस संभावना विषयक अवबोधन का प्रग्रहण करता है कि असंवैधानिक अथवा हिंसक साधनों से सरकार अस्थिर होगी अथवा उखाड़ फेंकी जाएगी, जिनमें राजनीतिक रूप से प्रेरित हिंसा एवं आतंकवाद शामिल हैं। इस मोर्चे पर भारत का समंक (14.8) इस क्षेत्र स्थिरता की एक बेहद कमज़ोर स्थिति दर्शाता है, न सिर्फ नॉर्वे (90.5) अथवा स्वीडन (80.5) जैसे उच्च समंक वाले देशों की तुलना में, बल्कि नेपाल (23.2) और श्रीलंका (40.5) की तुलना में भी। 'सरकार की प्रभावोत्पादकता' विषयक सूचक लोकसेवाओं की गुणवत्ता, असैनिक सेवा की गुणवत्ता और राजनीतिक दबाव से इसकी स्वतंत्रता की कोटि संबंधी

तालिका 14.2 : शासन संसूचकों द्वारा चुनिंदा अर्थव्यवस्थाओं का तुलनात्मक वर्णन

शासन संसूचक	भारत	बांग्लादेश	नेपाल	पाकिस्तान	श्रीलंका	चीन
VA	60.1	27.6	39.4	25.6	46.8	8.9
PV	14.8	13.8	23.2	3.3	40.5	36.7
GE	63.9	21.6	16.8	26.9	45.2	69.7
RQ	55.3	28.4	33.7	27.9	55.8	48.1
CC (WGI) **CPI (TI)**	49.5 41 (80)	16.8 26 (146)	27.4 34 (113)	23.6 32 (120)	43.3 38 (93)	45.7 41 (80)

स्रोत : 'भ्रष्टाचार संसूचक' को छोड़कर WGI जिसके लिए के स्रोतों से समंक/श्रेणी दर्शाए गए हैं।

नोट : कोष्ठक में दिए गए अंक ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल (TI) द्वारा (CPI) के लिए देश की स्थिति (180 में से सर्वेक्षण किए गए देश) दर्शाते हैं।

अवबोधनों का प्रग्रहण करती है। यह नीति-निरूपण एवं क्रियान्वयन की गुणवत्ता और ऐसी नीतियों के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता संबंधी विश्वसनीयता भी दर्शाती है। यहाँ विश्लेषण किए गए पाँच शासन सूचकों में से भारत का उच्चतम समंक (63.9) 'सरकार की प्रभाविता' के मामले में है। इस संबंध में चीन का किंचित् बेहतर स्थान है (69.7)। जबकि अन्य दक्षिण एशिया पड़ोसी देशों में यह काफी कम है। परंतु उदाहरण बने अब भी स्कैंडीनेबियन देश ही हैं जो 96 से ऊपर समंक दर्शाते हैं (99 के साथ फिनलैंड सबसे ऊपर)।

विनियामक गुणवत्ता' (RQ) सरकार की दक्षता को दर्शाता एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूचक है। यह ऐसी सही नीतियाँ एवं विनियम निरूपित एवं क्रियान्वित करने हेतु सरकार की क्षमता संबंधी अवबोधनों का प्रग्रहण करता है जो निजी क्षेत्र के विकास को अनुमति एवं प्रोत्साहन प्रदान करते हों। यह सूचक दर्शाता है कि अधिकांश विकासशील एवं निम्न-मध्य स्तर के देश एक अपेक्षाकृत निकृष्ट विनियामक गुणवत्ता से पीड़ित होते हैं। अपने 48–55 की शृंखला में किसी समंक के साथ भारत, चीन एवं श्रीलंका, बांग्लादेश, पाकिस्तान एवं नेपाल से बेहतर हैं। निजी क्षेत्र पर राज्य की विनियामक क्षमता में बलहीनता विनियामक प्रग्रहण, भ्रष्टाचार एवं असमानता के स्रोत के रूप में काम कर सकती है।

जैसा कि हमने उपभाग 14.2.1 में देखा, भारत और श्रीलंका दोनों ही 'कुंठित लोकतंत्रों' की श्रेणी में आए, जबकि बांग्लादेश, नेपाल और पाकिस्तान और चीन 'संकर शासन-व्यवस्थाओं' के रूप में नज़र आए। यहाँ हम देखते हैं कि इन देशों के लिए इसी प्रकार की श्रेणियाँ 'कानून का शासन' विषयक सूचक के लिए भी हैं। यह सरकार और शासन संबंधी दो आयामों के बीच घनिष्ठ सहबद्धता भी दर्शाता है। चीन की 'कानून का शासन' स्थिति एवं सत्तावादी शासन-व्यवस्था के रूप में उसके चित्रण से अपेक्षाकृत बेहतर लगती है।

भ्रष्टाचार नियंत्रण (CC) : यह विनियामक गुणवत्ता से गहरा जुड़ा एक अन्य शासन सूचक है। हाल ही में, दुनिया भर में (इस बात पर ध्यान दिए बगैर कि देश विकसित है विकासशाली, वह लोकतंत्र है या सत्तावादी) व्यापक असंतोष और विरोध-प्रदर्शनों का कारण भ्रष्टाचार और असमानता रहे हैं। भ्रष्टाचार एक काफी विकट शासन दोष है क्योंकि यह असमानता को बढ़ा सकता है। इसके अलावा, भ्रष्टाचार 'व्यापार करने की लागत' बढ़ाकर विकास को गंभीर रूप से आहत कर सकता है। यह उच्चतर असमानता और राजनीतिक अस्थिरता की ओर अग्रसर करते हुए निवेश को हतोत्साहित कर आर्थिक संवृद्धि को न्यून कर देता है। भ्रष्टाचार कीमतों में विकृति लाकर निर्धन वर्ग और सर्वाधिक असुरक्षित वर्ग पर एक विषम प्रभाव छोड़ता है। यह स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसी जन-सेवाओं की लागत बढ़ाकर उनकी सुलभता घटा देता है। भ्रष्टाचार सरकार में विश्वास कम कर सामाजिक अनुबंध को आघात पहुँचाता है। भ्रष्टाचार अनेक रूपों में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, भ्रष्टाचार सरकारी संविदाओं में विजेताओं का पक्षपातपूर्ण निर्धारण कर सकता है, जिससे लाभ सरकारी पदाधिकारियों के मित्रों व संबंधियों को ही चला जाएगा। अथवा, यह समग्र आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालकर नीति-निरूपण एवं क्रियान्वयन पर दूरगामी प्रभाव के साथ नियामक निकायों पर कब्ज़ा कर सकता है। अतएव, सभी प्रकार के भ्रष्टाचार से निबटना बेहद ज़रूरी है ताकि प्रगति एवं धारणीय परिवर्तन का सिलसिला निर्बाध चलता रहे।

उपर्युक्त कारकों की वजह से भ्रष्टाचार पर लगाम कसने का महत्त्व ज्ञात होने पर, उक्त सूचकों (WGI) के अलावा भी अनेक अभिकरण सामने आए हैं जो देशों में भ्रष्टाचार की सीमा मापते हैं। यहाँ, हम ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल (TI) द्वारा प्रकाशित दो स्रोतों, यथा– उक्त संसूचक (WGI) और 'करप्शन पर्सेप्शन इंडेक्स' (CPI) से लिए गए सूचक प्रस्तुत करेंगे। उक्त संस्था (TI) द्वारा किए गए सर्वेक्षण में 180 देश शामिल किए गए, जो कि विश्व बैंक/ब्रुकिंग्स के भ्रष्टाचार नियंत्रण (CC) द्वारा लिए गए देशों से कहीं अधिक हैं। उक्त सूचकों (WGI) का यह संसूचक (CC) उस सीमा विषयक अवबोधनों का प्रग्रहण करता है जहाँ तक निजी लाभ के लिए जनसत्ता का प्रयोग किया जाता है (भ्रष्टाचार के छोटे-बड़े सभी रूप शामिल करने) और साथ ही, संभ्रांत वर्ग एवं निजी हितों द्वारा 'राज्य का प्रग्रहण' भी इसमें समाहित है। जैसा कि अन्य संकेतकों (WGI संसूचकों) के उदाहरण में मिलता है, 'भ्रष्टाचार नियंत्रण' में भी भारत और श्रीलंका का स्थान निकृष्ट है, परंतु वह बांग्लादेश, नेपाल व पाकिस्तान जैसे अन्य पड़ोसियों से बेहतर है। चीन, 'अभिव्यक्ति एवं उत्तरदेयता' के सिवा, भ्रष्टाचार नियंत्रण (CC) समेत सभी संसूचकों में भारत व श्रीलंका के साथ ही चल रहा है। अपने 100 समंक के साथ फिनलैंड 'शून्य भ्रष्टाचार' दर्शाता है।

उक्त संस्था (TI) का भ्रष्टाचार अवबोधन सूचकांक (CPI) अनेक ऐसे स्रोतों से आँकड़े एकत्र करता है जो सार्वजनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार के स्तर पर व्यापारी वर्ग एवं देश के विशेषज्ञों द्वारा किए गए अवबोधन प्रदान करते हों। उक्त सूचकांक (CPI 2019) में भ्रष्टाचार पर अवबोधनों (विगत दो वर्ष की अवधि के संदर्भ के साथ) का प्रग्रहण करने के लिए 12 विभिन्न संस्थाओं से 13 विभिन्न आँकड़ा स्रोतों का प्रयोग किया। ये आँकड़े 0 से 100 के पैमाने पर किसी समंक (जितना ऊँचा समंक उतना ही नीचा भ्रष्टाचार) हेतु मानकीकृत होते हैं। उक्त (TI) आँकड़ों से भारत व उसके पड़ोसियों की आपेक्षिक भ्रष्टाचार स्थिति भी उजागर होती है, जहाँ वे अपने अपेक्षाकृत निम्न समंक दर्शाते हैं (यथा, WGI में 49.5 और TI में 41)। जहाँ भारत 'अभिव्यक्ति एवं उत्तरदेयता' तथा 'कानून का शासन' में अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति दर्शाता है, चीन 'सरकार की प्रभावोत्पादकता' तथा 'राजनीतिक स्थिरता' में भारत से बेहतर है। परंतु, यथातथ्य रूप से भ्रष्टाचार सूचकांक के विषयक में दोनों एक ही स्तर पर हैं (TI के अनुसार दोनों ठीक 80 के समंक के साथ)।

आलोचकों के अनुसार, उक्त (WGI) डेटाबेस की कुछ सीमाएँ हैं। प्रथम, यह इसके (WGI के) सूचक अविकलित करने के लिए अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार के डेटाबेस प्रयोग करता है। ये अवबोधन सर्वेक्षण अपने भिन्न-भिन्न प्रतिदर्शों पर आधारित होते हैं। इसके अलावा, चूँकि कालांतर में, संसाधन एवं विधियाँ बदलते हैं, एक काल विशेष पश्चात् विभिन्न देशों के बीच तुलनाएँ कठिन होती हैं। तथापि, यह (WGI) स्रोत अपनी कार्य प्रणाली उजागर करने में पारदर्शी होता है (जैसे, आँकड़ों की त्रुटियाँ दूर करने हेतु 'अव्यक्त चर' दृष्टिकोण अपनाया जाना। दूसरे, कहा जाता है कि किसी दृश्य घटना संबंधी अवबोधन और उसके वास्तविक माप के बीच अंतर होता है। कहा जा सकता है कि अवबोधन निदर्श में अपनी स्थिति से भिन्न होते हैं, हालाँकि पूर्ववर्ती सर्वेक्षणों से प्राप्त अनुभवों के आधार पर समुचित समंजन प्रयास किए जाते हैं। आलोचना का तीसरा बिंदु यह है कि चूँकि 'शासन' की कोई सर्व प्रयोजन परिभाषा नहीं है, इसे सीधे नहीं मापा जा सकता। परंतु किसी ऐसी दृश्य घटना को मापते समय जिसका सीधे नहीं प्रेक्षण नहीं किया जा सकता, प्रतिनिधि चरों का प्रयोग किया

जाना आम चलन है। अतः, प्राविधिक रूप से, उक्त सूचकांक (WGI), अपनी आलोचनाओं के बावजूद, अपना महत्त्व बनाये हुए है।

बोध प्रश्न 3 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) वे प्रमुख कारक कौन-से हैं जिनसे विश्वव्यापी शासन सूचक (WGI) डेटाबेस द्वारा प्रदत्त सूचकांक संबद्ध होते हैं?

....

....

....

....

....

2) भारत किस प्रकार अपने पड़ोसी देशों से बेहतर समंक दर्शाता है? यह क्या इंगित करता है?

....

....

....

....

....

3) 'सरकार की प्रभावोत्पादकता' (GE) संबंधी शासन सूचक क्या दर्शाता है और इस मोर्चे पर भारत और चीन किस प्रकार तुलनीय हैं?

....

....

....

....

....

4) ऐसे दो अभिकरण बताएँ जो शासन सूचक के एक कारक के रूप में भ्रष्टाचार को मापते हैं।

....

....

....

....

....

....

5) विश्वव्यापी शासन सूचक (WGI) डेटाबेस के प्रति की जाने वाली आलोचनाएँ कौन-सी हैं?

....

....

....

....

....

14.5 सार-संक्षेप

सरकार को तीन प्रकार का माना जाता है जिनमें से लोकतांत्रिक रूप को व्यापक रूप से विकासोन्मुखी स्वीकार किया जाता है। तिस पर भी, यद्यपि अधिकाधिक देश लोकतांत्रिक होते जा रहे हैं, अनेक देश आज भी सत्तावादी शासन-प्रणाली अपनाए हुए हैं, परंतु अनेक लोकतांत्रिक देश (भारत समेत) 'कुंठित लोकतंत्र' की श्रेणी में आते हैं – अर्थात् ये अनेक मोर्चों पर कमियाँ दर्शाते हैं। 'शासन' शब्द के दायरे में अनेक आयाम आते हैं, जैसे– राजनीतिक शासन-प्रणाली का रूप, वह प्रक्रिया जिससे प्राधिकार का प्रयोग किया जाता है, नीतियाँ अभिकल्प एवं क्रियान्वित करने हेतु क्षमता, आदि। 'शासन' शब्द 'लोकतांत्रिक उत्तरदेयता' हेतु सरकार व नागरिक समाज दोनों का सामंजस्यपूर्ण सहअस्तित्व इंगित करता है। 'शासन' शब्द 'सुशासन' से भिन्नता दर्शाता है, जहाँ परवर्ती एक ऐसा 'मतैक्य-आधारित निर्णयन' सुनिश्चित कर देता है जिसमें दरिद्रतम एवं सर्वाधिक असुरक्षित वर्ग का अभिव्यक्ति को भी यथायोग्य सम्मान दिया जाता है। विकास संकेतकों के साथ सुशासन के सशक्त अनुबंधनों के मद्देनज़र, हाल के वर्षों में अनेक 'शासन सूचक' विकसित किए गए हैं। इसके आधार पर ही देशों का श्रेणीकरण किया जाता है। विशेषकर, 'भ्रष्टाचार अवबोधन सूचक' (CPI) के लिहाज से, भारत और चीन समान स्तर पर हैं, यद्यपि भारत 'अभिव्यक्ति एवं उत्तरदेयता सूचक' की दृष्टि से चीन से कहीं बेहतर स्थिति में है।

14.6 शब्दावली

अधिनायकवाद : तानाशाही अर्थात् ऐसी सत्तावादी शासन-प्रणाली जिसमें सत्ता का संकेंद्रण कुछ ही हाथों में रहता है।

लोकतंत्र की तरंगें : अपने लंबे इतिहास के साथ राजतंत्र से प्रतिनिधि सरकारों को सत्ता का हस्तांतरण : वर्ष 1688 में इंग्लैंड की गौरवपूर्ण क्रांति, वर्ष 1789 में फ्रांसीस क्रांति और वर्ष 1980 के उत्तरार्ध में सोवियत संघ का विघटन।

लोकतंत्र सूचक : द इकोनोमिस्ट की इंटेलीजेंस यूनिट द्वारा विकसित एवं प्रकाशित एक संकेतक। यह 165 से भी अधिक देशों का सर्वेक्षण करता है और अपना लोकतांत्रिक सूचकांक पाँच श्रेणियों के आधार पर आकलित करना है, यथा– चुनाव प्रक्रिया एवं महाधिक्य, सरकार का प्रकार्यात्मकता, राजनीतिक भागीदारी, राजनीतिक सांस्कृतिक तथा नागरिक स्वतंत्रताएँ या अधिकार।

शासन	:	इस शब्द में राज्य व उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर की संस्थाएँ शामिल होती हैं, अर्थात् इसमें अनेक राज्येत्तर संस्थाएँ भी आती हैं।
सुशासन	:	शासन का वह रूप जो ऐसे समाज में जहाँ गरीब और असुरक्षित लोगों की आवाज़ भी सुनी जाती हो, एक व्यापक सहमति पर आधारित 'राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्राथमिकताएँ' सुनिश्चित कर देता हो।
शासन संसूचक	:	विश्वव्यापी शासन सूचक (WGI– ब्रुकिंग्स एवं विश्वबैंक द्वारा विकसित) तथा भ्रष्टाचार अवबोधन सूचक (ट्रांस्पेरेंसी इंटरनेशनल) जैसे संकेतक या सूचक आदि।

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) UN (2016). Governance and Institutions, Chapter VI, in World Economic and Social Survey 2014/2015, New York.

2) World Bank (1997). Governance and sustainable Development, UNDP, New York.

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) सरकार किसी भी देश में वैध सत्ता प्रयोग हेतु किसी प्राधिकरण का नाम होता है। शासन का अर्थ होता है– लोकतांत्रिक राज्य की वह अवधारणा जिसमें 'राज्य' दक्षतापूर्वक कार्य करने हेतु बाज़ारों के सहायक की भूमिका निभाता है।

2) भारत एक कुंठित लोकतंत्र होने के बावजूद अपने पाँच पड़ोसियों से बेहतर स्थिति दर्शाता है जो कि कोष्ठकबद्ध श्रेणी के साथ निम्नवत् है– भारत (51), श्रीलंका (69), बांग्लादेश (80), नेपाल (92), पाकिस्तान (108) तथा चीन (153)।

3) लोकतंत्र के प्रति एक आलोचना इस आधार पर है कि यह 'पुनर्वितरणीय माँगें उत्पन्न कर देता है जो कि निवेश प्राथमिकता को आघात पहुँचाकर संवृद्धि को कुप्रभावित करती हैं। इस आलोचना का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि 'अनेक लोकतांत्रिक देशों में संवृद्धि दरें (भारत समेत) अनेक सत्तावादी देशों से कहीं अधिक ऊँची हैं'।

4) 'शासन' लोकतांत्रिक राज्य की एक अवधारणा का नाम है। इस पदबंध के दायरे में राज्य व उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर की संस्थाएँ भी आती हैं, अर्थात् नागरिक समाज जैसी राज्येत्तर संस्थाएँ। शासन, तद्नुसार, किसी सरकार की परिधि से कहीं अधिक विस्तार लिए होता है। शासन शब्द में 'लोकतांत्रिक उत्तरदेयता' का एक अव्यक्त संदर्भ होता है।

5) सुशासन 'सहभागितापूर्ण, पारदर्शी और उत्तरदेय' होता है। यह अपने अधीन 'समावेशी वृद्धि' के सिद्धांतों समेत दरिद्रतम एवं सर्वाधिक असुरक्षित लोगों की अभिव्यक्तियों को ध्यान में रखता है।

बोध प्रश्न 2

1) इसका अर्थ है– आर्थिक गतिविधियों एवं लेन देन में सहयोग करने के लिए वैध एवं सामाजिक संस्थाओं का प्राधार एवं प्रकार्यात्मकता।

2) संपदा अधिकारों की सुरक्षा; अनुबंधों का प्रवर्तन सुनिश्चित करने हेतु संस्थाएँ तथा सार्वजनिक वस्तुओं के प्रभावशाली प्रावधान हेतु सामूहिक कार्रवाई।

3) ये महज 'संपदा अधिकारों' एवं 'उद्यम की स्वतंत्रता' से कहीं अधिक व्यापक होते हैं। इनमें लोकतंत्र हेतु एक राजनीतिक पूर्वाग्रह शामिल होता है।

बोध प्रश्न 3

1) इसका संबंध इन बातों से है – (i) अभिव्यक्ति एवं उत्तरदेयता (VA), (ii) राजनीतिक स्थिरता एवं हिंसा/आतंकवाद की अविद्यमानता (PV), (iii) सरकार की प्रभाविता (GE), (iv) विनियामक गुणवत्ता (RQ), तथा (v) भ्रष्टाचार पर नियंत्रण (CC)।

2) अभिव्यक्ति एवं उत्तरदेयता। यह उस सीमा को दर्शाता है जहाँ तक किसी देश के नागरिक अपनी सरकार चुनने में भागीदारी निभाने में सक्षम होते हैं, और साथ ही, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, साहचर्य की स्वतंत्रता एवं स्वतंत्र संचार माध्यमों का भी लाभ उठा सकते हों।

3) यह लोक सेवाओं की गुणवत्ता एवं राजनीतिक दवाबों से अपनी स्वतंत्रता विषयक अवबोधन का प्रग्रहण करता है। यह नीति-निरूपण एवं क्रियान्वयन के प्रति अपनी वचनबद्धता में सरकार की विश्वसनीयता का भी प्रग्रहण करता है। चीन (69.7) इस संबंध में भारत (63.9) के मुकाबले थोड़ा आगे है।

4) विश्वव्यापी शासन सूचकांक (WGI) का 'भ्रष्टाचार नियंत्रण' (CC) जो कि ब्रुकिंग्स एवं विश्व बैंक द्वारा जारी किया जाता है, तथा ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल द्वारा जारी भ्रष्टाचार अवबोधन सूचकांक (CPI)।

5) यह विभिन्न डेटाबेस प्रयोग करता है; इसके सर्वेक्षण अपने प्रतिदर्श अभिलक्षणों में भिन्न-भिन्न होते हैं जो कि विभिन्न देशों के बीच तुलना को कठिन बना देता है; इत्यादि।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

Statistical Appendix

Table 3.2 (a): Sectoral Share (%) of GDP: 2013-21 (base 2011-12)

Year	Agriculture	Industry	Services
2013-14	20.7	28.3	51.1
2016-17	18.3	28.4	53.3
2019-20 (PE)	17.3	27.5	55.2
2020-21 (AE)	18.8	26.9	54.3

Source: Table 1.3 B, A7, Economic Survey 2020-21.

Note: PE: Provisional Estimates. AE: Advanced Estimates

Table 3.3: Domestic Savings as Percentage of GDP: 2012-19 (2011-12 Series)

Sector	2011-12	2014-15	2017-18	2018-19
Household	23.6	19.6	19.2	18.2
Private Corporate	9.5	11.7	11.6	10.4
Public Sector	1.5	1.0	1.7	1.5
Total	34.6	32.2	30.5	30.1

Source: Table 1.9, A 26, Vol. 2, Economic Survey 2020-21.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

Suggested Readings

1) Athukorala P & Sen K (2002). *Saving, Investment, and Growth in India*, Oxford University Press, New Delhi.

2) Balakrishnan, P (2010). Economic Growth in India: History and Prospect, Oxford University Press.

3) Basu K. (Ed.) (2008). *The Oxford Companion to Economics in India*, Oxford University Press, USA.

4) Basu, Kaushik and Annemie Maertens (eds.) (2011). *The New Oxford Companion to Economics in India*, OUP, New Delhi.

5) Dreze, Jean and Amartya Sen (2013). An *Uncertain Glory: India and Its Contradictions, Allen Lane,* Penguin Books, London.

6) Gupta Akhil (2012). *Red Tape: Bureaucracy, Structural Violence and Poverty in India*, Duke University Press.

7) Human Development Report, (2016). UNDP, New York, NY 10015.

8) Kapila, Uma (ed.), (2007). Indian Economy Since Independence, 18th Edition, Academic Foundation, Delhi.

9) Nayyar, Deepak (2019). *Resurgent Asia: Diversity in Development,* Oxford University Press, New Delhi.

10) Piketty, Thomas (2015). *The Economics of Inequality*, Harvard University Press.

11) Rajagopalan, R. (2015). *Environmental Studies: from Crisis to Cure* (No. Ed. 3). Oxford University Press.

12) Varghese N.V. and G. Mallik, Eds. (2017). India Higher Education Report 2015, Routledge, 2017.